हिन्दी प्रचार समाचार

[राष्ट्रीय महत्व की संस्था, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, का मुखपत्र]

संपादक : वे. राधाकृष्णमूर्ति

मुख-चित्र

दिनांक 25 अक्तूबर को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, बंगलोर शाखा द्‌वारा संपन्न हीरक-जयंती समारोह में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के उपाध्यक्ष श्री ए. पी. सी. वीरबाहु अध्यक्षीय भाषण दे रहे हैं।

वर्ष : 42 :: अंक : 12

दिसम्बर, 1980

वार्षिक : रु. 7-00 : : यह अंक : रु. 0-75

सब कोई जानते हैं कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, हिन्दी प्रचार करनेवाली सबसे प्राचीन राष्ट्रीय संस्था है जो गत कई दशकों से राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करती आ रही है जिसके लिए अत्यंत उपयोगी पाठमालाएँ, कहानी पुस्तकें, उच्च स्तर के ग्रंथ तैयार करके पाठकों को देती आ रही है और परीक्षा एवं अन्य शुल्क मद्दे भी कम मात्रा में ही धन राशि प्राप्त करती आ रही है कि हमारी सभा वाणिज्यिक संस्था नहीं है जो परिस्थिति की माँग को देखकर पुस्तकों का दाम मनमाने ढंग से बढ़ाकर अधिक से अधिक लाभ कमाने के रुख से काम करे। इसलिये अन्य प्रकाशकों के प्रकाशन के मुक़ाबले में छपाई, बंधाई, विषय आदि की दृष्टि से उच्च-स्तर की पुस्तकें सभा कम मूल्य पर देती आ रही है। किन्तु आज समय के तकाज़े के कारण सभा को पुस्तकों का दाम, परीक्षा-शुल्क, अन्य शुल्क आदि पर पुनर्विचार करना पड़ा है। वर्तमान महँगाई, आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति में कठिनाई, प्राप्त होने पर भी समय पर न प्राप्त होना आदि से सब लोग अवगत हैं। एकाध-वर्ष के पूर्व काग़ज़ जिस मूल्य पर प्राप्त होता था, आज उसका मूल्य तिगुना बढ़ गया कि सभा उस व्यय को संभालकर अपनी आर्थिक स्थिति को संतोषजनक बनाये रखने में अत्यंत कठिनाई का अनुभव कर रही है। भरसक प्रयत्न करके सरकार से रियायती काग़ज़ जो प्राप्त किया जाता है उसकी मात्रा सभा की माँग के सामने ऊँट के मुँह में जीरा के तुल्य ही रहती है। अलावा इसके छपाई के लिए आवश्यक उपकरणों का, जैसे स्याही, टाइप, टाइप-री-कास्टिंग आदि का दाम बढ़ गया है और डाक-व्यय, अंतर्देशीय पत्र, लिफ़ाफ़ा, पार्सल महसूल आदि का व्यय भी बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है। रेल तथा लारी ट्रान्सपोर्ट का मामला भी महँगा हो गया है।

बंधुओ, आप तो स्वीकार करेंगे ही कि इस बढ़ते हुए व्यय को संभालने के लिए सभा के सामने आमदनी का दूसरा मार्ग नहीं है। अतः सभा को परीक्षा शुल्क, अन्य शुल्क, पुस्तकों का मूल्य आदि में लाचार होकर ज़रा-सा परिवर्तन करने पर पुनर्विचार करना पड़ा है। आप लोगों से हमारा नम्र निवेदन है कि सभा के इस आर्थिक बोझ को ज़रा-सा वहन करके सभा के कार्यकलापों में पूर्ववत् सहयोग देते रहें।

हिन्दी सीखने की आवश्यकता—राजाजी

भारत की तीस करोड़ की जन-संख्या में लगभग चौदह करोड़ लोग या तो हिन्दी बोलते हैं या उससे मिलती-जुलती कोई बोली बोलते हैं। बंगला, असमिया और ओडिया को एक वर्ग में लेकर हिसाब करने पर ये भाषाएँ ज्ञात होगा कि छः करोड़ लोग बोलते हैं। मराठी और गुजराती भाषाएँ तीन करोड़ लोगों से बोली जाती हैं। द्राविड़ की भाषाएँ तेलुगु, तमिल, कन्नड, मलयालम और तुलु कुल छः करोड़ लोग बोलते हैं। "टाइम्स आफ़ इण्डिया की वार्षिकी की भूमिका में उसके लेखक जिनसे यह आशा की जाती है कि वे अपने लेख में अत्युक्ति पूर्ण वर्णन नहीं करेंगे, लिखते हैं कि उत्तर एवं मध्य भारत की प्रधान भाषाओं के मूल में एक सामान्य बीज तत्व है जो उन भाषाओं के भाषियों को अपने वार्तालाप में बिना किसी विशेष अभिज्ञ परिवर्तन के अभिव्यक्ति प्रदान करता है जो उनके आपस में सुबोध रहता है। अतः उसका सामान्य आधार भारत के विशाल भू-भाग में अंतर प्रादेशिक भाषा की आवश्यकता को उत्पन्न करता है। यह बंगाल और पश्चिमी भारतीयों के लिए लागू होता है और उनके लिए हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेना सरल है। मात्र दक्षिण भारतीयों के लिए राजनैतिक दृष्टिकोण के साथ सांस्कृतिक एवं वाणिज्य की दृष्टि से हिन्दी सीख लेना अनिवार्य है। भारत स्वतंत्र बनेगा या कब स्वतंत्र बनेगा इसका उत्तर भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से दे सकते हैं। प्रदेशों को कितना भी स्वातंत्र शासनाधिकार दिया जाय, फिर भी भारत को बाहरी एवं आंतरिक आघातों का सामना करना है तो सारे भारत से संबंधित मुख्य विषयों पर नियंत्रण रखनेवाली एक केन्द्र
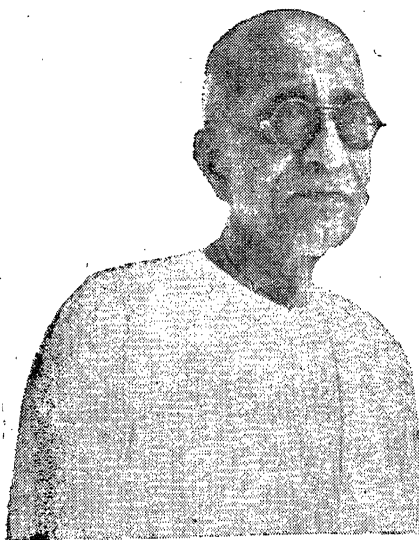
सरकार अनिवार्य है जो जब कभी महत्वपूर्ण ऐसा अवसर आ पड़े आवश्यक समझें उन विषयों में हस्तक्षेप करते हुए अपने अधिकार का प्रयोग कर सके। इसलिए भारत के शिक्षित समाज का यह धर्म है कि वह भारत की जनता की कामना को पूरा करे और प्रादेशिक विषयों को संभालते हुए केन्द्र के कार्य को संभाले।

केन्द्रीय संविधान सभा की बहस (सोच विचार) एवं राज्य के उच्च अधिकारियों की कार्रवाइयाँ और केन्द्र सरकार के अन्य अधिकारी जो अपने अधिकार का प्रयोग करते हैं क्या उनको अपना काम अंग्रेजी माध्यम से करने की अनुमति दे दी जाय? क्या हम चाहते हैं कि लोकतंत्र तथ्य और रूप की दृष्टि से सच्चे अर्थ में न हो? जनता और मतदाताओं से दूर रहनेवाले शिक्षितों को क्या अधिकार के प्रतिभायुक्त पदों पर नियुक्त करना चाहेंगे? कभी नहीं। प्रसिद्ध नियंत्रण को वास्तविक बनाने के लिए अधिकांश जनता द्वारा बोली एवं समझी जानेवाली भाषा राज्य की भाषा बनायी जानी चाहिए। हिन्दी ही ऐसी भाषा हो सकती है जो केन्द्र सरकार या विधान सभा के अतिरिक्त प्रांतीय सरकारों के आपसी व्यवहार और भारत की सरकार के साथ उनके व्यवहार को माध्यम-भाषा बन सके। दक्षिण भारत भविष्य में निर्मित होनेवाली भारत सरकार के नागरिक-अधिकारों से वंचित नहीं होना चाहता और दक्षिणी शिक्षित जन सारे भारत से संबंधित मामलों या निर्णय किये जानेवाले विषयों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित करना चाहते हैं तो उनको हिन्दी सीख लेना जरूरी है। यह संभव नहीं और वांछनीय भी नहीं है कि अपने हेतु, सबके ऊपर अंग्रेजी थोपें और सारे भारत की जनता के अपने प्रतिनिधियों के ऊपर रहनेवाले नियंत्रण को कमज़ोर कर दें। यह उल्लिखित करने योग्य है कि नेहरू कान्स्टिट्यूशन रिपोर्ट ने हिन्दी को भारत सरकार की भाषा के तौर पर स्वीकार किया है। यह स्वतंत्र भारत सरकार का विवेकपूर्ण निर्णय है। शैक्षिक विषयों में हम अपनी शक्ति का व्यर्थ व्यय करना और सारी पीढ़ी को दंडित करना नहीं चाहते हैं तो कुछ ही वर्षों में फल (हिन्दी सीखकर) प्राप्त कर लेना चाहिए। अतः स्कूल के पाठ्यक्रम में स्थान मिले या न मिले वर्तमान पीढ़ी के बालकों को तुरंत हिन्दी सीख लेनी चाहिए।

भारतीय सांस्कृतिक एकता एक सामान्य भाषा का ज्ञान आवश्यक समझती है जो राजनैतिक कारण से कम महत्व का नहीं है। दक्षिण भारत सारे भारत से संबंध जोड़कर नहीं रहेगा तो वह उस पेड़ की डाल जैसा बन जायगा जो सूखे पेड़ की हो और हम उस अंग्रेजी माध्यम पर निर्भर नहीं रह सकते जिसके कारण

अंतरदेशीय मामलों में भारत आगे बढ़ा। उस भाषा के ज्ञान के अभाव में उस स्थान से हमें हटना पड़ेगा।

यह स्पष्ट है कि राजनीति अथवा संस्कृति से बढ़कर जीविका प्राप्त करना एक बड़ी समस्या है। हिन्दी का ज्ञान कम से कम बोलने समझने और लिखने तक के कार्यक्षेत्र का विस्तार करेंगे जहाँ पर दक्षिण भारतीय जाकर नौकरी कर सकते हैं। किसी के प्रांत में स्पर्धा (नौकरी की समस्या) का दबाव जहाँ कई सहस्र शिक्षित लोगों को विदेश भेज देता है वहाँ हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान हमारे नौजवानों को भारत भर के सार्वजनिक एवं वाणिज्यिक क्षेत्रों में अवश्य अवसर प्रदान करेगा।

हिन्दी के पक्ष में दिये जानेवाले दलीलों का तात्पर्य मातृभाषा की उपेक्षा नहीं है। हिन्दी भाषा का मुख्यत्व एकमात्र सारे देश की भाषा बनने में ही है। इसलिए दक्षिण भारतवालों को उसे सीखना है। किन्तु वह मातृभाषा की उपेक्षा नहीं कर सकती और उपेक्षा की ओर प्रेरित भी नहीं कर सकती। नागरिकता से अधिक जो है वह आंतरिक कर्तव्यों की उपेक्षा की ओर उलझा देता है। परिवार राज्य पर निर्भर रहता है और राज्य परिवार पर निर्भर रहता है। किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अत: अपने प्रदेश की भाषा को सीखने और अपने प्रदेश के लोगों से संपर्क स्थापित करने के साथ भारत के लड़के और लड़कियों को भारत की भाषा सीख लेनी चाहिए। वस्तुत: हिन्दी भारत की सार्वजनिक सेवाओं की भाषा बन जाय और मातृभाषा अपने-अपने प्रदेश की राजनैतिक और सांस्कृतिक कार्य की भाषा बन जाय तो अंग्रेजी सीखने में जितना अधिक समय व्यय किया जा रहा है, उससे मातृभाषा अपनी उन्नति एवं पूर्ण विकास के लिए नये संवेग पूर्ण अवसर को प्राप्त करेगी।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि हिन्दी का समर्थन करनेवाले अंग्रेज़ी का विरोध करते हैं। अंतर्देशीय वाणिज्य के लिए एक भाषा की आवश्यकता है जिसके लिए अंग्रेज़ी से बढ़कर कोई अच्छी व उपयुक्त भाषा दूसरी नहीं हैं। किन्तु वर्तमान में वह प्रत्येक विषय पर आच्छादित रहती है एवं युवकों की स्फूर्ति के अधिकांश उत्तम भाग को हड़प लेती है, वैसा करने नहीं देना चाहिए।

[दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से सन्. 1928 ई. में प्रकाशित हिन्दी अंग्रेज़ी सेल्फ इन्स्ट्रेक्टर के लिए राजाजी के द्वारा लिखित भूमिका का हिन्दी रूपांतर]

*

महा मनीषी राजाजी

एम. सुब्रह्मण्यन, मद्रास

विचक्षण बुद्धि, कुशल प्रशासनिकता, दृढ़ मन, पैनी दृष्टि, दूरदर्शिता, लेखन में स्पष्टता, आदि का समन्वित रूप था, राजाजी। गांधीजी उनके नाम को छोटा करके राजा कहकर प्रेम से पुकारते थे तो दूसरे लोग उस छोटे नाम के साथ आदरसूचक 'जी' लगाकर राजाजी संबोधित करने लगे जो आगे चलकर स्थायी रूप से उनका नाम बन गया। वे गाँधीजी के विश्वास पात्र नेता ही नहीं थे परन्तु कभी कभी देश की जटिल समस्याओं को सुलझाने में उनकी मदद भी करते थे। उनके हर प्रकार के रचनात्मक कार्यों में राजाजी ने भाग लिया और उसे सफल बनाया, जैसे खादी का काम, हरिजनोद्धार, मद्यनिषेध, हिन्दी प्रचार आदि। उनके भाषण, लेख आदि से प्रभावित होकर कई लोग उनके भक्त और अनुयायी बन गये।

राजाजी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के कई वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे और सभा की श्रीवृद्धि के लिए वे बहुत हद तक जिम्मेवार हैं। 1936-37 में जब वे संयुक्त मद्रास प्रांत के प्रधान मंत्री थे तब उन्होंने स्कूलों में हिन्दी को अनिवार्य रूपसे पढाने का प्रबंध किया। स्कूल के पाठ्य-क्रम में सभा की पुस्तके रखवायीं जिनकी बिक्री से सभा को लाखों रुपयों की आमदनी हुई और सभा की आर्थिक स्थिति में वृद्धि हुई। उन्होंने हिन्दी अध्यापकों को तैयार करने की प्रेरणा ही नहीं दी परन्तु सरकारी मकान (कोयम्बतूर फारस्ट कालेज) में विद्यालय चलाने की अनुमति भी सभा को दी। इसके बाद भी जब वे 1948 में केन्द्र सरकार में मन्त्री थे तब सभा की ओर से प्रचारक विद्यालय चलाने के लिए रक्षा विभाग के मकानों को कम किराये में दिलवाया।

सभा के कार्यकलापों में दिलचस्पी लेने के अलावा सभा के हर कार्यक्रम में वे भाग भी लेते थे। जब महात्माजी सभा की रजत-जयन्ती के अवसर पर सभा में पधारे थे तब राजाजी का मार्गदर्शन व सहयोग न मिलता तो संभवतः रजत जयन्ती इतनी सफल न हुई होती। सभा के कार्यकर्ताओं के साथ उनका व्यवहार पितृतुल्य था। परंतु कोई इसका अनुचित लाभ नहीं उठा सकता था।

एक बार जब अरुवगांडु में सभा की तरफ़ से विशारद विद्यालय चल रहा था तब वे केन्द्र सरकार में मन्त्री पद वहन कर रहे थे। किसी कार्यवश वे ऊटी आये थे और वहाँ से अरुवंगाडु की कारडाइट फाक्टरी में पधारे थे। उस

फाक्टरी के पास ही हमारा विशारद विद्यालय था। हमने उन्हें विद्यालय में पधारने का अनुरोध किया तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। विद्यालय मुख्य सड़क से एक दो फरलांग की दूरी पर था, परन्तु हमने गल्ती से कह दिया कि विद्यालय बिलकुल सड़क पर है। जब वे विद्यालय में, चक्करवार पहाड़ी रास्ते से होकर आये तो पूछा कि, "क्या तुम्हारा विद्यालय बिलकुल सड़क पर है? तुम लोग हमारे रिश्ते का अनुचित लाभ उठाना चाहते हो। यह ठीक नहीं हैं।" यद्यपि वे शांत भाव से बोल रहे थे फिर भी हम उसमें छिपे क्रोध को भी ताड़ गये।

राजाजी की लेखनी का मैं कायल था। उनका महाभारत की कथा, रामायण की कथा, गीता संबधी लेख, भजगोविन्दम आदि सरल तमिल शैली में लिखे गये ग्रंथों और उनकी कई कहानियों को पढकर मेरे जैसे कई युवक प्रभावित हुए। उनकी रामायण की कथा तमिल साप्ताहिक 'कल्की में 'चक्रवर्ती तिरुमगन' शीर्षक से निकल रहा था। उसे मैं हिन्दी में अनूदित करना चाहता था। मैंने उनके नाम पत्र भेजकर अनूदित करने की अनुमति मांगी तो उनसे उत्तर मिला— "मैंने तमिलवालों के लिए रामायण का जो संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया उसे हिन्दी में अनूदित करने की ज़रूरत नहीं है। उनके लिए (हिन्दी भाषी) तो तुलसी रामायण है ही।" इसे पढ़कर मैं बहुत निराश ही नहीं हुआ परन्तु ज़रा खीझ भी गया। राजाजी ने ऐसा जवाब क्यों दिया, मेरी समझ में नहीं आया। बाद को सभा के भूत पूर्व प्रधान मन्त्री, राजाजी के निकटतम साथी और विश्वास पात्र हिन्दी सेवक आदरणीय श्री सत्यनारायणजी से इस पत्र का आशय पूछा तो उन्होंने बताया कि राजाजी कभी कभी कम शब्दों में अपना आशय प्रकट करते हैं। उसे या तो लोग समझ नहीं पाते या समझने में गलती करते हैं। इसलिए बुरा भी मान जाते हैं। रामायण के बारे में उन्होंने जो पत्र आप के नाम लिखा था उसका आशय है—'रामायण जैसे वृहत् ग्रंथ को मैंने संक्षेप में और सरल भाषा में लिखा है वह साधारण स्तर तमिल भाषियों के लिए है। तुलसी रामायण की तुलना में वह कुछ नहीं है। यह सुनकर मुझे तुष्टि हुई।

एक बार राजर्षि टण्डन के सुपुत्र हिन्दी भाषण माला के सिलसिले में मद्रास आये थे। वे राजाजी को बहुत मानते थे और उनसे मिलना चाहते थे। उस समय राजाजी कुछ अस्वस्थ थे शारीरिक और मानसिक रूप से। फिर भी हिम्मत करके हम उनके मकान पर गये। हमें डर था कि कहीं नकारात्मक उत्तर न मिले। परन्तु हमें उन्होंने बुलवा भेजा। सम्मुख होने पर अनावश्यक बातों में समय न लगाकर उन्होंने श्री टंडन के पुत्र से सीधे पूछा—बोलिए,

कैसे आना हुआ ? उन्होंने जवाब दिया—" मैं श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन का पुत्र हूँ। सरकार द्वारा आयोजित हिन्दी भाषण माला के सिलसिले में आया हूँ।" राजाजी ने कहा "मैं हिन्दी के विरुद्ध नहीं हूँ। टण्डन जी ने कहा" मैं आप से राजनीति संबंधी बातों पर चर्चा करने नहीं आया हूँ। केवल अपनी श्रद्धा अर्पित करने आया हूँ।" उसके बाद टण्डन जी का कुशल क्षेम पूछ कर उन्होंने हमें बिदा किया।

सभा के पुराने कार्यकर्ता प. रघुवरदयाल मिश्र का देहांत सभा के अहाते में हो गया था। यह समाचार सुनते ही राजाजी सभा के अहाते में आये। तब मृतक की अर्थी निकल चुकी थी। राजाजी अर्थी के पास आये और हार्दिक दुख प्रकट करने के रूप में मृतक के शरीर को जो छुआ तो आस पास खडे कार्यकर्ता राजाजी की भावना देखकर गद्गद् हुए।

अकसर लोग कहते हैं कि राजाजी जननेता नहीं है, वे बुद्धिवादियों के नेता हैं। यह कथन अंशतः सत्य है। पराधीनता के समय पढ़े लिखे लोग अंग्रेजों के विरुद्ध बोलने-व्यवहार करने में डरते थे। ऐसे लागों के मन को बदलकर राष्ट्रीय आंदोलन की ओर ले आने में राजाजी जैसे पढे लिखे व्यक्ति की जरूरत थी। राजाजी, सत्यमूर्ति जैसे नेताओं के भाषण और लेख से प्रभावित होकर कितने ही वकील, डॉक्टर, अध्यापक, प्राध्यापक देश भक्ति से ओत प्रोत होकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने लगे।

मंदिर प्रवेश, शाराब बंदी, हरिजनोद्धार, जमीन्दारी उनमूलन, ऋण-मुक्ति-कानून आदि कार्य जनसाधारण की भलाई के लिए राजाजी ने किये थे। ऐसे राजाजी को कौन कह सकता है कि वे जननेता नहीं हैं ?

राजाजी को लोगों ने ठीक नहीं समझा। हमारा दुर्भाग्य है कि उनकी प्रतिभा और बुद्धि-सौंष्ठव से देश ने ठीक तरह से लाभ नहीं उठाया।

*

प्रधान सचिव का निवेदन

(दिनांक 25 अक्तूबर 1980 की शामको श्री ए. पी. सी. वीरबाहु की अध्यक्षता में बेंगलोर में संपन्न हीरक जयंती वर्ष के अंतिम समारोह के अवसर पर सभा के प्रधान सचिव श्री वे. राधाकृष्णमूर्ति के द्वारा समर्पित सभा की संक्षिप्त कार्य विवरण।)

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना सन् 1918 ई. में हुई। सन् 1918 से 1948 तक लगातार 30 साल बापूजी ही सभा के अध्यक्ष रहे। दक्षिण भारत के चारों राज्यों अर्थात् तमिलनाडु, आन्ध्र, कर्नाटक तथा केरल में हिन्दी का प्रचार करना, साथ ही दक्षिणेतर प्रदेशों को दक्षिणी भाषाओं की शिक्षा-सुविधाएँ प्रदान करना सभा का लक्ष्य रहा है। महात्माजी न केवल इस संस्था के संस्थापक-अध्यक्ष रहे, बल्कि दक्षिण के धन-जन के सहारे संस्था को स्वावलंबी बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण मार्गदर्शन किया, जिसके फलस्वरूप स्वतंत्रता-संग्राम के एक साधन के रूप में दक्षिण भारत भर में हिन्दी तथा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने लोकप्रियता प्राप्त की। हिन्दी का कार्य भारतीय भाषाओं के उत्थान का कार्य है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा चाहती है कि प्रांतों में प्रांतीय भाषाओं का स्थान सुदृढ हो और केन्द्र में सार्वदेशिक भाषा के रूप में हिन्दी प्रतिष्ठित हो।

महात्माजी के निधन के बाद करीब 15 सालों तक भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी ने सभा के अध्यक्ष की हैसियत से इसके विकास में बड़ी मदद पहुँचायी। डा. राजेन्द्रबाबू के बाद श्री लालबहादुर शास्त्रीजी इस संस्था के अध्यक्ष हुए। संसदीय अधिनियम के अनुसार सभा को सन् 1964 ई. में राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित कराने में श्री शास्त्रीजी का विशेष योगदान रहा। उन्होंने सभा के "उच्च शिक्षा व शोध संस्थान" का प्रारंभ कराया तथा अपने आशीर्वाद भी दिये। सभा की वर्तमान अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा गांधीजी हैं।

महात्माजी के आदेश का सभा अक्षरशः पालन करती आयी है और हिन्दी का संदेश उसके सभी पहलुओं सहित अर्थात् सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं भाषाई तथा विभिन्न व्यावहारिक रूपों और माध्यमों में देश के कोने-कोने तक पहुँचाने का कार्य कर रही है। सभा का स्वातंत्र्यपूर्व का कार्यक्रम दक्षिण की पढ़ी-लिखी जनता को हिन्दी सिखाकर राष्ट्रीय एक सूत्रता की भावना को अक्षुण्ण बनाये रखना रहा था। मगर अब दक्षिण के ऐसे युवक जो आत्म-विश्वास के साथ देश के अन्य राज्यों में

जाकर नौकरी-पेशा प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लाभार्थ हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा की व्यवस्था का दायित्व भी सभा पर आ पडा है जिसकी पूर्ति के लिए 'उच्च शिक्षा तथा शोध संस्थान" का गठन किया गया है।

सभा ने सन् 1946 ई. में महात्मा गांधीजी की अध्यक्षता में अपनी रजत जयंती मनायी थी, वह सभा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना बनी। सन् 1971 ई. में सभा की स्वर्ण जयंती मनायी गयी। सन् 1979 ई. में अर्थात् गत साल सितंबर में सभा की हीरक जयंती मनायी गयी। दक्षिण के राज्यों में उक्त जयंती का कार्यक्रम सफलता के साथ संपन्न किया जा रहा है।

गत 62 वर्षों से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की उपलब्धियों का विवरण निम्न-प्रकार है:—

(1) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा एक करोड से अधिक दक्षिण के लोगों को हिन्दी सिखा चुकी है।

(2) विविध स्तर की करीब 400 हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है।

(3) 25 हजार प्रशिक्षित हिन्दी शिक्षक अथवा प्रचारकों को तय्यार कर चुकी है।

(4) करीब 10 हजार केन्द्रों में हिन्दी वर्गों का संचालन कर रही है।

(5) सभा के प्रयत्न से दक्षिण में तमिलनाडु राज्य को छोड़कर (द्विभाषा सूत्र लागू करने के कारण), हिन्दी न केवल मिडिल स्कूल व हाई स्कूलों में, बल्कि प्रायः सभी कालेजों में भी पढाई जा रही है।

(6) सभा के प्रयत्न से दक्षिण के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी एम.ए. के स्तर तक पढाई जाती है। साथ ही स्नातकोत्तर शोध-कार्य भी हो रहा है।

(7) सभा के प्रयत्न से विगत सात-आठ सालों के हिन्दी विरोध के बावजूद तमिलनाडु में भी हिन्दी के प्रति शिक्षार्थियों तथा उनके संरक्षकाओं में दिलचस्पी दिन ब दिन बढ़ रही है।

(8) सभा दक्षिण के चारों राज्यों के शिक्षालयों में हिन्दी प्रवेश की साधिका ही नहीं रही, अपितु स्कूली शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ दक्षिण की प्रौढ़ जनता की ज्ञान-पिपासा की परितृप्ति में भी सफलता हासिल करती रही।

(9) हिन्दी शिक्षा के समांतर में हिन्दी तथा दक्षिण के प्रादेशिक भाषा-साहित्यों के समन्वय, आदान-प्रदान तथा हिन्दी में मौलिक सर्जन-प्रक्रिया में भी सभा का महत्वपूर्ण मार्ग-दर्शन रहा है।

(10) हिन्दी शिक्षा के माध्यम से दक्षिण के नारी-समाज के लिए सार्वजनिक सेवा का मार्ग भी सभा सफलता से प्रशस्त करती रही है।

(11) सभा की परीक्षाओं में हर साल डेढ़ लाख परीक्षार्थी सम्मिलित होते रहे हैं।

(12) दक्षिण के चारों भाषाई सूबों में भी सभा की शाखा-प्रशाखाएँ निजी-भवन तथा मुद्रण सुविधाओं के साथ फूल फल रही हैं।

(13) सभा के "उच्च शिक्षा तथा शोध-संस्थान" से अब तक 150 पारंगत/एम.ए. तथा साहित्याचार्य/पी.एच-डी. उपाधिधारी निकल चुके है।

(14) सभा इस बात का गर्व करती है कि उसने दक्षिण भारत की 75 प्रतिशत शिक्षित जनता के दिलों में हिन्दी के प्रति प्रेम जगाया है।

(15) केन्द्र सभा का सालाना बजट 25 लाख का है।

तमिलनाडु की राज्य सरकार को छोड़कर (केवल सात-आठ वर्षों से) आन्ध्र-प्रदेश, केरल तथा कर्नाटक राज्यों की सरकारें शुरू से राष्ट्रभारती हिन्दी के प्रचार व प्रसार में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और उसकी प्रांतीय शाखाओं को सहयोग प्रदान करती रही हैं। हम उनके आभारी हैं।

हिन्दी प्रचारकों से—

अकसर हिन्दी प्रचारक अपनी अपनी मातृभाषा में सभा को पत्र लिखते हैं। इससे जवाब भेजने में काफी समय लगता है। हिन्दी में पत्र लिखें तो जल्दी जवाब दिया जा सकता है। अतः प्रचारक बंधु हिन्दी में ही पत्र व्यवहार करने का कष्ट करें।

—संपादक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, बेंगलोर शाखा

हीरक जयंती समारोह—राजभाषा सेमिनार

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की हीरक जयंती वर्ष का समापन समारोह दो दिवसीय कार्यक्रम के साथ गांधी भवन, बेंगलोर के सभागार में बड़े वैभव के साथ मनाया गया। उल्लेखनीय है कि दोनों दिनों के कार्यक्रम में हिन्दी प्रेमी और हिन्दी प्रचारकों ने सोत्साह भाग लिया।

25 अक्तूबर को समारोह का उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में रेलवे मंत्री, माननीय श्री कमलापति त्रिपाठी रहे। कर्नाटक के मुख्य मंत्री, माननीय श्री गुंडुराव की अनुपस्थिति में उनका उद्घाटन भाषण कर्नाटक के आवास व नगर विकास मंत्री, माननीय श्री धर्मसिंह ने पढ़ा और औपचारिक उद्घाटन करते हुए अपना भाषण दिया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के उपाध्यक्ष, श्री ए. पी. सी वीरबाहु ने समारोह की अध्यक्षता की। प्रधान सचिव श्री राधाकृष्णमूर्ति ने 'दक्षिण में हिन्दी प्रचार कार्य' का विवरण प्रस्तुत किया। स्वागत समिति के चेयरमेन और वल्लभ निकेतन के सचिव श्री सीताशरण शर्मा ने अतिथियों का स्वागत किया। श्री कटील गणपति शर्माजी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। मुख्य अतिथि द्वारा वल्लभ निकेतन में निर्मित 'भाषा कक्ष' का उद्घाटन कार्य-क्रम भी संपन्न किया गया। सचिव श्री पा. वेंकटाचारी ने वर्तमान कार्य का रिपोर्ट प्रस्तुत किया।

मुख्य मंत्री श्री गुंडुराव के अनुसार कर्नाटक में कन्नड को प्रथम महत्व दिया जाएगा, मगर संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को जो महत्व है उसे दृष्टि में रखते हुए उसे भी उचित प्रोत्साहन दिया जाएगा। आपके विचार में हिन्दी को थोपने की बात उठती ही नहीं, जनता को जब उसकी ज़रूरत महसूस होती है, अपने आप सीख लेगी। आपने कहा कि हिन्दी का विकास भारतीय संस्कृति का विकास होगा।

श्री धर्मसिंह ने अपने हिन्दी भाषण के दौरान बताया कि वही भाषा पनपेगी, बढ़ेगी जिस में मेहनतकशों, मज़दूरों और किसानों की जज़्बातों की अभिव्यक्ति हो सकती है। मन को मिलाने का काम हिन्दी करती है। हमारा सपना अब भी अधूरा रह गया है, उसे पूरा करना ज़रूरी है। यह काम करने का नेतृत्व देने की मंत्री महोदय ने मान्य श्री कमलापति त्रिपाठी से प्रार्थना की।

मुख्य अतिथि की हैसियत से बोलते हुए मान्य श्री कमलापति त्रिपाठी ने महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्य-क्रम का उल्लेख करते हुए बताया कि उसमें

राष्ट्रभाषा का प्रमुख स्थान दिया गया था। आज राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता बहुत बढ़ गयी है। इसके द्वारा ही राष्ट्रीय स्वाधीनता की रक्षा की जा सकती है। इसके लिए अंग्रेज़ी, जिसे माइनस एक प्रतिशत जानता है, देश की जनता का हृदय छू नहीं सकती। ऐसी भाषा एक माध्यम भी नहीं बन सकती, जिसके द्वारा जनता के विचार व्यक्त किये जा सके। देश की सभी प्रादेशिक भाषाओं में बहुत बड़ा साहित्य है। इसका उल्लेख करते हुए आपने बताया कि हिन्दी के हम इसलिए समर्थक हैं कि वह देश का सबसे बड़ा माध्यम है। आपके अनुसार हिन्दी द्वारा अहिन्दी भाषाओं की और अहिन्दी भाषाओं द्वारा हिन्दी की प्रगति व विकास संभव है। मंत्री महोदय ने हिन्दी के द्वारा राष्ट्रीय एकता के कार्य में लगे हुए लोगों का अभिनन्दन करते हुए अपना विचार स्पष्ट किया कि आज़ादी की पहली सफलता राष्ट्रीय एकता है।

श्री ए. पी. सी. वीरबाहु ने अपने अध्यक्षीय भाषण के दर्म्यान बताया कि तमिलनाडु के प्रगतिशील लोगों ने हिन्दी को स्वीकारा है। आपने कहा कि भारत में पुराने ज़माने से ही सांस्कृतिक एकात्मकता विद्यामान है। आज उसे बनाये रखने का सफल माध्यम हिन्दी ही है। आपने आशा व्यक्त की कि जयंती समारोह द्वारा हिन्दी के और भी व्यापक प्रचार में दिशा दर्शन मिलेगा।

हिन्दी संस्था संघ के अध्यक्ष, श्री गंगाशरण सिंह ने बताया कि जनता के समर्थन द्वारा ही किसी भी भाषा का विकास हो सकता है।

राजभाषा सेमिनार—प्रथम अधिवेशन

उद्घाटन समारोह के बाद राजभाषा सेमिनार का प्रथम अधिवेशन संपन्न हुआ। 'राज्य (कर्नाटक) स्तर पर कन्नड तथा राष्ट्र स्तर पर हिन्दी का कार्यान्वियन' विषय पर सेमिनार का आयोजन किया गया। सेमिनार की अध्यक्षता श्री एच. हनुमंतप्पा (अध्यक्ष, रेलवे सेवा आयोग, बेंगलोर मंडल) ने की। सर्वश्री शिवसागर मिश्र (निदेशक, रेलवे राजभाषा बोर्ड, सचिव, राजभाषा सलाहकार समिति), न्यायमूर्ति श्री गोपीवल्लभ अय्यंगार (भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, कर्नाटक उच्च न्यायालय), आद्य रंगाचार (श्रीरंगा के नाम से प्रख्यात कन्नड साहित्यकार), वे. राधाकृष्णमूर्ति (प्रधान सचिव, द. भारत हिन्दी प्रचार सभा) ने संगोष्ठी में भाग लेते हुए अपने-अपने विचार व्यक्त किये। श्री कटील गणपति शर्मा ने स्वागत भाषण दिया तथा श्री के. सुब्रायन ने धन्यवाद समर्पण किया।

कवि सम्मेलन

रात्रि 8 बजे अंतर भारती कवि सम्मेलन बड़ी सफलता का कार्य-क्रम रहा। हिन्दी, उर्दू और कन्नड के कवियों ने अपनी सुन्दर और मधुर रचनाओं से श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया। हिन्दी कवियों में सर्वश्री सीताशरण शर्मा, राकी गुप्ता, डॉ. पी. सी. मानव व प्रो. रेवण्ण के, उर्दू शायरों में डॉ. मज़हर सलामी, डॉ. मुदण्ण मसर, जनाब अब्दुल खादर हबीब व श्रीमती ताजुन्नीसा ताज के और कन्नड़ कवियों में डॉ. सिद्दय्या पुराणीक व श्री सी. एस. नारायण के नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. यशवन्त त्रिवेदी ने गुजराती में लोक-गीत सुनाया। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता की कन्नड़ के प्रतिष्ठित कवि डॉ. सिद्दय्या पुराणीक ने और संचालन किया डॉ. पी. सी. मानव ने। श्री राकी गुप्ता के संयोजन में बेंगलोर रंगमंच की ओर से कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया।

राजभाषा सम्मेलन—द्वितीय अधिवेशन

सेमिनार का द्वितीय अधिवेशन 26 अक्तूबर को सुबह 10 बजे संपन्न हुआ। सेमिनार की अध्यक्षता डॉ. सिद्दय्या पुराणीक ने की और स्थानीय महारानी कालेज की कन्नड प्राध्यापिका श्रीमती कमला हँपन्ना ने उद्घाटन भाषण दिया। मुख्य मंत्री के प्रेस सचिव और कन्नड और अंग्रेज़ी के मशहूर समालोचक श्री एल. एस. शेषगिरि राव ने समारोह का समावर्तन भाषण किया। सेमिनार में श्रीमती ए. पंकजा और श्री पापण्ण गुप्ता ने अपने विचार प्रकट किये।

अध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण के दौरान राजनीतिक और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता में अंतर का उल्लेख करते हुए सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पर ज़ोर दिया। देश में विभिन्न भाषाएँ हैं, जिनकी शाखाएँ अनेक हो सकती हैं, मगर जड़ एक है, फल एक है—आपने कहा, हमें एकरूपता नहीं, एकता चाहिए। श्री पुराणीक ने कहा कि हिन्दी और कन्नड एक साथ आगे बढ़ेगी और इसमें, किसी भी भाषा के प्रचार में, चाहे कन्नड हो या हिन्दी, भावना की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

सचिव श्री वेंकटाचारी ने मंथन प्रस्तुत करते हुए बताया कि समूचे देश में सभी कार्य भारतीय भाषाओं में होना ज़रूरी है। व्यापार आदि क्षेत्रों में हिन्दी की उपयोगिता ज़्यादा होगी। आपने बताया कि स्वदेशी भावना से ही भारतीय भाषाओं का कार्यान्वयन सफल व सुगम हो सकता है। दक्षिणी भाषाओं का आदान-प्रदान, दक्षिणी संस्कृति का प्रचार हिन्दी के द्वारा और हिन्दी जाननेवालों के द्वारा ही संभव है।

श्री के. सुब्बरायन ने स्वागत भाषण दिया तथा श्री कटील गणपति शर्मा ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

मंथन

सेमिनार का लक्ष्य वाक्य यह रहा "राज्य स्तर पर कन्नड का तथा राष्ट्र स्तर पर हिन्दी" का कार्यान्वियन। राजभाषा सेमिनार का कार्यक्रम दो अधिवेशन में संपन्न हुआ। निम्नलिखित बातों पर प्रतिनिधियों ने तथा प्रमुख सज्जनों ने अपने विचार प्रकट किये।

(1) कर्नाटक में प्रथम भाषा के रूप में मातृभाषा (कन्नड) पढ़ाई जाती है। तीसरी भाषा के रूप में हिन्दी की पढ़ाई होती है। भाषा शिक्षण को और भी मज़बूत और आकर्षित बनाना है। कोई विद्यार्थी एस.एस.एल.सी. में उत्तीर्ण होने पर या स्नातक बनने पर अपनी मातृभाषा कन्नड तथा हिन्दी में काम करने की शक्ति प्राप्त करेगा। कालेज में हिन्दी शिक्षण बहुत लोकप्रिय है। भविष्य में स्कूल, कालेज के ज़्यादा विद्यार्थी हिन्दी तथा दूसरी भाषाएँ भी द्वितीय भाग में लेकर पढ़ेंगे। सार्वजनिक क्षेत्र में हिन्दी की प्रगति संतोषजनक है। हर साल हज़ारों विद्यार्थी स्वेच्छा से सभा की परीक्षाएँ देते हैं तथा कन्नड व हिन्दी मुद्रा-लेखन में भी दिलचस्पी लेते हैं, जिससे हिन्दी के कायन्वियन में मदद मिलती है। इस दिशा में सभा द्वारा कई योजनाएँ कार्यान्वियन की जाती हैं। हिन्दी वर्ग, हिन्दी विद्यालय, मुद्रालेखन विद्यालय आदि।

इस दिशा में नयी योजनाएँ बनाकर शिक्षा मंत्रालय में भेजी गयी हैं जिनकी स्वीकृति मिलने पर आगे के कार्य में बड़ी सुविधा होगी।

कर्नाटक राज्य स्तर पर कन्नड में सारा काम काज चलने से हिन्दी के कार्यान्वियन में सुगमता आ गयी है। सभा इस दिशा में प्रयत्नशील है कि हिन्दी के कार्यान्वियन में, शिक्षण तथा प्रयोग के द्वारा सब तरह की सुविधाएँ प्रदान करें तथा अनुकूल वातावरण भी हो। केन्द्र सरकार व राज्य सरकार से इसकी पुनः प्रार्थना करती है कि सभा तथा दूसरी स्वेच्छिक संस्थाओं के लिए हिन्दी शिक्षण तथा परीक्षा संचालन में राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार से सब तरह का प्रोत्साहन मिले तथा इन संस्थाओं के द्वारा संचालित परीक्षाओं की मान्यता का पूरा उपयोग किया जाय। इस क्षेत्र में संस्थाओं को पूरी स्वतंत्रता रहे और राज्य सरकार स्वयं परीक्षा संचालन की दिशा में कोई दूसरा प्रबन्ध न करके स्वयं सेवी संस्थाओं को आवश्यक प्रोत्साहन दे जिसका आश्वासन कर्नाटक सरकार ने दिया है।

कर्नाटक सरकार ने अभी हाल में जो अनुदान संहिता बनायी है, उसमें सभा का नाम भी जोड़कर सभा की परीक्षाओं के लिए जो हिन्दी विद्यालय तथा वर्ग चलाते हैं उन संस्थाओं को आवश्यक अनुदान पूर्ववत् देने की प्रार्थना राज्य सरकार से करते हैं। इसके लिए अनुदान संहिता में आवश्यक संशोधन करने का जो आश्वासन सभा को प्राप्त है, उसके लिए धन्यवाद देते हुए, सरकार से प्रार्थना करती है कि इस दिशा में शीघ्र आवश्यक कार्रवाई करें, जिससे पूर्ववत् हिन्दी विद्यालयों को अनुदान मिले।

भविष्य में राज्य स्तर पर कन्नड का तथा राष्ट्र स्तर पर हिन्दी के कार्यान्वयन में तीव्रता आयेगी। कर्नाटक में सारा काम काज कन्नड में होगा और राष्ट्र स्तर पर हिन्दी में होगा। देश में भारतीय भाषाओं का अपने राज्य में विकास होगा। समूचे देश का कार्य भारतीय भाषाओं में होने लगेगा जो स्वदेशी भावना का मूल है। इसके लिए प्रादेशिक भाषाएँ तथा हिन्दी के प्रचार प्रसार और शिक्षण में सभा पिछले इकसठ साल से लगी है और भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर कार्यान्वयन कर रही है, जिसका पूर्ण रूप से समर्थन करते हैं और हमारा पूर्ण विश्वास है कि इस राष्ट्र सेवा के कार्य में जनता का, सरकार का संपूर्ण सहयोग मिलेगा। इस तरह हम भाषा सेवा के द्वारा राष्ट्र की उत्तम सेवा कर सकते हैं। इस शुभ अवसर पर सभा तथा सभी प्रचारक यह संकल्प और भी दृढ़ करते हैं कि इसमें हम तन-मन-धन से लगेंगे और शक्ति भर सेवा करने का दृढ़ संकल्प पुनः प्रकट करते हैं।

"सूरदास और संत कवि नटनगोपाल नायकी स्वामिगल का तुलनात्मक अध्ययन" हिन्दी शोध-ग्रंथ के प्रमोचन के अवसर पर ग्रंथ के लेखक भाषण दे रहे हैं।

हिन्दी स्नातकोत्तर कांप्लेक्स, हैदराबाद
एक नज़र में

[ता. 1978 अक्तूबर 10 को विजयदशमी के दिन हैदराबाद में हिन्दी स्नातकोत्तर कांप्लेक्स का आरंभ हुआ है। आंध्र प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री माननीय श्री मर्रि चेन्नारेड्डी ने उसका उद्घाटन किया है।]

वे. आंजनेय शर्मा
कुलसचिव

सवाल—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना पूज्य महात्माजी ने की थी। वह बहुत सालों से दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्य करती आ रही है। कई परीक्षाएँ भी चलाती है। यह हमें मालूम है। अभी हमें मालूम हुआ कि वह सभा हिन्दी एम.ए. और पी. एच. डी. आदि उपाधियाँ भी दे रही है। ऐसी उपाधियाँ देने का इस सभा को अधिकार है?

जवाब—हाँ, अधिकार है। 1964 में पार्लमेंट में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित करते हुए एक अधिनियम पारित किया गया था। उस अधिनियम को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा अधिनियम 1964 कहते हैं। उस अधिनियम की धारा 14 के अनुसार हिन्दी की हद तक यू.जी.सी. अधिनियम में उल्लिखित उपाधियाँ देने का अधिकार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को मिला है।

सवाल—पार्लमेंट में इस अधिनियम को स्वीकृत कराने में आपको किन-किन महानुभावों की मदद मिली है?

जवाब—महात्मा गांधीजी ने ही 1918 में इस सभा की स्थापना की थी। जब तक वे जीवित थे तब तक वे ही सभा के अध्यक्ष भी रहे। उनके निधन के बाद श्री राजेंद्र बाबूजी अध्यक्ष बने। उनके बाद श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी बने। इस समय श्रीमती इंदिरा गांधीजी सभा की अध्यक्षा हैं। श्री राजेंद्र बाबूजी ने इस संस्था को राष्ट्रीय महत्व देने का प्रस्ताव किया था। श्री राजेंद्र बाबूजी की अध्यक्षता में कार्यकारिणी समिति में सभा को राष्ट्रीय महत्व प्रदान करने केन्द्र सरकार से अनुरोध करने का प्रस्ताव पास हुआ था। उस प्रस्ताव को अधिनियम

का रूप दिलाने का श्रेय श्री लालबहादुर शास्त्रीजी को है। अगर शास्त्रीजी की मदद नहीं मिलती तो पार्लमेंट में शायद यह अधिनियम मंजूर करना कठिन हो जाता। इसके अलावा उस समय के भारत के शिक्षा मंत्री श्री श्रीमाली, श्री छाग्ला, श्री भक्तदर्शन ने भी संसद में सभा की बड़ी मदद की है। बिल तैयार करने का, सभा के गौरव के अनुरूप उस बिल को रूप देने का श्रेय उस समय के सभा के कार्याध्यक्ष श्री डी. श्रीनिवासय्यंगार को जाता है।

सवाल—तो ठीक है। इससे सभा को क्या लाभ हुआ है?

जवाब—साठ साल से दक्षिण में इस संस्था ने राष्ट्रभाषा का प्रचार किया है। इस संस्था के लिए स्वतंत्र भारत सरकार की तरफ़ से मान्यता मिलना, राष्ट्रीय महत्व प्राप्त होना बहुत ही गौरव की बात है। यह पहला लाभ है। यू.जी.सी. अधिनियम में उल्लिखित एम.ए. आदि डिग्रियाँ प्रदान करने का सभा को अधिकार मिला है, यह दूसरा लाभ है। इस तरह का गौरव किसी भी राष्ट्रीय संस्था को इस रूप में अभी तक मिला नहीं है। जैसा वचन दिया गया उस अनुपात में न रहने पर भी भारत सरकार इस संस्था को आर्थिक मदद पहुँचाती है। यह तीसरा लाभ है। हमारा पूरा विश्वास है कि निकट भविष्य में ही भारत सरकार की तरफ़ से सभा को उनके वचन के अनुरूप पूरी आर्थिक सहायता मिलेगी।

सवाल—एम.ए., पी.एच.डी. आदि उपाधियाँ विश्वविद्यालय देते है। यह अधिकार आपको कैसे मिला? और आपकी संस्था का स्वरूप क्या है?

जवाब—विश्वविद्यालय दो तरह के रहते हैं। एक स्टैट्यूटरी विश्वविद्यालय हैं, दूसरे डीमड विश्वविद्यालय हैं। स्टैट्यूटरी विश्वविद्यालयों की स्थापना प्रादेशिक विधान सभाओं के प्रस्ताव के आधार पर अकसर होती है। उसका कार्यक्षेत्र कुछ जिलों तक मात्र सीमित रहता है। डीमड विश्वविद्यालय सिर्फ़ रेसिडेन्शियल यानी एक ही केन्द्र तक सीमित रहते हैं। इसके अलावा भारत सरकार की तरफ़ से आरंभ किये गये कुछ सेंट्रल विश्वविद्यालय और भी हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा इसमें नहीं आती है। इसका स्वरूप ही दूसरा है। यह एक राष्ट्रीय महत्व की संस्था है और इसे स्नातकोत्तर उपाधियाँ देने का अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा खास बात यह है कि सभा का कार्यक्षेत्र सारे दक्षिण में व्याप्त है। पिछले साल से इस संस्था को असोसियेशन आफ़ इंडियन यूनिवर्सिटीस (इंटर यूनिवर्सिटी बोर्ड) ने अपनी सदस्य संस्था के रूप में स्वीकार किया है। एक स्वैच्छिक संस्था के लिए इस तरह का गौरव मिलना प्रसन्नता का विषय है।

सवाल—तो आपको यू.जी.सी. से अनुदान भी मिलता है?

जवाब—अभी नहीं। यू. जी. सी. अधिनियम में यूनिवर्सिटी का रूप निर्धारित किया गया है। उसमें पार्लमेंट के प्रस्ताव के अनुसार घोषित राष्ट्रीय महत्व की संस्थाओं का उल्लेख नहीं है। जब तक इस तरह का उल्लेख नहीं होगा तब तक सभा को यू.जी.सी. से अनुदान मिलना संभव नहीं होगा। उसके लिए भी प्रयत्न किया जा रहा है। जहाँ तक उपाधियों की मान्यता का सवाल है यू.जी.सी. अधिनियम में राष्ट्रीय महत्व की संस्था का उल्लेख है। इस वजह से हमारी डिग्रियों की मान्यता के संबंध में हमें कोई तकलीफ़ नहीं है।

सवाल—आपने एम.ए. वर्ग कहाँ कब प्रारंभ किये? और कैसे चलाते हैं?

जवाब—1964 में ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास में उच्च शिक्षा और शोध संस्थान के नाम से विश्वविद्यालय विभाग शुरू किया गया है। श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी ने उसका उद्‌घाटन किया है। उस समय से लेकर आज तक मद्रास में एम.ए. की कक्षाएँ बराबर चलती आ रही हैं। अभी तक करीब डेढ़ सौ तक विद्यार्थी हिन्दी एम.ए. में उत्तीर्ण हुए हैं। उनमें से कई सज्जन अच्छी नौकरियों पर हैं। अभी तक सोलह शोधार्थियों ने पी.एच.डी. डिग्री प्राप्त की हैं। इस समय भी पन्द्रह शोधार्थी अनुसंधान का कार्य कर रहे हैं। दो साल से मद्रास में एम.फिल. परीक्षा भी शुरू की गयी है।

सवाल—मद्रास में एम.ए. वर्ग चलते हैं। ठीक है, फिर हैदराबाद में स्नातकोत्तर कांप्लेक्स क्यों शुरू किया गया? उसकी क्या आवश्यकता है?

जवाब—भारत के विश्वविद्यालयों में भाषा संबंधी जो एम.ए. परीक्षा चलती है, वह साहित्य प्रधान हैं। सभा की तरफ़ से मद्रास में जो एम.ए. परीक्षा चलती है वह भी साहित्य प्रधान ही है। सभी विश्वविद्यालयों में यही क्रम चालू है। हिन्दी राजभाषा स्वीकृत हुई है। केन्द्र सरकार के कई विभागों में—सरकारी कार्यालयों में, बैंकों में, कार्पोरेशनों में, रेल्वे में, डाकतार विभाग आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी में काम शुरू हो गया है। धीरे-धीरे आगे चलकर उन सभी क्षेत्रों में हिन्दी की प्रधानता बढ़ेगी ही। अनुभव में यह देखा गया है कि जो साहित्य प्रधान एम.ए. में उत्तीर्ण हैं, वे इन क्षेत्रों में काम करने उतने उपयुक्त नहीं है। सरकारी क्षेत्रों में काम करने के लिए प्रयोजनमूलक (फन्क्षनल) हिन्दी का ज्ञान आवश्यक महसूस किया जाता है। यू.जी.सी. ने भी इस बात को समझ लिया है। भारत सरकार का ध्यान भी इस बात की तरफ़ गया है। तो यू.जी.सी. की तरफ़ से कई विद्वानों

की सहायता से एम.ए. (हिन्दी) के पाठ्यक्रम में कई परिवर्तन सुझाए गये हैं। पाठ्यक्रम को साहित्य प्रधान, भाषा प्रधान दो रूपों में बाँटा गया है। भाषा प्रधान भाग में अनुवाद, कोशविज्ञान, कार्यालय हिन्दी, वाणिज्य, व्यापार आदि कई प्रयोजन-मूलक विषयों को प्रवेश दिया गया है। हैदराबाद कांप्लेक्स में भाषा प्रधान नया पाठ्यक्रम चल रहा है।

सवाल—तो हैदराबाद कांप्लेक्स में भाषा प्रधान पाठ्यक्रम चलता है? इसमें आपका अनुभव क्या है?

जवाब—यह बिलकुल नया पाठ्यक्रम है। भारत में पहली बार हमने इसे शुरू किया है। इस कारण से कई समस्याओं का हमें सामना करना पड़ रहा है। यू.जी.सी. ने पाठ्यक्रम का स्थूल रूप निर्धारित किया है। उसके आधार पर हर एक कोर्स के लिए पूरा विवरण हमें तैयार करना पड़ा है। इसमें भारत सरकार की और उन-उन क्षेत्रों में काम करनेवाले विद्वानों की पूरी सहायता भी हमें मिली है। हम उनके कृतज्ञ हैं। दूसरी समस्या पाठ्य-पुस्तकों की है। इस नये पाठ्यक्रम के लिए उपयुक्त पुस्तकें हिन्दी में बहुत कम मिल रही हैं। इस साल छः पुस्तकें हमने स्वयं तैयार कराने का निश्चय किया है, और वे पुस्तकें बहुत जल्दी ही प्रकाशित हो जायेंगी। तीसरी समस्या अध्यापकों की है। उसे भी हमने कुछ हद तक हल कर लिया है। कुछ भी हो इस पाठ्यक्रम को अमल में लाने से हमारा उत्साह बढ़ता ही जा रहा है। दो तीन साल के अंदर अंदर इस पाठ्यक्रम का एक निश्चित रूप बनेगा और वह बहुत ही उपयोगी साबित होगा, इसका हमें पूरा विश्वास है।

सवाल—इस पाठ्यक्रम को यू. जी. सी. ने तैयार किया है। अन्य विश्वविद्यालय भी इसे अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं?

जवाब—यू. जी. सी. की तरफ़ से दोनों पाठ्यक्रम सभी विश्वविद्यालयों के पास भेजे गये हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में भाषा प्रधान पाठ्यक्रम को या उसके कुछ अंशों को अमल में लाने का प्रयत्न चल रहा है। कई लोग सभा से पत्र व्यवहार कर रहे हैं!

सवाल—यह पाठ्यक्रम हिन्दी तक ही सीमित है? या अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी लागू होगा?

जवाब—इस समय हिन्दी के लिये पाठ्यक्रम बना है। भारत के सभी प्रदेशों में वहाँ की प्रादेशिक भाषाएँ राजभाषा के रूप में स्वीकृत की गयी हैं।

उन उन प्रदेशों के विश्वविद्यालयों में इस समय जो जो एम. ए. पाठ्क्रम चलती है वह भी साहित्य प्रधान ही है। उस पाठ्यक्रम में भी प्रयोजन मूलकता का आना जरूरी दीखता है। तभी वे प्रदेशिक भाषाएँ शासन तंत्र चलाने सक्षम निकलेंगी। इस दिशा में अभी प्रयत्न शुरू नहीं हुआ है। बिश्वास है कि यथाशीघ्र प्रयत्न शुरू होगा।

सवाल—हैदराबाद कांप्लेक्स की स्थापना करने के लिए आपको आंध्र प्रदेश सरकार से कोई सहायता मिली है?

जवाब—आध्र प्रदेश सरकार का सहयोग नहीं मिलता तो शायद इस कांप्लेक्स की स्थापना हैदराबाद में नहीं होती। आँध्र प्रदेश सरकार ने 5 लाख रुपये का अनुदान घोषित किया है और कांप्लेक्स के भवन आदि बनाने 100 एकड़ ज़मीन भी देने का वचन दिया है। अभी 3 लाख रुपये की नकद मिली है। जमीन के बारे में अभी निर्णय नहीं हुआ है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आंध्र शाखा के भवन में ही कांप्लेक्स की कक्षाएँ चलती हैं।

प्रमाणित प्रचारक कृपया ध्यान दें!

ता. 1 जनवरी 1981 से प्रमाणित प्रचारक चंदा वार्षिक 10 रुपये होगा।

ता. 30 नवंबर 1980 तक प्रमाणित प्रचारक सन् 1981 के लिए अपना चंदा 10 रुपये सभा के पास भेज दें।

* * *

1981 का अपना प्रमाणित प्रचारक चंदा 10 रुपये जो प्रचारक 30-11-1980 तक सभा के पास भेज देंगे उन प्रचारकों के नाम सभा के द्वारा प्रकाशित दैनिकी 31-12-1980 तक सभा के खर्च पर भेज दी जायगी।

नियत समय के बाद प्रमाणित प्रचारक चंदा प्राप्त होने पर उन प्रचारकों के नाम दैनिकी भेजने की सम्भावना नहीं है।

श्रेयार्थी जमनालालजी

एस. अनंतकृष्णन्, बी. ए., मद्रास-17

प्रश्न—श्री जमनालालजी के उज्ज्वल बनने में भगवान का हाथ था"—स्पष्ट कीजिए।

श्रेयार्थी जमनालालजी की जीवनी के लेखक हैं श्री हरिभाऊ उपाध्याय। उन्होंने अपने मंतव्य में लिखा है कि जमनालालजी राजनैतिक नेता, समाज सुधारक, संगठनकर्ता, व्यापारी, मित्र और सहायक सब कुछ थे। जमनालालजी में एक ज़बर्दस्त दिव्य शक्ति थी जिसके बल पर वे महात्मा गांधी के पांचवें पुत्र बने। महात्मा गांधीजी स्वयं उनको 'संत' दिव्य पुरुष' कहा करते थे। अपनी साधना में जमनालालजी ने गंभीर आत्म-परीक्षण, नितांत साहस, दृढ़ता और आत्मदमन से काम लिया है। ऐसी क्षमता और साहस भगवान के महान अनुग्रह से ही पाया जाता है।

जीवनी की भूमिका में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 'जमन' के बारे में लिखते हैं कि वे केवल व्यापारी वर्ग के ही नेता अथवा प्रतिनिधि नहीं रहे, बल्कि देश के सभी प्रकार के लोगों का विश्वास और प्रेम उन्होंने अपनी देश सेवा, त्याग और सत्य-निष्ठा से प्राप्त कर लिये।

जमनालालजी के जीवन को निकट से देखने से ऐसा लगता है कि उनमें दैविक प्रेरणा थी। इस विचार के पक्ष में दो प्रकार के कारणों का उल्लेख किया है। उनका बच्छराजजी का गोद जाना और महात्मा गांधीजी का पाँचवाँ पुत्र बनना सिवा भगवान के अनुग्रह के और कुछ नहीं है।

राजस्थान के सीकरी ज़िले के काशिकावास गाँव में एक साधारण बनिये के घर में ही जमनालाल का जन्म हुआ। वहीं पर रह जाते तो जमन का जीवन दूसरे रूप में बदल चुका होता। लेकिन जब उनकी उम्र केवल साढ़े चार साल की थी तब उनके जीवन में ऐसा मोड़ आया कि वे गाँव छोड़कर धनी परिवार के पुत्र बने और वर्धा चले गये। यह घटना लेखक के विचार में भगवान की कृपा ही थी।

जमनालालजी के पिता कनिरामजी थे और माता बिरधी बाई थी। वे साधारण परिवार के थे। वे बनिये थे। लेकिन वर्धा के धनी बच्छराजजी के

गोद गये। इनके गोद जाने की कहानी रोचक है। गोद जाना जमनालालजी पसंद नहीं करते थे। इसपर बड़े होने के बाद उनकी माता पिता पर शिकायत थी।

एक बार सेठ बच्छराजजी और उनकी पत्नी सदी बाई, उनके गोद लिये पुत्र रामधनदासजी और उनकी पत्नी चारों सीकर गये। वहाँ श्री रामधनदासजी की अकाल मृत्यु से सेठजी के परिवार में शोक छा गया। इस संदर्भ में बच्छराजजी अपनी पतोहू के लिए एक बच्चे को गोद लेना चाहते थे। बच्चे की तलाश में काशिकावास गये। तभी जमन की माता और सदीबाई की मुलाकात हुई। बातचीत के सिलसिले में सहानुभूति की भावना से जमन की माता ने सदीबाई से कहा कि मेरे तीनों पुत्र तो आपके ही हैं। इसे सदीबाई ने बिरधीबाई का वादा समझा।

वर्धा लौटते समय बच्छराजजी और सदीबाई दोनों कनीरामजी के बेटों में जमन को जो तीनों में सलोना था अपने साथ ले जाने का हठ करने लगे। कनीरामजीं ने भी अपनी पत्नी से कहा कि तुम्हारी जबान से बात निकल गयी तो सोचने की क्या बात है? गाँववालों की सहानुभूति भी बच्छराजजी के साथ थी। इसलिए बच्छराजजी ने जमन को गोद ले लिया। इस घटना में ईश्वरीय संकेत काम कर रहा था। साधारण माता-पिता के यहाँ पैदा होकर धनी घर में पहुँचना और उज्ज्वल बनकर अपनी मधुर स्मृतियाँ व अनमोल परंपरा पीछे छोड़ जाना मामूली बात नहीं है।

गोद दिये जाने पर बच्छराजजी ने कनीरामजी को धन देने का प्रयत्न किया। लेकिन तेजस्वी और स्वाभिमानी कनीरामजी ने धन लेने से साफ़ इनकार कर दिया। सेठजी के हठ से लाचार होकर ग्रामवासियों के लिए एक कुँआ खुदवाया। कुएँ का पानी मीठा और रोगहारक निकला। कूप निर्माण की यह घटना लेखक की दृष्टि में यह बताती है कि मानो जमनालालजी के गोद प्रकरण में ही सेवा का बीजवपन हो गया। अब भी काशिकावास में यह कुआँ मौजूद है। कुएँ खुदवाने की इस घटना में भी भगवान का हाथ था।

गोद जाना और कुआँ खुदवाना दोनों में भगवान का हाथ ही था जिससे जमनालालजी तेजस्वी और उज्ज्वल व्यक्ति बने।

***

राजाजी के जन्म-दिवस के संदर्भ में दो लेख इस अंक में प्रकाशित किये गये हैं। —संपादक

भारत की नारी

बी. के. श्रीनिवास राव, बेंगलूर-2

'भारत की नारी' कविता के कवि 'श्री चन्द मदरासी' हैं। उन्होंने प्रस्तुत कविता में नारी के गुण विशेषों का वर्णन किया है। प्राचीनकाल में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" नामक उक्ति अत्यन्त प्रचलित थी अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता लोग रमते हैं। न जाने यह उक्ति आजकल कहाँ गायब हो गयी है?

कवि कहते हैं कि आदिकाल से इस धरती पर नारी की पूजा होती आयी है। जब हम इतिहास के पृष्ठों को पढ़ते हैं, तो नारी का पलड़ा भारी दिखायी पड़ता है। विधि ने सब कोमल तत्वों से नारी को बनाया है। सुन्दरता के सारे अंशों से उसके रूप को सजाया है। नारी के तन में ममता, दया और करुण का रस ढाला है। उसी विधाता ने उसमें साहस और अपरिमित बल से मन को भर दिया है। इस नारी के सामने देवों की सत्ता भी हार चुकी थी।

जब अबोध बच्चा रोते हुए इस धरती पर आता है तो नारी ही उसे संतृप्त करके, उसके शरीर को कंचन सा कर देती है। नर के लिये नारी ने अपने सभी सुखों का त्याग कर दिया है। नारी ने ही पुरुष को स्वावलंबी बनाया है अर्थात् उसे अपने पैरों पर खड़े होने की प्रेरणा देकर उसकी सहायता की है। उसी नारी के अंचल में ही हरि-हर-ब्रह्म किलकारी भरते थे।

वीरों का निर्माण नारी के बल से होता है। उसमें बच्चों को बनाने और बिगाडने की शक्ति होती है। वह पुरुषों के उत्थान मार्ग में अपना हाथ बँटाती है। वह नर को कुपथ से सुपथ पर ले चलती है। वह अर्धांगिनी के रूप में नर को ईश्वर से मिलाती है। अगर नारी पुरुष से छूट जाती है, तो नर का तन व्यर्थ हो जाता है।

नारी के हाथों में तलवार देखकर, उसकी अपरिमित शक्ति से सेना घबडाती है। आज भी कानों में बिजापुर की रानी की आवाज गूँज रही है। सन् 1857 में झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई ने मर्दानी बनकर अपना साहस दिखाया था। नारी नर के हर काम में कंधा देती आई है।

जब तक घर में गृहिणी नहीं होती है, तब तक घर सूना लगता है। गृहिणी के आते ही फिर घर जगमगाने लगता है। अर्धांगिनी के बिना मानव अधूरा रह जाता है। आजतक नारी के बिना कोई भी काम पूरा नहीं हुआ है। नारी ही पुरुष को धरती पर यश-साहस-बल वैभव प्राप्त कराती है। सचमुच नारी का स्थान अनुपम है।

" "

श्री एस. मुत्तुस्वामी

[लेखक महोदय दक्षिण रेलवे के वरिष्ठ लिपिक हैं जो रेल मंत्रालय द्वारा आयोजित ट्रेनिंग-कार्यक्रम के अनुसार विभिन्न प्रदेशों के रेलवे-मंडलों में जाकर यह अनुभव प्राप्त करके आये हैं कि वहाँ के कार्यालयों में अधिकांशतः हिन्दी माध्यम से काम चल रहा है। इस लेख में पाठक अनुभव करेंगे कि रेल-विभाग हिन्दी को कार्यान्वियन की भाषा का रूप देने में बड़ी तत्परता दिखा रहा है। —संपादक]

हम रेल से अनेक यात्राएँ करते हैं; कारण तो अलग अलग होता है। हमें गत सितंबर 1980 में उत्तर भारत की यात्रा करने का अच्छा मौका मिला जिसके द्वारा हमने उत्तर भारत के मुख्य नगरों का दर्शन किया, तीर्थ-स्थानों में कुछ समय व्यतीत करके वहाँ के मंदिर, मूर्ति आदि आदियों को देखा आध्यात्मिक लाभ भी उठाया।

हाँ, रेलवे बोर्ड के ज़रिये अहिन्दी भाषा-भाषी रेल कर्मचारियों को, जिनको हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान है, उत्तर भारत स्थित हिन्दीभाषी मंडलों/क्षेत्रों में ले जाकर हिन्दी में व्यावहारिक ज्ञानार्जन कराने हेतु आयोजित तीन साप्ताहिक ट्रेनिंग प्रणाली के अंतर्गत हमारा यह द्वितीय दल है। पहले दल का कार्यक्रम पिछले सितंबर 1979 में पूरा हो गया था।

हमारे इस दूसरे दल में विभिन्न रेलों के बहु भाषा-भाषी कर्मचारी (14) चौदह व्यक्ति थे। उनमें तमिल, तेलुगु, कन्नड, असमी, बंगाली मातृभाषा के लोग शामिल थे। हमारी यात्रा की व्यवस्था रेल भवन के हिन्दी प्रशिक्षण विभाग के सर्वतोमुखी प्रतिभा संपन्न श्री शशांक मोहन शर्मा ने खुद की और वे ही दल के मार्गदर्शी रहे। हमें डिब्बा अलग दिया गया; वह भी प्रथम श्रेणी का। उसमें सभी सुविधाएँ विद्यमान थीं; संक्षेप में डिब्बा ही हमारा निवास बना।

पाँचवीं सितंबर 1980 की रात 10 बजे यात्रा प्रारंभ हुई; दिल्ली से कानपुर फिर लखनऊ। कानपुर बहुत बड़ा वाणिज्य केन्द्र है जो उत्तर प्रदेश का मुख्य नगर है। वहाँ हर जगह हिन्दी का इस्तेमाल सुलभ से होता है। वहाँ कोई मंडल कार्यालय नहीं है, इसलिए हमारा ट्रेनिंग कानपुर स्टेशन व क्षेत्रीय कार्यालयों में हुआ। कानपुर में दो दिन का प्रशिक्षण लेना था। क्षेत्रीय अधिकारी

श्री अवस्थीजी के हिन्दी भाषण बहुत सुन्दर ढंग से हुए जो बडे शिक्षाप्रद भी है। उसके बाद हम लखनऊ गये। वहाँ उत्तर तथा पूर्वोत्तर दोनों रेलों के अलग अलग मंडल कार्यालय हैं। उत्तर रेल की अपेक्षा पूर्वोत्तर रेल मंडल में अधिक और सुचारु रूप से हिन्दी का काम हो रहा है। कार्यालय-ज्ञापन, कार्यालय आदेश, प्रारूप, मसौदा, पृष्ठांकन आदि आदि अच्छी तरह हिन्दी में हो रहे है। लखनऊ में शिक्षण कार्य के बाद हम लोग बाज़ार गये: दूकानदारों से बात-चीत बड़ी सरलता से हमने की। बाज़ार के बाद "भूल भलैया" नामक भवन देखा जो वहाँ के मेडिकल कालेज तथा मुंशी प्रेमचंद की कहानी शतरंज के खिलाड़ी में वर्णित गोमती नदी के बीच स्थित है। यह भवन बहुत बढिया ढंग से मुसलमान शासकों का लगभग 700, 800 साल पहले बनवाया हुआ लगता है। उसकी मंजिल पर कई द्वार आमने सामने हैं। परन्तु हरेक व्यक्ति को एक द्वार से अंदर घुस कर सारे मकान में इधर उधर घूम करके उसी द्वार से बाहर आना मुश्किल होगा। गुप्तचरों का आगमन, दुश्मनों का इस मकान पर हमला आदि व्यवहारों को नियंत्रित करके और उन्हें निपटाने का उपाय मुसलमान शासकों ने अच्छी तरह किया। साल में एक बार यहाँ उरुस होता है। तब पाकिस्तान जैसे विदेशों से मुसलमानों का यहाँ आगमन होता है।

उसके बाद हम लोग हिन्दुओं का पुरातन नगर पुण्यस्थल (काशी) वाराणसी पहुँचे। वाराणसी मंडल उत्तररेलवे में है जहाँ रेलवे कार्यालयों में सभी काम हिन्दी के माध्यम से हो रहे हैं। वास्तव में वाराणसी और इलाहाबाद इन दोनों मंडलों में जो काम हिन्दी में होता है वह राष्ट्र के अन्य प्रान्तों के लिये उदाहरण-स्वरूप हैं; वह अन्य कार्यालयों के लिये आश्रय के रूप में हैं। वाराणसी मंडल के हिन्दी के काम से हमें बहुत प्रयोजन हुआ। वैसे ही डीज़ल रेल इंजन कारखाने में भी हिन्दी का बड़े पैमाने में और अच्छी तरह प्रयोग हो रहा है। वाराणसी में गंगास्नान के साथ काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय, श्री विश्वनाथजी का मंदिर बौद्ध तीर्थस्थान सारनाथ आदि के दर्शन किये। सारनाथ मंदिर साम्राट अशोक के समय का है।

शास्त्रों के अनुसार वाराणसी से बाक़ी संसार का कोई संबन्ध नहीं है। वह स्वर्ग के समान है! हिन्दी भाषा की दृष्टि से भी यह कथा सौ फ़ीसदी प्रमाणित होती है। यहाँ के कार्यालयों में हिन्दी का जो प्रयोग हो रहा है वैसा भारतवर्ष में अन्यत्र देखना दुर्लभ है। भाषा, संस्कृति, कला की दृष्टि से यह सर्वोच्च जगह है, जीवन में कम से कम एक दफ़ा वाराणसी जाकर वहाँ एक हफ़्ते तक ठहरना है।

इलाहाबाद में हमारा अगला प्रोग्राम था। मंडल कार्यालय के लिए छुट्टी होने के कारण स्टेशन कार्यालयों में ट्रेनिंग सविस्तार हमने लिया। स्टेशन-अधीक्षक महाशय ने राजभाषा में सुन्दर भाषण दिया जो व्यावहारिक ज्ञान के लिए बहुत उपयोगी रहा। हम अहिन्दी भाषी लोगों का हिन्दी के सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय संस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन, प्रयाग में स्वागत हुआ। वहाँ के कार्य-कलापों से हमें विभ्रम हुआ। ग्रामफ़ोन रिकार्ड की तरह एक प्लैट के एक ही पृष्ठ पर श्रीमद्भगवत्गीता के अठारह अध्यायों की लिखावट सारे संसार में अद्वितीय बनी है। बताया जाता है कि यह लिखावट किस महानुभाव ने की है, यह कहना कठिन है। सचमुच यह 900 वर्ष की पुरानी चीज होगी। हम लोगों को अपने अपने प्रान्तों में हिन्दी की स्थिति के बारे में छोटा-सा भाषण देने का मौक़ा मिला। तमिलनाडु की परिस्थिति बताते हुए मैंने उल्लेख किया कि बहुत कठिनाई का सामना करके ही हिन्दी की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर सका। इलाहाबाद में हमने त्रिवेणी संगम में स्नान किया।

हमारा दल वहाँ से भारत के मध्य स्थल जबलपुर पहुँचा जहाँ पर मध्य रेल्वे का कार्यालय है। वहाँ भी हिन्दी का कामकाज सौ फ़ी सदी वाराणसी मंडल के समान हो रहा है। वहाँ के लोको शेड पर भी हिन्दी का इस्तेमाल पूर्णरूप से और सरल व तेजी से हो रहा है। संक्षिप्त में कहें तो दक्षिणी अहिन्दी प्रान्तों में जैसे काम अंग्रेजी में होता है उसी प्रकार वहाँ हिन्दी में होता है। जबलपुर में 'हिन्दी दिवस' समारोह में भाग लेने का सौभाग्य मिला। प्रमुख देश भक्त और हिन्दी के सुविख्यात सज्जन स्वर्गीय सेठ गोविन्ददासजी की सुपुत्री श्रीमती रत्नकुमारजी, संसद-सदस्या ने बैठक की अध्यक्षा रहकर समारोह को सफल और सुशोभित किया। श्रीमती के आग्रह से मद्रास के हमारे भाई श्री मुहम्मद हयातजी ने अपने भाषण से सभा को मुग्ध किया और मैंने अपने मीरा गीत से समारोह की सुषमा बढ़ायी। जबलपुर की वाह वाही के साथ हमारा अहिन्दी भाषी दल दिल्ली जंकशन द्वारा आगे बढ़कर हिन्दुओं का स्वर्ग-द्वार-हरिद्वार पहुँचा।

हरिद्वार में कोई रेलवे मंडल कार्यालय नहीं है। फिर भी उत्तर रेलवे के मुरादाबाद मंडल का यह मुख्य पर्यटन केन्द्र है जहाँ हिन्दी का सदुपयोग सरकारी कामकाज में हो रहा है। स्टेशन की फाइलों से हमने ट्रेनिंग लिया। आरक्षण चार्ट और अन्य सार्वजनिक सूचनाएँ हिन्दी में बड़ी सरलता से तैयार की जा रही हैं। हरिद्वार में हमने दो दिन गंगाजी में स्नान करके जीवन को पावन बनाया। पर्वत की चोटी पर स्थित श्रीमंसादेवी मंदिर में श्रीमाता के दर्शन किये। पर्वतारोहण, वह भी बहुत-सी सीढ़ियों द्वारा बहुत ऊँचाई पर एक दम चढ़ जाना

कठिन हो गया। मैं अपने दल में पीछे पड़ गया। पहले पहल चढ़कर ऊपर जानेवाले नौजवान श्री शशांक शर्माजी को और अपनी क्रमशः मैंने डि. एल. डबल्यू. और स्टीफ़ेनसेन कालीन इंजनों की उपमा दी जिसका समस्त लोग बड़ी खुशी के साथ रसास्वादन किया। डि.एल.डबल्यु. विद्युत इंजन अति तेजस्वी है न ! हरिद्वार में शाम को हमने बस से नगर के सभी आश्रम, मंदिर देखे जिनमें से दक्ष कुंड बहुत पुरातन और धार्मिक स्थल है। गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, गोपाल, सिंहासन पर देवीजी, गीताचार्य श्रीकृष्ण आदि, आदि मूर्तियों का हरेक रूप आइने की व्यवस्था से बहुरूपों में प्रतिबिंबित होने का सुन्दर दृश्य देखने लायक है।

हरिद्वार के बाद हम वीर रस के प्रतीक सिक्खों का ऐतिहासिक सरोवर अमृतसर पहुँचे। अहिन्दी प्रान्त होने के कारण अमृतसर में हिन्दी का प्रयोग धीरे-धीरे हो रहा है। फिर भी राजभाषा के साथ अत्यन्त प्रेम उन लोगों में है। अमृतसर तो शहीदों की भूमि है। भारतवर्ष के हिन्दू, मुसलमान तथा सिक्ख वीर योद्धाओं के रक्त प्रवाह से सिंची हुई यह जगह जालियाँवालाबाग, शहीद कुएँ इत्यादि स्वाधीनता संग्राम से अलंकृत हैं। जालियाँवालाबाग में आजकल मनोरम पार्क बनाया गया है। वास्तव में अमृतसर भारतमाता के सिर पर अंकित स्वर्ण मकुट है। यहाँ के हरेक व्यक्ति में राजभक्ति, राष्ट्रप्रेम, वीरता, कठिन परिश्रम आदि सद्गुण झलकते हैं।

अमृतसर पाकिस्तान की सीमा पर है, यहाँ से एक एक्सप्रेस गाड़ी हर रोज लाहोर जाती है और वहाँ से एक गाड़ी यहाँ आती है। पाकिस्तान के दो-चार लोगों से मेरी मुलाकात हुई। सुदूर दक्षिण से आये मुझे हिन्दी में बातचीत करने का अच्छा अवसर मिला। अमृतसर के सुप्रसिद्ध स्वर्ण मंदिर में हमारे दल का प्रवेश सायं 6 बजे प्रार्थना पाठ के सुन्दर समय पर हुआ जो हमारा सौभाग्य है। अमृतसर से बिदाई लेकर सीधे नई दिल्ली पहुँचे।

हमारे आगे के कार्यक्रम के अनुसार हमें उत्तर रेलवे के बडौदा हाउस स्थित प्रधान कार्यालय राजधानी दिल्ली में प्रशिक्षण दिया गया। रेलवे बोर्ड के बहुत नजदीक बसे इस विशाल कार्यालय में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग सरल रूप से हो रहा है जो हमें शिक्षा प्रद रहा। अपराह्न लगभग 2-30 बजे बैठक कक्ष में वहाँ के हिन्दी अधिकारी से सुन्दर भाषण श्रवण करने को मिला जो हमारे सारे भ्रमण का मुख्य संदर्भ रहा। दिल्ली में उत्तर रेलवे से संचालित अखिल रेल हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन प्रतियोगिता की पूर्वांग परीक्षा के लिए उपस्थित उत्तर भारत के विभिन्न भाषा-भाषी कर्मचारियों से हमारा संपर्क अनायास हुआ जिससे हिन्दी में बात-चीत करने एवं विचार परिवर्तन करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ।

दिल्ली के बाद हम राजस्थान के महानगर अजमेर मंडल पहुँचे। अजमेर में हिन्दू और मुसलमान धर्मों का मेल-मिलाप है। अजमेर मंडल कार्यालय जो पश्चिम रेलवे के अंतर्गत है हिन्दी का सुन्दर प्रयोग करके अपने कार्यकलाप में यशस्वी रहा। कई फ़ाइलों, बैठक के कार्यवृत्त, सूची, आदेश, कार्यालय तथा सार्वजनिक ज्ञापन आदि आदि में हिन्दी का सरल इस्तेमाल यहाँ हो रहा है। यहाँ के बाजार मंदिर आदि के द्वारा हमने अपने पढ़े लिखे ज्ञान के अलावा व्यावहारिक ज्ञानार्जन को सार्थक बनाया। वहाँ के चिश्ती बाबा का दरगाह मुसलमानों का मुख्य धार्मिक केन्द्र है एवं पुष्करराज हिन्दुओं का मुख्य क्षेत्र माना जाता है। हम लोगोंने सुबह सुबह पहाड़-प्रदेश में बसे पुष्करराज जाकर तीर्थ-स्नान किया और वहाँ के ब्रह्माणी के मंदिर के दर्शन किये। वहाँ दक्षिणी शैली से बनाया हुआ विष्णु मंदिर भी आत्म तृप्ति प्रदान करने वाला है।

धार्मिक स्थान के अलावा अजमेर ऐतिहासिक महत्व का केन्द्र भी है। यहाँ महाराजा पृथ्वीराज का किला बड़ी गंभीरता से दीख पड़ता है। राजपूतों का यह किला भारतवर्ष के इतिहास से संबद्ध है। मुहम्मद गोरी के समय का एक सुन्दर मकान दर्शनीय है। कहा जाता है कि वह पहले हिन्दुओं का प्रसिद्ध वेद पाठशाला था। फिर मुसलमान शासक कुदबुद्दीन के समय में इसे ध्वंस करके, कई हिन्दू मंदिरों के खंडहरों से ढाई दिन में आजकल का यह नूतन मकान बनवाया गया था। (लगभग सन् 1300 में) इस मकान की पूर्व की कहानी सुनकर हम लोग स्तंभित हो गये। यह आजकल भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के द्वारा सुरक्षित है।

अजमेर में हमारे ट्रेनिंग का अंतिमचरण था। अजमेर से हम सीधे नई दिल्ली रेल भवन 27 सितंबर 80 को पहुँचे। शामको निदेशक राजभाषा का परिचय पाकर सारे भ्रमण का संक्षिप्त विवरण उनको सुनाया जिसे उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से सुना। तत्पश्चात छः बजे केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद की केन्द्र शाखा दिल्ली से आयोजित विशेष बैठक में हमने भाग लिया और अपने अपने अनुभवों के बारे में भाषण दिया। उस सुन्दर अवसर पर मैंने अपनी यात्रा तथा उद्देश्य के बारे में स्वरचित कविता प्रस्तुत की जिसे सब सदस्यों ने प्रेम से सुनी।

संक्षेप में हम लोगोंने अपने अपने घर छोड़ कर अपनी मातृभाषा को भूलकर सारी बातचीत राज भाषा में करके हिन्दी में व्यावहारिक ज्ञानार्जन किया।

इस तरह की विस्तार योजना बनाकर सुविधाएँ देने के उपलक्ष्य में मैं, निदेशक, राजभाषा, रेलवे बोर्ड का सदैव आभार मानता हूँ। जय हिन्द! जय हिन्दी!!

द्वितीय अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन, वडोदरा—एक झलक

हम, आप और यह सारा आलम यही सोचता रहा, विचारों के सागर में गोते लगाता रहा, आशा की ज्योति जलाये बैठा रहा कि भाषावार प्रान्तों के विभाजन के पश्चात् भारतीय भाषाओं का आशातीत उन्नयन होगा। अमुक-अमुक राज्यों में वहाँ की प्रादेशिक भाषा प्रशासन का माध्यम बनेगी। भारतीय भाषाओं का कलेवर बदल जाएगा परन्तु आत्मा वही रहेगी। सामाजिक, औद्योगिक, राष्ट्रीय, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा साहित्यिक क्षेत्र में एक अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित होगा। विचारों की क्रान्ति के साथ-साथ सामाजिक संगठन का ढाँचा ही बदल जाएगा। सर्वप्रथम शिक्षा का माध्यम यदि भारतीय भाषाएँ बना दी जातीं तो यह संभव होता।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् तीन दशक बीत गये। अंग्रेज़ी का वर्चस्व ज्यों का त्यों बना है। महात्मा गांधीजी के कथनानुसार भारतीय भाषाएँ अपने उचित स्थान पर जब प्रतिष्ठित होंगी तभी राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति का सपना साकार होगा।

प्रार्थना के पश्चात् वडोदरा के समाजसेवी एवं शिक्षाप्रेमी अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन तथा सातवाँ अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन के कार्याध्यक्ष श्री नानालाल चोकसी ने आगन्तुकों का स्वागत करते हुए कहा कि स्वतंत्रता प्राप्त होते ही शिक्षा का माध्यम मातृभाषा घोषित कर देते तो आज भारतीय भाषाओं की ऐसी दुस्थिति न होती। अब तक भारतीय भाषाएँ वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्द भण्डार से समृद्ध हो जातीं। नागरी लिपि के द्वारा भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आ जातीं। साहित्यिक आदान-प्रदान के साथ-साथ पड़ोसी भाव एवं सद्भावना बढ़ जाती। मातृभाषा के माध्यम से गुजरात में शिक्षा प्रदान की जा रही है। अंग्रेजी का बोलबाला नहीं है। अन्य राज्यों से गुजरात की स्थिति संतोषजनक प्रतीत होती है। यहाँ प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक गुजराती माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था है। गुजराती में पाठ्य-पुस्तकों का अभाव भी नहीं है। मातृभाषा के जरिये छात्र बड़ी आसानी से विषय समझ सकते हैं।

स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों, विद्वानों, शिक्षा-शास्त्रियों एवं साहित्यकारों का स्वागत करते हुए अमित आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

आचार्य श्री केशवराव का. शास्त्री महामहिमोपाध्याय, विद्यावाचस्पति ने अपने स्वागत व्याख्यान में बताया कि भारत की सभी भाषाओं का समादर होना चाहिए। चाहे वह गुजराती, मराठी हो, तेलुगु, तमिल हो, बंगला असामिया हो । स्वाधीनता के पश्चात् इतना अरसा बीत गया है, भाषा के मामले में हम पिछड़े हैं। अंग्रेजों के शासनकाल में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा-दीक्षा का आयोजन था । आजकल बालमन्दिरों में भी अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा दी जा रही है।

महात्मा गांधीजी का स्पष्ट अभिप्राय था कि बालमन्दिरों से लेकर उच्चतम शिक्षा तक का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए। राष्ट्रभाषा हिन्दी का सूत्रपात महर्षि दयानंद ने किया। महात्मा गांधीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं मातृभाषा के प्रचार प्रसार का कार्य देश भर में किया। लोग अपने बच्चों को राष्ट्रीय शालाओं में भेजा करते थे। स्वराज्य के बाद राष्ट्रीय शालाएँ, विद्यापीठ लगभग समाप्त हो गये हैं। सीमित दायरे में ही अंग्रेज़ी का ज्ञान आवश्यक है। बशर्ते कि वह भारतीय भाषाओं की प्रगति में बाधक न हो।

राज्यों के परस्पर व्यवहार और केन्द्र के साथ व्यवहार में हिन्दी के उपयोग के संबन्ध में केन्द्र सरकार द्वारा आदेश भी दिया गया है। अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने के कारण बच्चों के हृदय में अपने देश, अपनी राष्ट्रभाषा अपनी मातृभाषा के प्रति आदर की भावना लुप्त हो गयी है। हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दकोषों की प्राप्ति अब सुलभ हो गयी है। हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाओं में उच्चकोटि के ग्रंथ उपलब्ध हैं स्तरीय पाठ्य पुस्तकें विपुलो मात्रा में प्राप्त हो रहे हैं। आप सब सरस्वतीपुत्रों का स्वागत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है।

काव्यभूषण पी. आर. रुक्माजी राव 'अमर' के उद्घाटन भाषण का सार:

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने राष्ट्रगीत 'जन गण मन' की रचना विशाल राष्ट्र को दृष्टि में रखकर ही की। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने भारतीय जनमानस को एक मंच पर एकत्रित कर अपने विचारों के आदान-प्रदान के रूप में हिन्दी को अपनाया। उत्तर और दक्षिण के परस्पर सहयोग की भावना को दृष्टि में रखकर बापूजी ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना तमिलनाडु के मद्रास शहर में की। हिन्दी विरोध केवल राजनैतिक षडयंत्र है। देश में भिन्न-भिन्न भाषाएँ, भिन्न-भिन्न आचार व्यवहार होने पर भी हमारे विचारों में साम्यता दृष्टिगोचर होती है। बाहरी कलेवर अलग-अलग होने पर भी आत्मा एक है क्योंकि हमारी संस्कृति एक है।

तमिलभाषा का इतिहास लगभग दो हज़ार साल का गौरवशाली इतिहास है। अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व देश में शासन का कार्य, न्यायालयों का सारा कारोबार भारतीय भाषाओं द्वारा सम्पन्न हो रहा था। भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत में वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली का अभाव नहीं है।

वह अंग्रेज़ी भाषा है जिसने विषमता के बीज बोकर माँ-बेटी के बीच, बहन-बहन के बीच फूट की दीवार खड़ी कर दी। इसके कारण आपस में मनमुटाव बढ़ने लगा। एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। भाषा को लेकर देश में एक बहुत बड़ा बवण्डर खड़ा कर दिया गया। यह षड़यंत्र अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा पाये हुए इनेगिने लोगों द्वारा रचा जा रहा है। सचिवालयों में प्रशासन कार्यों में लगे रहनेवाले सचिव लोग अपनी मातृभाषा में अपने विचार व्यक्त करने में असमर्थ हैं। उन्हें इस बात का डर है कि शासन की मशीन से अंग्रेज़ी हट जाएगी तो उनके दिमाग़ का दीवालियापन का पर्दाफ़ाश हो जाएगा। उनकी यही इच्छा, अभिलाषा है कि जब तक वे सेवारत रहेंगे तब तक अंग्रेज़ी बनी रहे। इतना ही नहीं उनके पश्चात उनकी संतान उनके स्थान को ग्रहण करे। इनकी साजिश यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति हो तो कुछ हद तक हम उसे मान भी सकते हैं। उनकी साजिश सारी भारतीय भाषाओं की ओर तीरन्दाज़ है। यह नौकरशाही की देन है। और आगे यह षड़यंत्र नहीं चलेगा। देश में चलेगी देश की भाषा, देश में फूले-फलेगी देश की भाषा।

सम्मेलन स्मरणिका का प्रमोचन करते हुए बीहार के लोकप्रिय कवि श्री बाबूलाल 'मधुकर' ने आम भाषा की सुगमता, सुबोधता तथा भावी जीवन में भारतीय भाषाओं के महत्वपूर्ण योगदान की भूमिका पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात राज्यसभा के सदस्य श्री लाडली मोहन निगम ने भारत सरकार की योजनाओं, कार्यप्रणाली तथा राष्ट्र की वर्तमान गतिविधियों का रेखाचित्र प्रस्तुत किया। कार्यक्रम के आरंभ में श्रीपाद केळकर एवं श्रीमती इन्दुमति केळकर, ने स्वागताध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उद्‌घाटनकर्ता, स्मरणिका प्रमोचक तथा श्री लाडली मोहन निगम का परिचय दिया।

रात को आर्यकन्या ललितकला विद्‌यालय, वड़ोदरा की छात्राओं ने सुश्री प्रतिभा पंडित के निर्देशन में भरतनाट्‌यम का भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। गुरुवर श्री कुबेरनाथजी तंजोरकर के संगीत ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। राम मनोहर लोहिया स्मृति केन्द्र के कलाकारों द्वारा एक हृदयग्राही

प्रहसन प्रस्तुत किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि कलारसिक श्री पी. आर. रुक्माजी राव 'अमर' रहे।

दिनांक 1-11-80 को केन्द्रीय व प्रान्तीय शासन, प्रशासन, न्यायालय, शिक्षा का माध्यम, सार्वजनिक तथा निजी औद्योगिक क्षेत्रों में अंग्रेजी का खात्मा करने, लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा संस्थापित करने आदि विषयों पर प्रस्ताव पारित हुए। भारत के विभिन्न प्रान्तों से पधारे हुए प्रतिनिधि चर्चा में सम्मिलित होकर अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

दोपहर श्री तिरुज्ञानसम्बन्धन ने अपने विशेष भाषण में भारतीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति पर अपना मत प्रकट करते हुए बताया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के तीन दशक के उपरान्त भी भाषाएँ काठ के घोड़े के समान उसी स्थान पर डोलती नजर आ रही हैं। तंजाऊर के बृहदीश्वर के मंदिर के गोपुर तथा पांबन पुल के निर्माता अंग्रेजी के ज्ञाता नहीं थे। अंग्रेजी के वर्चस्व तथा हीनग्रंथी की भावना के प्रति उन्होंने खेद प्रकटाया।

संध्या समय असम के प्रसिद्ध साहित्यकार ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता श्री बीरेन्द्र भट्टाचार्य ने अपने भाषण में राष्ट्र में नवजागरण, लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा, जनभाषाओं के पारस्परिक सहयोग, सांस्कृतिक चेतना, साहित्यिक आदान-प्रदान, परम्परा, राजनैतिक गतिविधि तथा राष्ट्रोन्नति पर अत्यन्त प्रभावशाली भाषण दिया। तत्पश्चात् नगर के प्रमुख मार्गों से प्रतिनिधियों का जुलूस निकला।

रात को श्रीबाबूलाल 'मधुकर' की अध्यक्षता में भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों का सम्मेलन हुआ। इसमें सर्वश्री डा. पारुकान्त देसाई, श्री वीरेन्द्रसिंह गोधारा श्री चन्द्रप्रकाश 'देबल' श्री रुक्माजी राव 'अमर' श्री तिरुज्ञानसंबंधन, तथा श्री के. जे. जोसफ आदि विभिन्न भाषाभाषी कवियों ने भाग लिया।

दिनांक 2-11-80 को अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन एवं अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का संयुक्त समापन समारोह सम्पन्न हुआ। इसमें लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा की दिशा में रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गयी। भावी कार्यक्रम निर्धारित किया गया। धन्यवाद समर्पण के पश्चात सम्मेलन समाप्त हुआ।

प्रस्तोता : पी. आर. रुक्माजी राव 'अमर'

प्रधान सचिव की केरल यात्रा से—

केरल प्रदेश की प्रकृति नित्य नूतन है। केरल पर्यटकों के लिए बहुत आकर्षक और सम्मोहक है। राजनीतिक दृष्टि से जागृत है। साक्षरता में भारत के अन्य प्रदेशों से आगे है। यहाँ के गाँव और शहर साफ़-सुथरे हैं। केरल कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ चाय, काफ़ी, रबड़, इलायची सुपारी, कालीमिर्च, चावल, नारियल और केले आदि की उपज होती है। केरल का समुद्रतीर 360 मील लंबा है। तीर भूमि के लोग मछली का व्यापार करते हैं। केरल में करीब 44 नदियाँ बहती हैं। इन नदियों के पानी से केरल हमेशा सस्य श्यामल रहता है। यहाँ के निवासियों में हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइयों की संख्या अधिक है।

केरल में दिनांक 22-11-80 से 26-11-80 तक भ्रमण किया। इससे वहाँ के हिन्दी प्रचारकों, हिन्दी प्रेमियों और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरल शाखा के कार्य से प्रत्यक्ष परिचय व संपर्क स्थापित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। एरणाकुलम, पय्यनूर, नीलेश्वर तलच्चेरी, कालिकट, कोल्लम तथा तिरुवनंतपुरम केन्द्रों का संदर्शन किया। केरल शाखा के कर्मठ सचिव श्री के. रामदासन नायर और तलच्चेरी के प्रचारक व केरल शाखा की कार्यकारिणी समिति के सदस्य श्री पी. पी. अप्पु ने भ्रमण में साथ रहकर इसे उपयोगी और प्रभावशाली बनने में बड़ा सहयोग दिया।

एरणाकुलम शहर के बीच सभा का अपना विशाल भवन है। आडिटोरिम है। यहाँ सभा कार्यालय, विद्यालय, पुस्तकालय, प्रेस, बिक्री विभाग तथा नर्सरी स्कूल आदि संचालित हैं। नर्सरी स्कूल में त्रिभाषा-सूत्र अमल में लाया जा रहा है। नीलेश्वर, कालिकट तथा कोल्लम के सभा के भवनों को देखने का मौक़ा मिला। इन भवनों में हिन्दी विद्यालय; पुस्तकालय तथा वाचनालय आदि चल रहे हैं। हर जगह केरल के हिन्दी प्रचारकों की समस्याओं पर विस्तृत रूप से चर्चाएँ हुईं। हिन्दी प्रचार व प्रसार की वृद्धि के बारे में चर्चाएँ हुईं। अंतिम मंजिल तिरुवनंत-पुरम में महात्मा गांधी कालेज के हिन्दी प्रोफ़ेसर तथा हिन्दी, मलयालम तथा अंग्रेज़ी के यशस्वी लेखक डॉ. चंद्रशेखरन नायरजी की अध्यक्षता में बहुत बड़ी सभा का आयोजन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की कार्यकारिणी समित के

उत्साही सदस्य श्री पालयन सदाशिवन नायर के द्वारा हुआ। इस सभा में केरल के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, हिन्दी प्रचारक, प्रचारिकाएँ दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, केरल शाखा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री के. आर. इलंकत तथा वर्तमान अध्यक्ष श्री दामोदरन पोट्टीजी आदि ने भी भाग लिया।

केरल का हिन्दी प्रचार ऐतिहासिक महत्व रखता है। महात्मा गान्धीजी की अध्यक्षता में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना के साथ ही केरल की स्वतंत्रता प्रेमी जनताने हिन्दी का स्वागत किया। स्वतंत्रता संग्राम के साधन के रूप में केरल की प्रबुद्ध जनताने हिन्दी प्रचार के लिए तन मन धन से महान् प्रयत्न किया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अथक प्रयत्न से केरल में हजारों सेवाव्रती हिन्दी प्रचारक तैयार हुए। गाँव गाँव में हिन्दी विद्यालय खुले। लाखों लोगों को हिन्दी सिखायी गयी। गत पचास साठ वर्षों से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की केरल शाखा केरल में हिन्दी प्रचार का कार्य करती आ रही है। हिन्दी प्रचार सभा के अथक परिश्रम के फलस्वरूप केरल के सभी हाईस्कूलों व कालेजों में हिन्दी को उचित स्थान मिला। विश्व विद्यालयों में हिन्दी का शोध कार्य सफलतापूर्वक हो रहा है। केरल में कई कवि, साहित्यकार, निबंधकार, तथा नाटककार हैं जिनकी मौलिक व सृजनात्मक रचनाएँ हिन्दी में प्रकाशित हैं। हिन्दी से मलयालम और मलयालम से हिन्दी में कई उत्तम ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित होते हैं। केरल में कई जगहों पर हिन्दी मुद्रणालय भी हैं। यद्यपि वहाँ के स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई अच्छी तरह हो रही है तथापि केरल सरकार की हिन्दी संबंधी नीति थोड़ी निराशाजनक है। इस बात की ओर सभी हिन्दी प्रचारकों तथा स्कूलों के हिन्दी अध्यापकों ने ध्यान आकृष्ट किया।

आजकल केरल के सभी स्कूलों में मलयालम, अंग्रेजी तथा हिन्दी तीन भाषाओं का अध्ययन और अध्यापन अमल में है। पर आचरण में अंग्रेजी और मलयालम को जितना महत्व दिया जा रहा है, उतना महत्व हिन्दी को नहीं दिया जाता। अंग्रेजी और मलयालम की पढाई के लिए ज्यादा समय दिया जाता है। हिन्दी के लिए कम समय दिया जाता है। अंग्रेजी और मलयालम में पास होने के लिए एक-एक सौ अंकों के प्रश्नपत्र हैं तो हिन्दी के लिए 50 अंकों का एक ही प्रश्नपत्र है। तीनों प्रश्न पत्रों में कुल मिलाकर 90 अंक प्राप्त करें तो परीक्षार्थी उत्तीर्ण माना जाता है। केवल अंग्रेजी और मलयालम के पत्रों में ही विद्यार्थी 90 अंक प्राप्त करें तो उत्तीर्ण माना जाता है। हिन्दी में अंक प्राप्त न हो तो भी अनुत्तीर्ण नहीं होता। इस नीति के

कारण हिन्दी के प्रति विद्यार्थियों में लापरवाही की भावना घर करती जा रही है। इस नीति को बदलवाना बहुत ज़रूरी है। केरल के मुख्य मंत्री, शिक्षामंत्री तथा शिक्षा विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों से मिलने, इस बारे में निवेदन समर्पित कर इस नीति को बदलवाने की योजना दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से बनायी जा रही है। इस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिया गया है।

स्कूलों की इस स्थिति का प्रभाव कालेजों की हिन्दी पढ़ाई पर भी पड़ने की आशंका है। प्रसन्नता की बात है कि केरल सरकार की हिन्दी नीति पर केरल के सभी प्रचारकों और हिन्दी प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। शीघ्र ही केरल के हिन्दी अध्यापकों तथा स्वतंत्र हिन्दी प्रचारकों के बृहद् सम्मेलन के आयोजन का प्रबंध केरल शाखा की ओर से होनेवाला है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की प्रचारक प्रशिक्षण परीक्षा की मान्यता केरल में कई वर्षों तक थी। आजकल नहीं है। यह भी मालूम हुआ कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की प्रवीण डिग्री की भी मान्यता रद्द करने का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसी प्रक्रिया के पीछे जो शक्तियाँ काम कर रही हैं, उन पर भी इस भ्रमण के अवसर पर कितने ही प्रचारक बंधुओं ने प्रकाश डाला।

तिरुवनंतपुरम केरल राज्य की राजधानी है। वहाँ दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का अपना भवन नहीं है। इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न शुरू हो रहा है। उपर्युक्त सभी बातों पर ध्यान देकर सभा की केरल शाखा के द्वारा कार्यकर्ताओं, प्रचारकों तथा स्कूल के हिन्दी अध्यापकों में नई स्फूर्ति लाने, सबके समन्वित सहयोग से केरल राज्य में हिन्दी प्रचार व प्रसार को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

केरल की जनता में हिन्दी विरोध की भावना नहीं है। विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ भी हिन्दी विरोधी नहीं हैं। यद्यपि राज्य शासन में थोड़ी-सी अस्थिरता है तथापि गद्दीधारी हिन्दी के अनुकूल है। परन्तु स्वार्थी शक्तियाँ अंदर से अपनी शक्ति का उपयोग कर हिन्दी की पढ़ाई को कमज़ोर बनाने पर तुली हुई हैं। उन शक्तियों को निरुत्साहित करना ज़रूरी है। मुझे संपूर्ण विश्वास है कि केरल की प्रबुद्ध जनता, कर्मठ हिन्दी प्रचारक तथा हिन्दी प्रेमी इस दिशा में कदम उठाएँगे और आवश्य सफलता प्राप्त करेंगे।

* *
*

नास्तिक प्रेमचन्द

एस. रेवण्णा, बेंगलूर

प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में यह एक विशेष बात थी कि वे परलोक की अपेक्षा इहलोक की चिन्ता अधिक करते थे। यों कह सकते हैं कि किसी दैवी विधान में उनका कोई विश्वास नहीं था। उनके लिए ईश्वर मनुष्य की कल्पना का खेल था। पहले वे किसी परम शक्ति में विश्वास रखते थे, लेकिन यह उनके लिए संस्कारों की देन थी। वह उनके चिन्तन का फल नहीं था। वे बहुधा कहा करते थे कि विश्व के मूल शक्ति को जैसे चींटियों, मक्खियों या मच्छरों के जीवन से कुछ लेना देना नहीं है, वैसे ही मनुष्य के जीवन से भी उसका कोई सरोकार नहीं।

प्रेमचन्द के आध्यातिमक चिन्तन के बारे में श्री विद्यानिवास मिश्रजी की बातें उल्लेखनीय हैं:—

"यद्यपि ईश्वर और परलोक में विश्वास करने में वे अपने को असमर्थ पाते थे पर इस लोक मंगल-भूमि के सदैव आकांक्षी थे। लोक मंगल के लिए उनकी इस निश्चल प्रीति ने ही उनको दुख हँसते-हँसते सहने तथा कड़ुवी से कड़ुवी आलोचना हँसकर टाल देने की अपूर्व क्षमता प्रदान की थी। उनका मानवता में विश्वास सदैव अटूट और सजग है।

बीमारी में तिल-तिल घुलते हुए भी प्रेमचन्द कर्मपथ पर अडिग रहे। इस कर्मवाद के लिए उन्होंने अंतिम समय तक भगवान का सहारा लेना मंजूर न किया। 9 दिसंबर, 1935 को प्रेमचन्द ने जैनेन्द्र को लिखा -

"चतुर्वेदी ने कलकत्ते बुलाया था कि आकर नोगूची, जापानी कवि, का भाषण सुन जाओ। यहाँ नोगूची हिन्दू यूनिवर्सिटि आये. उनका व्याख्यान भी हो गया, मगर मैं न जा सका। अक्ल की बातें सुनते और पढ़ते उम्र बीत गयी। ईश्वर पर विश्वास नहीं आता, कैसे श्रद्धा होती। तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो, जा नहीं रहे बल्कि पक्के भगत बन रहे हो, मैं संदेह से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ।"

महात्मा गांधीजी का प्रेमचन्द पर गहरा प्रभाव पड़ा था, परन्तु गांधीजी की भांति वे ईश्वर, प्रार्थना आदि पर विश्वास नहीं कर पाये। प्रेमचन्द का अभिप्राय था कि महात्मा गांधी ने उस परमशक्ति पर इसलिए बल दिया कि जनता पूरी तरह जागी नहीं थी और उन्होंने उसे नयी चेतना देने के लिए इसका उपयोग किया।

अगर देखा जाय तो धर्म का उपयोग गरीब और अनपढ़ जनता के शोषण के लिए ही किया गया है।

प्रेमचन्द अतिमानव बातों में कभी विश्वास नहीं करते थे। यह बात निम्न-लिखित प्रसंग से स्पष्ट हो जाती है—

चतुर्वेदीजी कई बार कई बहानों से प्रेमचन्द को कलकत्ते बुला रहे थे। प्रेमचन्द कोई न कोई कारण बताकर निमंत्रण को अस्वीकार कर देते और क्षमा माग लेते थे। एक बार चतुर्वेदीजी ने तुलसी जयंती पर प्रेमचन्द को निमंत्रित किया, उनको पूरा विश्वास था कि इस बार प्रेमचन्द अवश्य कलकत्ता पधारेंगे। परन्तु उनको बड़ी निराशा हुई। प्रेमचन्द से 15 अगस्त, 1935 के पत्र में लिखा—

"मैं वहाँ पहुँचा नहीं, इसके लिए आप मुझे बुरा-भला मत कहियेगा। आपने अगर तुलसी-जयन्ती की क़ैद मेरे ऊपर न लगायी होती तो मैं आ जाता, लेकिन तुलसी-जयन्ती का सभापतित्व एक ऐसा व्यक्ति करे जिसने कभी तुलसी का अध्ययन नहीं किया और जो उनके नाम के साथ जुड़ी हुई अतिमानव बातों में विश्वास नहीं करता, यह बात ही मुझे हास्यास्पद जान पड़ती है। उन्होंने राम का दर्शन किया और हनुमान का दर्शन किया, वह बंदरवाली घटना, सब ऊल-जलूल बातें हैं। लेकिन तुलसी-भक्त लोग क्या मेरी यह सब नास्तिकता भरी बातें पसंद करेंगे? ...... वह एक महान् कवि थे, उनकी व्याख्या करो, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, प्राणि शास्त्रीय, शरीर शास्त्रीय (कैसी भी) व्याख्या करो, पर उन्हें भगवान क्यों बनाते हो?

एक बार वेश्याएँ म्युनिसिपालिटी की आज्ञा से शहर से हटाकर बाहर की जा रही थीं तो प्रेमचन्द और उनकी पत्नी शिवरानी दोनों बेचैन हो उठे थे। उनके भाग्य पर उनको बड़ा दुख हुआ था। उन्होंने कहा था कि इस समस्या का सामना एक ऐसा महान व्यक्ति कर सकता है जिसका अभी तक जन्म नहीं हुआ। प्रेमचन्द ने व्यंग्य करते हुए यह भी कहा कि परमात्मा पर विश्वास करो, इन अभागी स्त्रियों को मुक्ति दिलानेवाला शीघ्र जन्म लेगा। वास्तव में प्रेमचन्द का विश्वास था कि सामाजिक नियम मनुष्य ने बनाये हैं और वह इनमें संशोधन भी कर सकता है। उसमें भगवान का हस्तक्षेप न तो अनिवार्य है और न ही आवश्यक। शायद अपने इसी बौद्धिक चिन्तन के कारण वह नास्तिक बन गये।

मानवता के इस पुजारी ने लगातार मनुष्य के भीतर सत्य और शिव की खोज की, वह अपने भीतर एक घायल हृदय छिपाते हुए थे, जो मनुष्य की पीड़ा को देखते ही बह निकलता था। उन्होंने उस पीड़ा को दूर करने के लिए जनता में उसके विरुद्ध सामाजिक चेतना जगाने की कोशिश की, अपने जीवन और कथा-साहित्य दोनों में वह ईश्वर की नहीं, मनुष्य की वकालत करते रहे।

हिन्दी प्रचार समाचार

आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका "रसज्ञ रंजन"

आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी गद्य के व्यवस्थापक की हैसियत से सदैव चिर स्मरणीय रहेंगे। उनसे पहले हिन्दी भाषा का स्वरूप व्यवस्थित नहीं था। भारतेन्दु युग में यद्यपि भारतेन्दुजी ने राजा शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" की अरबी, फ़ारसी शब्द युक्त भाषा तथा राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत तत्सम शब्द युक्त भाषा के स्थान पर एक मध्यवर्ती मिली जुली शैली को जन्म दिया था, परन्तु भाषा का स्वरूप व्यवस्थित नहीं था। द्विवेदीजी ने अकेले ही साहित्य के लिए वह कार्य किया जो बड़ी-बड़ी सस्थाएँ नहीं कर सकतीं। किसी भाषा और साहित्य की विभिन्न धाराओं का नेतृत्व करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब द्विवेदीजी में विद्यमान थे।

भाषा की इस शुद्धता पर क्यों द्विवेदीजो जोर देते थे, और क्यों लेखकों की अशुद्ध भाषा की निंदा करते थे, इसके दो प्रधान कारण थे, एक तो यह है, कि, वे खड़ो बोली को लोकप्रिय बनाना चाहते थे और उसे राष्ट्रभाषा के पथ पर सुशोभित कराना भी अपना परम लक्ष्य मानते थे। दूसरा उसे गंभीर विषयों की अभिव्यंजना के लिए परम शक्तिशाली बनाना चाहते थे। उनका यह स्वप्न आज अपने दोनों उद्देश्यों को प्राप्त कर चुकी है।

"रसज्ञ रंजन" आचार्य के नौ सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक लेखों का संग्रह है। इन लेखों का श्रेणी विभाजन करने की आवश्यकता इसलिए प्रतीत नहीं होती कि ये सब लेख अपना विशेष महत्व रखते हैं। और उनके मूल में एक ही भाव धारा दृष्टिगोचर होती हैं।

इन लेखों में प्रथम लेख "कवि कर्तव्य" नाम का है। इस लेख में लेखक ने कवियों के कर्तव्य पर पूर्ण प्रकाश डाला है। कवि को किस प्रकार की भाषा लिखनी चाहिए। छंदो का कविता में क्या महत्व है; कविता का विषय किस प्रकार का होना चाहिए, कविता में अर्थ-स्पष्टीकरण की क्यों आवश्यकता है—आदि प्रश्नों की व्याख्या इस लेख में इतनी उत्तमता और सुगमता से की गयी है कि उसे पढ़कर पाठक का हृदय आनन्द के सागर में निमग्न हो जाता है। छंद का विवेचन करते हुए लिखा गया है कि, हिन्दी कविता में पादान्त में अनुप्रासहीन छंद लिखे

जाने की आवश्यकता है। यह पुरानी बात है। किन्तु उनके इस कथन का परिणाम प्रियप्रवास की रचना है। अब भी "अनूप" जी का "सिद्धार्थ" अनुप्रासहीन संस्कृतवर्ण वृत्तों में लिखा गया है।

छंदों की भाँति भाषा को भी वे सरल और बोधगम्य तथा व्याकरण के नियमों से युक्त रखने के बड़े पक्षपाती थे। यह बात हमें इस लेख में पूर्ण रूप से दिखाई देती है। कविता का विषय भी वे समाज और राष्ट्र की परिस्थिति के अनुकूल रखने के पक्ष में थे। उन्होंने स्वयं कहा है—कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशात्मक होना चाहिए। क्योंकि न तो, केवल मनोरंजन ही कविता है और न उपदेश ही। कविता तो आत्मिक और लौकोत्तरानंद को देनेवाली है। अतएव जब तक उसमें हृदय को गुदगुदाने और एक सत्य को भेंट करने का सामर्थ्य नहीं होगा, तब तक वह कविता, कविता नहीं कहला सकती।

कवि की रचना परिस्थितियों की देन होती है। वह जब जब अपने जीवन व्यापी वातावरण से प्रभावित होता है, तब तक विवश होकर अपने हृदयगत उद्गारों को व्यक्त करने के लिए प्रस्तुत होता है।

द्विवेदीजी का दूसरा लेख "कवि बनने के लिये सापेक्ष साधन" भी इसी कथन की पुष्टि करता है। जब द्विवेदीजी ने देखा कि, हिन्दी में कवि बनने की प्रथा बहुत चल पड़ी है, और, कुछ न जाननेवाले भी कवि बनते जा रहे हैं, तो उन्होंने यह लेख लिखा और बताया कि कवि बनने के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है। यद्यपि द्विवेदीजी ने स्वयं लिखा है, कि प्रतिभा जो ईश्वर की देन है—कवि के लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है, तथापि उन्होंने इस लेख में और भी कई साधन जिनसे कवि बना जा सकता है, लिखे हैं। आज हम इस लेख की बातों पर विश्वास न करें, किन्तु जब यह लेख लिखा गया, उस समय इस लेख ने क्या काम किया होगा, यह अब भी अनुमान किया जा सकता है। द्विवेदी ने कहा है, कि, "कविता करना अन्य लोग जैसा भी समझें, हमें तो दुस्साध्य जान पड़ता है। अज्ञता और अविवेक के कारण कुछ दिन हमने भी तुक बन्दी का अभ्यास किया था, पर कुछ समझ आते ही हमने अपने को इस काम का अनधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से प्रायः जाना ही बंद कर दिया।"

द्विवेदीजी का तीसरा लेख है "कवि और कविता"। यह लेख ऊपर के दोनों लेखों की अपेक्षा अधिक गंभीर है, यद्यपि इसमें भी कवि और कविता के ऊपर विश्लेषण किया गया है। यह विश्लेषण कुछ भारी और प्रभावोत्पादक है। इस लेख में द्विवेदीजी की प्रतिभा और अध्ययन दोनों का अद्भुत सम्मिश्रण है। कवि को युग-निर्माता और राष्ट्र संचालक के रूप में स्वीकार करते हुए लेखक ने

बताया है कि कवि को समाज और राष्ट्र की वर्तमान दशा को जैसा वह देखता है, छोड़कर उसके अतिरिक्त और किसी विषय पर कविता नहीं लिखनी चाहिए। इस विषय में उन्होंने उर्दू-संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के बारे में भी कहीं-कहीं विचार प्रकट किये हैं, और बताया है कि कवि को प्रकृति का पूर्ण ज्ञान तथा भाषा और शब्द कोष पर सम्यक अधिकार रखने की आवश्यकता है। अच्छी कविता की सबसे बड़ी पहचान, आचार्य ही की बातो में...कविता सुनकर लोग यह कहें कि सच कहा है। अच्छे कवि वे ही कहे जा सकते हैं, जिनकी कविता में सादगी, असलियत, और जोश हो, तथा जिनकी कविता के लिए सच कहा है' की उक्ति निकले।"

आचार्य का चौथा लेख कविता है। यह लेख केवल कविता की प्रशंसा के लिए लिखा गया है। इसमें उन्होंने बताया है कि कवि को सहृदय होने की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि वह सहृदय नहीं होगा, तो वह जिस विषय का वर्णन करना चाहता है, वह विषय उसके द्वारा ठीक ढंग से वर्णित न हो सकेगा। कविता में सरसता तभी आती है, जब कवि के हृदय में रस हो। अर्थ सौंदर्य भी कविता का प्राण है। द्विवेदीजी अस्पष्टता के बड़े भारी विरोधी थे। उन्होंने कहा है कि आजकल के कवि बाह्याडंबर की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं, कविता की आत्मा की ओर कम। अतः कवित में प्रभावोत्पादकता की अपेक्षा अस्पष्टता अधिक है।

"नायिका भेद" आचार्य जी का पांचवाँ लेख है। यह रीतिकाल की कविता से संबंधित लेख है। उस कविता से जिसमें नायिका भेद का बाहुल्य है—वे सख्त नाराज़ है। वे कहते हैं कि यह हिन्दी की कविता के लिए कलंक की बात है। जब अन्य साहित्यों में इस प्रकार की कविता है ही नहीं या है तो बहुत कम, तो हमारे यहाँ इसके अधिक होने की क्या आवश्यकता है? नायिका भेद नामक यह लेख व्यंग्यात्मक है। इसमें बड़ी मीठी चुटकी ली गयी है। कहीं-कहीं इस लेख में वे बहुत गंभीर भी हो गये हैं। और इस प्रकार की पुस्तकों के लिए यहाँ तक कह बैठे हैं कि हमारी स्वल्प बुद्धि में इस प्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बंद हो जाना चाहिए। और यही नहीं किन्तु आज तक जितनी पुस्तकें बनी हैं उनका वितरण भी सर्वथा के लिए बंद हो जाना चाहिए। वे किसी भी बात को कितने सुन्दर ढंग से कहते हैं इस बात का प्रमाण यह लेख ही बताता है।

आचार्यजी का छठा लेख है 'हंस का नीर क्षीर विवेक'। इसमें तर्क युक्त लेखन शैली का जीता-जागता उदाहरण मिलता है। इस लेख में विभिन्न प्रकार, की उक्तियों को "हंस के नीर क्षीर-विवेक" के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से

विचार किया गया है। इसमें द्विवेदी जी ने खोज और अध्ययन की मिश्रित चटनी द्वारा इस उक्ति की वास्तविकता को सिद्ध करने की चेष्ता की है।

आचार्य जी का सातवाँ लेख है हंस संदेश और आठवाँ है "नल का दुस्तर दूत कार्य।" इन दोनों लेखों में आचार्यजी की भावुकता और काव्यमयी शैली देखने को मिलती है। भाषा और भावों के साथ कवि का पूर्ण तादात्म्य है। आचार्य ने भावुकता का सहारा लेकर कम ही लिखा हैं, किन्तु यह दोनों लेख उनकी इस प्रकार की शैली के बड़े हृदयग्राही नमूने बन पड़े हैं। उदाहरण के लिये एक स्थल जहाँ इन्द्र की सभा में, कामेश्वर शास्त्री ने दमयन्ती के रूप का वर्णन किया है, और उस वर्णन को सुनकर अप्सराओं की जो दशा हुई वह काफ़ी होगा!

दमयंती का नखशिख वर्णन सुनकर उनकी अजीब दशा हुई। वे एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं। तिलोत्तमा का चेहरा काले तिल के समान काला पड़ गया। मदालसा के सौंदर्य का मद उतर गया। सुलोचना ने अपने लोचन बंद कर लिये। सुमध्यमा अपनी सखियों के मध्य में छिप गयी। मेनका का मन मलिन हो गया। कलावती अपनी कलाओं को भूल गयी। सुविभ्रमा तो विभ्रम में पड़ गयी। शशिप्रभा निष्प्रभ हो गयी। और चित्रलेखा चित्र के समान मौन रह गयी।

आचार्यजी का अंतिम लेख है श्री मैथिलीशरण गुप्तजी के 'साकेत' में ऊर्मिला की उदासीनता, जिससे प्रेरित होकर गुप्तजी साकेत लिखने के लिए उद्यत हुए। यह लेख अपने ढंग का है। इसमें जो माँग की गयी है, वह कितनी नम्रता और करुणा से युक्त है, इसे बिना पढ़े नहीं जाना जा सकता।

'रसज्ञ रंजन' के लेखों का महत्व इसलिए अधिक है कि इसमें द्विवेदीजी के लगभग सभी प्रकार की शैलियों को हम देख सकते हैं। जो जिस शैली को पसंद करें उसे वैसी ही शैली मिल सकती है। अतः इसका नाम—'रसज्ञ रंजन' सार्थक ही रहा है।

—कपिलदेव 'शाण्डिल्य', नेल्लूर - 2

हिन्दी महाविद्यालय, विजयवाडा

ता. 22-8-80 को शाम के तीन बजे माचवरम के प्रचारक विद्यालय में हिन्दी महाविद्यालय का सत्रांत समारोह दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आन्ध्र के सचिव श्री चि. सुब्रह्मण्यम जी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। प्रचारक विद्यालय के प्राचार्य श्री मि. सुब्बाराव जी प्रधान अतिथि रहे। सर्वश्री नंडूरी शोभनाद्राचार्य पि. प्रसादराव, तथा त. सुब्रह्मण्य शास्त्री आदि भाषणकर्ता रहे। प्रार्थना गीत के बाद सभा को शुरू करते हुए मुख्य अतिथि ने भाषण दिया।

श्री चि. सुब्रह्मण्यम जी ने अपने अध्यक्ष-भाषण में सभा की गति विधियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि अब की बार परीक्षाओं में बैठनेवाले विद्यार्थियों की संख्या 80 हजार है तो आन्ध्र प्रदेश में ही 45 हजार तक है। इसका मतलब है आधे से अधिक संख्या में परीक्षार्थी आन्ध्र प्रान्त के हीं हैं। इससे स्पष्ट है हिन्दी भाषा के प्रचार में आन्ध्र अग्रगामी है।

अध्यक्ष के भाषण के बाद प्राचार्य काज वकटेश्वरराव ने धन्यवाद समर्पण किया। राष्ट्र गान के बाद सभा समाप्त हुई।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय, विजयवाडा

ता. 21-9-1980 रविवार शाम को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक विद्यालय, विजयवाडा का उद्घाटन-उत्सव बड़े शांत वातावरण में संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के प्रधान सचिव श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति रहे। सभा में हिन्दी प्रचारक विद्यालय के प्रधानाचार्य सर्वश्री मि. सुब्बाराव, सहायक अध्यापक, तं. सुब्रह्मण्य शास्त्री, महाविद्यालय के अध्यापक काज वेंकटेश्वरराव और शाखा कार्यालय के व्यवस्थापक पी. प्रसाद रावजी आदि उपस्थित रहे।

श्री शास्त्री जी ने मुख्य अथिति का स्वागत करते हुए उनके व्यक्तित्व के बारे में भाव-भीने स्वर में कहा कि श्री राधाकृष्णमूर्ति आदर्श प्रचारक, सफल अध्यापक, कर्मठ संगठक और दक्ष सचिव हैं। वे कुर्सी के पीछे कभी नहीं पड़े। तात्पर्य यह है कि श्री मूर्ति जी अपनी सेवा के बल पर ही इतने सर्वोच्च पद पर आज विराजमान हैं। वे मेरे जैसे सैकड़ों के गुरु हैं। अतः मैं भी गुरु की वंदना करते हुए औपचारिक रूप से सबका स्वागत कर रहा हूँ।

बाद में वेंकटेश्वरराव जी ने ईश्वर भाई पटेल कमिटी की रिपोर्ट को लेकर प्रधान सचिव से अनुरोध किया कि इस हानिकारक रिपोर्ट का विरोध करने के अभिदान में आप आगुआ वनकर हमें मार्ग दिखायें।

तदुपरांत श्री पी. प्रसाद राव ने भी भाषण दिया। मुख्य अतिथि राधाकृष्ण-मूर्ति ने कहा कि मैं आपके विद्यालय को देखने आया हूँ। आपके प्रार्थना गीत से बहुत कुछ प्रभावित हूँ। आप लोगों ने मेरे प्रति जो श्रद्धा प्रकट की हैं, उस के लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

फिर ईश्वर भाई पटेल कमिटी के परिवर्तित रूप को लेकर कहा कि कक्षा छः और सात में हिन्दी और अंग्रेज़ी भाषाओं को अनिवार्य रूप से पढाने का आयोजन हुआ। फिर मातृभाषा, अंग्रेज़ी और हिन्दी को पढाने के घंटे एक समान नहीं हैं। इसलिए आंदोलन खडा करता है। तमिलनाडु प्रांत में भी जनता जागी हैं। भविष्य में इस आंदोलन को विराट रूप देने की आवश्यकता है।

अंत में कहा कि शील ही सब कुछ है। इसलिए चरित्र को पवित्र रखना ज़रूरी है। सब छात्र-छात्राएँ अच्छी तरह पढकर योग्य बनें और परीक्षा में सफल हो जाएँ।

प्रिन्सिपाल श्री सुब्बाराव ने अनंतर अपनी तरफ़ से और विद्यालय की तरफ़ से धन्यवाद समर्पित किया। श्रीमति शारदा और श्री के. आंजनेयुलु ने छात्रों की तरफ़ से धन्यवाद समर्पित किया।

राष्ट्र गान के साथ सभा समाप्त हुई।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली

ता. 21-9-80 को हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली के 1980-81 का औपचारिक उद्घाटन श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति, प्रधान सचिव, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने किया। हिन्दी प्रेमी मंडली के अध्यक्ष श्री वेलुवोलु सीता रामय्याजी ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। हिन्दी प्रचारक विद्यालय के स्थापक, व्यवस्थापक श्री बोयपाटि नागेश्वररावजी ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया और 12 जिलों से प्रचारक प्रशिक्षण पाने के लिए आये हुए 41 महिलाओं और 14 पुरुषों का परिचय कराया।

श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति ने अपने उद्घाटन भाषण में यों कहा—जैसे केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों से हिन्दी के लिए लाखों रुपये खर्च हो रहे हैं वैसे ही अहिन्दी प्रांतों में भी हिन्दी प्रचारार्थ आर्थिक सहयोग की बड़ी आवश्यकता है। दक्षिण में मुख्यतया तमिलनाडु के लोग हिन्दी का अध्ययन बड़े प्रेम से कर रहे हैं।

इसलिए वहाँ के हिन्दी प्रचारक साधुवाद के पात्र हैं। पूज्य गांधीजी के पथ पर सच्चरित्रता और ईमानदारी से अग्रसर होकर प्रशिक्षणार्थी अपनी मातृसंस्था का गौरव बढ़ावें।

अध्यक्ष ने अपने भाषण में कहा—यहाँ प्रशिक्षण पाने के लिए आये हुए भाई और बहनों को भाईचारे की भावना के साथ सच्चरित्र और अनुशासनबद्ध होकर यहाँ की तीन दशकों की पुरानी परंपरा को कायम रखना चाहिए।

प्रचारक विद्यालय की प्रधानाध्यापिका कुमारी के. सीता, M.A., M.ED., ने धन्यवाद समर्पित किया।

हिन्दी प्रेमी मण्डली, मछलीपट्टणम

प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव तथा प्रेमचंद शत जयंती ता. 21-9-80 शाम को पांच बजे हिन्दी प्रेमी मण्डली की तरफ़ से स्थानिक रुस्तुंवादा हाई स्कूल में संपन्न हुआ। श्री यलमंचिलि वेंकटेश्वरराव ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। वंदेमातरम के साथ कार्यक्रम शुरू हुआ। श्री टी. एल. कांताराव ने सबका स्वागत किया और सभा के आशय का संक्षिप्त परिचय दिया। श्री सी. एच. शेषगिरिराव ने श्री यलमंचिलि वेंकटेश्वररावजी की विद्वत्ता, हिन्दी सेवा और उनके आदर्श जीवन पर भाषण दिया और सभा को उनकी महत्ता का परिचय दिया। प्रेमी मण्डली के मंत्री श्री के. न. नांचारराव ने वार्षिक विवरण पढ़ सुनाया। स्थानिक हिन्दू कालेज के अंग्रेज़ी लेक्चेरर श्री वि. वि. टोपे ने वर्तमान शिक्षा पद्धति तथा विद्यार्थियों की अनासक्ति तथा सुस्ती पर भाषण दिया। उन्होंने प्रेमचंद के जीवन तथा आदर्शों पर भी सुन्दर भाषण दिया। उक्त कालेज के हिन्दी लेक्चेरर श्री चलसानि सुब्बाराव ने प्रेमचंद की जीवनी और साहित्य साधना पर प्रभावोत्पादक भाषण दिया। उन्होंने बताया कि प्रेमचंद का साहित्य विश्वसाहित्य है। उनकी रचनाएँ कई भाषाओं में अनूदित होकर सबको अपने दिव्य और भव्य संदेशों से प्रभावित करती हैं।

श्री बसवेश्वरराव ने (स्थानिक हाईस्कूल के हिन्दी अध्यापक) एक विनोदपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

नगरपालिका के भूतपूर्व सदस्य श्री अनुमुकोंड नांचारय्या ने विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र वितरित किये।

स्थानिक हिन्दू हाईस्कूल के हिन्दी अध्यापक श्री डि. वि. नरसय्या ने उक्त सभा तथा कार्यक्रम को सफल बनाने में योग देने के कारण सब कार्यकर्ताओं और उपस्थित जनों को धन्यवाद समर्पित किया।

अध्यक्ष श्री यलमंचिलि वेंकटेश्वरराव ने बताया कि विद्यार्थियों को राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रभक्ति से भाषा का अध्ययन करना चाहिए। सिर्फ़ नौकरी पाने के लिए अनैतिक पद्धति का अनुसरण करके प्रमाण-पत्र पानेवाले विद्यार्थी देश के लिए कुछ नहीं कर सकते। श्री वेंकटेश्वररावजी ने प्रेमचंद की साहित्य साधना पर भी भाषण दिया। 'जन गण मन' के साथ सभा समाप्त हुई।

प्रमाणपत्र वितरणोत्सव—हिन्दी सेवासदन, गुंतकल

दि. 7-9-'80 रविवार को हिन्दी सेवासदन, गुंतकल में विशारद विद्यालय के करस्पान्डेण्ट श्री टी. एम. मद्दिलेटय्या की अध्यक्षता में प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव मनाया गया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र के अध्यक्ष श्री एम. वी. पापन्न गुप्तजी ने मुख्य अतिथि के रूप में उक्त समारोह में भाग लिया था।

उस दिन सबेरे श्री एम. वी. पापन्न गुप्तजी की अध्यक्षता में प्रचारकों की गोष्ठी हुई। उक्त गोष्ठी में हिन्दी प्रचार क्षेत्र में होनेवाली बाधाओं, कठिनाइयों तथा समस्याओं पर चर्चा हुई।

शाम को पाँच बजे से प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव का कार्यक्रम हिन्दी सेवा सदन भवन के अहाते में प्रारंभ हुआ। विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री के. गंगिरेड्डी ने स्वागत भाषण दिया, विद्यालय के करस्पांडेन्ट श्री टी. एम. मद्दिलेटय्या ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। मुख्य अतिथि श्री एम. वी. पापन्न गुप्तजी ने अपने भाषण में कहा कि हिन्दी प्रचार में राजनैतिक कलुषित वातावरण का प्रवेश नहीं होना चाहिए। हिन्दी प्रचार का कार्य राष्ट्र का पवित्र सेवा-कार्य है। हिन्दी प्रचारकों को राजनैतिक दलदल से दूर रहकर, निस्वार्थ भाव से काम करना चाहिए।

उक्त समारोह में मान्यवर श्री बी. रामचन्द्र राव, प्रधानाध्यापक, रेल्वे मिक्सेड हाईस्कूल, गुंतकल, ने अपने भाषण में कहा कि राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए तथा विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक राजभाषा की आवश्यकता है। वह राजभाषा हिन्दी है। अतः हिन्दी सीखनी चाहिए। मान्यवर श्री आर. राममूर्तिजी, प्रधान अध्यापक, एस. जे. पी. हाईस्कूल के भाषण के बाद श्री एम. वी. पापन्न गुप्तजी ने 1980 फ़रवरी के दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियो को प्रमाण-पत्र प्रदान किये। श्री डी. पक्कीरप्पा ने वंदन समर्पण किया।

राष्ट्र-गान के बाद कार्यक्रम समाप्त हुआ।

ईतमुक गांव में 15-8-80 को सं परीक्षा केन्द्र रजतोत्सव समारोह-चित्र में जी. तिरु वस्
विभाग, द. भा. हि. सभा, हैदराबाद, को श्री ची कोटी रेड्डी ओढाते दर्शित हैं

मुंशी प्रेमचन्द जी की जन्म-शताब्दी और प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव, सिकंदराबाद

दिनांक 14-9-80 को राष्ट्रभाषा विकास समिति की ओर से वैदिक विद्यालय, सीताफलमंडी, सिकन्द्राबाद के सायंकालीन हिन्दी केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द जी की जन्म शताब्दी मनायी गयी है। डॉ. साइलूजी ने अध्यक्षता ग्रहण की। श्री वी. श्रीधर, के. आदिनारायण मूर्ति, पी. चिन्नप्पा, रामदेवसिंह, आर. कृष्णमूर्ति, एस. जोजिरेड्डी ने इस अवसर पर भाषण दिये। सब ने एकमत होकर कहा कि " प्रेमचन्द जी अपने युग के एक महान साहित्यकार थे जिन्होंने अपने समय की हर समस्या का चित्रण अपनी कहानियों और उपन्यासों में किया। ऐसी कोई समस्या नहीं रही जिसे उन्होंने छोड़ा है।

वक्ताओं ने हिन्दी दिवस के महत्त्व पर भी काफी प्रकाश डाला और विद्यार्थी-गण को उपदेश दिया कि वे राष्ट्र-भाषा हिन्दी तन-मन से सीखे। डॉ. साइलूजी ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाण-पत्र वितरित किये। कुमारी सुजाता ने मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं के आधार पर कविता-गान किया। समिति के सचिव श्री एम. रघुपति ने सब को धन्यवाद समर्पित किया। राष्ट्र-गान के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

प्रांतीय समाचार (केरल)

गांधी जयन्ती समारोह तथा हिन्दी प्रचार उत्सव का उद्घाटन, तिरुवनंतपुरम

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरल शाखा के तिरुवनंतपुरम केन्द्र में ता. 2-10-80 को सभा के अध्यक्ष श्री डी. दामोधरन पोट्टीजी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। हिन्दी भाषा पढ़ने की आवश्यकता तथा हिन्दी प्रचार और पूज्य महात्मा गांधी के आदर्शों पर उन्होंने सुन्दर भाषण दिया। साथ ही हिन्दी प्रचार विकास निधि कूप्पन (101 रुपये) स्वंय लेकर उस निधि का उद्घाटन कार्य किया। दक्षिण मेखला संगठक श्री एम. कृष्णन नायरजी ने स्वागत भाषण दिया। श्री एन. करुणाकरन, कुन्नुकुषि, एन. करुणाकरन नायर (का. का. समिति सदस्य) आदि प्रचारकों ने हिन्दी प्रचार के बारे में भाषण दिये। हिन्दी महाविद्यालय

बैठती गई और 1937 में, 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। मैं फूले अंग न समाई।

मेरे मन में हिन्दी के प्रति दिन-व-दिन प्रेम बढ़ता गया। मुझे हिन्दी पढ़ाने का भी शोक हुआ। पहले ही मैंने बताया है कि मैं एक गृहणी हूँ। घर छोडकर बाहर न जा सकती थी। अतः मैंने अपने घर में ही हिन्दी प्रचार का कार्य प्रारंभ किया। सन् 1938 से हिन्दी सिखाने लगी। मेरे पास हिन्दी सीखने बच्चे और माताएँ भी आने लगीं। में उन्हें दिल लगाकर अक्षर लिखाती और पढ़ाती थी—धीरे-धीरे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगीं। सुबह हुई घर गृहस्थी के कार्य पूरा कर, विद्यार्थियों के बीच में बैठती थी, उस समय मुझे जो आत्म-तृप्ती मिलती थी वह वर्णनातीत है।

सच मानिए तो सही मैं तीन विद्यार्थियों को पहले पहल हिन्दी के अक्षर सिखाने लगी। धीरे-धीरे उनकी व्याप्ति यहाँ तक बढ़ गई—सौ-डेढ़ सौ तक विद्यार्थी हिन्दी सीखने आया करते थे। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के अंतर्गत मैंने विशारद और प्रवीण-विद्यालय चलाया। उसके मैं प्रधान अध्यापिका बनी थी। "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" की शिक्षा परिषद की सदस्या बनकर तीन साल मैंने योग्य कार्य किया। न जाने कितने परित्यक्ता और बाल-विधवाओं को मैंने हिन्दी पढ़ायी और उन्हें नौकरी दिलवायी। आज भी वे मेरे घर कभी-कभी आती रहती हैं। इसके अलावा गरीब विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया। हिन्दी प्रचार कार्य के साथ गरीब परिवारों की सेवा करने का भी अच्छा मौका मिला।

मेरा अहोभाग्य है कि हिन्दी प्रचार कार्य के साथ मुझे कई हिन्दी के महान लेखक और कवियों का परिचय भी प्राप्त हुआ। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के 'रजत जयंती' के अवसर पर महात्मा गाँधीजी के साथ एक सप्ताह तक रहने का सुअवसर मुझे मिला। उनसे मिलकर उनके साथ हिन्दी में बात चीत की। यह मेरा अहोभाग्य था।

'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' ने 'स्वर्ण जयंती' के अवसर पर मेरा सम्मान, शाल और उपाधि पत्र देकर किया। यह सम्मान मेरी सेवा के उपलक्ष्य में था।

जब श्री हजारी प्रसाद द्विवदी जी हिन्दी आयोग के एक सदस्य के रूप में 1966 में बेंगलूर पधारे थे, उस समय हमारे विद्यार्थियों से मिलने हमारे घर पधारे थे। उन्होंने मेरे प्रचार कार्य देखकर यों लिखा है…

श्रीमती रुक्मिणी देवी जी के दर्शन से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई और प्रेरणा मिली। इनका यह घर 'एक सरस्वती देवी का मंदिर' बन गया है। मैं श्रद्धा सहित इस मंदिर को प्रणति निवेदन करता हूँ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी
दि. 15-9-1966

4-11-'52 में कर्नाटक की सार्वजनिक सेविका उमाबाई कुंदापुर हमारे विद्यार्थियों से मिलने और मेरे हिन्दी प्रचार कार्य देखने, हमारे घर पधारी थीं तब उन्होंने लिखा है—

श्री रुक्मिणीदेवी का हिन्दी क्लास देखा। गृहणी जीवन में रहते हुए भी आपने बरसों से हिन्दी पढ़ाने का कार्य अखंड रखा है। यह सचमुच हिन्दी भाषा के ऊपर इनका कितना प्रेम हैं—यह स्पष्ट होता है। किसी न किसी तरह क्यों नजीने हो अपने देश की सेवा करना हर एक व्यक्ति का कर्तव्य है। आशा है कि इनकी विद्यार्थियों भी अपनी योग्यता बढ़ाती रहेंगी और अपनी विद्या औरों को देंगी।

उमाबाई कुंदापुर
4-11-'52

कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा के भूतपूर्व प्रान्तीय मंत्री श्री नावडा ने लिखा है—

श्रीमती रुक्मिणी देवीजी के हिन्दी वर्ग देखे। आप व्यक्तिगत रूप से विद्या-दान निष्काम भाव से जो कर रही है वह सराहनीय है। गृहणी अपने गृह कार्य को संभालते हुए जो हिन्दी कार्य कर सकती है, उसका एक राष्ट्रीय आदर्श आप रख रही है। मैं इस वर्ग की उत्तरोत्तर तरक्की चाहता हूँ।

रा. नावडा,
मंत्री, कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा,
धारवाड़

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के परीक्षा मंत्री श्री महालिंगम जब हमारे हिन्दी वर्ग देखने आये थे उस समय उन्होंने यह लिखा है—

श्रीमती रुक्मिणी देवी का हिन्दी प्रेम और कार्य सराहनीय है।

महालिंगम
5-10-'52

श्रीमती कांचनलता सब्रवाल भी एक बार हमारे हिन्दी वर्ग में पधारी थीं। उन्होंने भी मेरे हिन्दी प्रेम और काय की प्रशंसा की है।

सन् 1975, जनवरी में नागपुर में संपन्न 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' में सम्मिलत होने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ।

16-10-'76 की संपन्न 'कर्नाटक में हिन्दी प्रचार' की स्वर्ण-जयंती के अवसर पर उपराष्ट्रपति महामहिम श्री बी. डी. जत्ती के करकमलों से ताम्र-पत्र प्राप्त करने का एक सुयोग मुझे मिला। मेरे द्वारा अनूदित और श्री त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल जी के काव्य 'इन्दु एक बिन्दु दो' का कन्नड अनुवाद के काव्य संकलन का डॉ. गोपालशर्मा ने स्वर्ण-जयंती के अवसर पर किया। यह भी मेरा अहोभाग्य है।

इस प्रकार मेरा हिन्दी सिखाने का कार्यक्षेत्र दिन दुनी रात चौगुना बढ़ता चला आ रहा है। हिन्दी प्रचार का कार्य और मेरे जीवन में मशाल की तरह भविष्य का रास्ता मुझे दिखा रहा है। वह सेवा मेरे रग-रग में भीगी हुई है। ओह, मेरे लिए वह कैसी शुभ घड़ी थी। बहत्तर आयु में भी मेरे मन में जवानी की उमंग उमड़ रही है। मैंने कई हिन्दी और कन्नड की कहानियाँ और उपन्यासों का अनुवाद क्रमशः कन्नड़ और हिन्दी में किया है। कई हिन्दी की कविताओं का भी कन्नड में अनुवाद किया है। मैं अन्य गृहणियों से भी आशा करती हूँ कि अपनी घर गृहस्थी चलाते-चलाते वे भी हिन्दी सीखें और सिखायें।

जय हिन्द! जय हिन्दी!
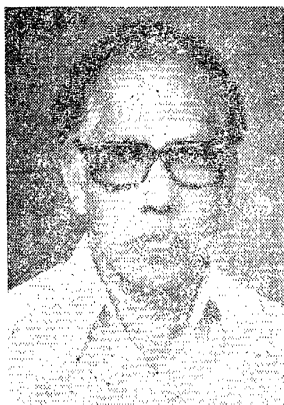
डा. पी. के. कुंजिरामन

कार्यकारिणी समिति के नये अध्यक्ष चुने गये। इस उपलक्ष्य में हिन्दी प्रचार समाचार शुभकामना प्रकट करता है।

हिन्दी भारत की भाषा है

श्रीमती रेवती, मद्रास

1. भाषा हो या हो राजनीति अब और गुलामी सह्य नहीं,
बलिदानों का अपमान सहन करना कोई औदार्य नहीं ।
रवि-रश्मि अपहरण करने को मत बढ़ें किसी के क्रूर हाथ
इन मुसकाते जल-जातों को यह सूर्य ग्रहण स्वीकार्य नहीं ।

2. हिन्दी औरों की बोली है तो अंग्रेजी कब अपनी है ?
अपनी इतनी भाषाओं से भी अंग्रेजी क्या वजनी है ?
उत्तर-दक्षिण के भेद भाव मत बनै ऐक्य-पथ में बाधक,
रामेश्वर, सोमनाथ, अपने, हिन्दी ऐसे ही अपनी है ।

3. अपनो स्वतंत्र भारत भू में हम भाषा में परतंत्र रहें ।
हिन्दी, तमिल, बंगला आदि के रहते भी न स्वतंत्र रहें !
तो किस मूंह से फिर बात करें एकता और आजादी की,
अंग्रेज गए अब अंग्रेजी के कब तक बने गुलाम रहें ।

4. इसलिए कर्णधारो, हम को अब और न पीछे को खींचो,
अपनी केसर की क्यारी को अब और न पावक से सींचो ।
बढ़ना है हमें प्रगति-पथ पर भारत को भारत बनने दो,
जीवन-यथार्थ परिवेश देख अब और नहीं आंखें मींचो ।

5. हिन्दी भारत की भाषा है, अपने कंठों की निज भाषा
हिन्दी भाषा ही नहीं, कोटि जन-गण मन की है परिभाषा ।
अंग्रेजी से कह दो छोडे गद्दी, समझे युग की है परिभाषा ।
सम्मानित हो निष्कपट भाव से, हिन्दी सब की है अभिलाषा ।

पंचवटी में विनोद साहित्य

पंचवटी की कथा अति प्राचीन है। मगर गुप्तजी ने अपनी सुकोमल कल्पना द्वारा उसे नया और मधुर रूप दिया है। ये रूप मानव की विविध वृत्तियों का सुन्दर चित्रण कह सकते हैं। वाल्मीकि और तुलसीदास आदि ने राम, लक्ष्मण और सीता को देव-देवियों के रूपों में देखा। परन्तु गुप्तजी ने हमारे समक्ष मानव के रूप में रखा। मानव हृदयों में जो कोमलता व सुन्दरता होती हैं उसके दर्शन पंचवटी के पात्रों द्वारा हमें कराते हैं। परम पूज्य बापूजी की प्रेरणा से तथा राष्ट्रीय जागृति को दृष्टि में रखकर ही गुप्तजी ने मानव-जीवन के लिए उपयोगी व आधुनिक विचारों को पंचवटी में स्थान दिया है।

गुप्तजी की पंचवटी के पात्र मानवसुलभ भावनाओं के कारण हमारे निकट के व्यक्ति बन गये हैं। राम-सीता में विनोद वृत्ति की झलक दिखाकर उनमें मानव स्वभाव की गहरी छाप प्रदर्शित की है। रात के समय जब लक्ष्मणजी पर्णकुटी के सामने शिला पर बैठकर कुटी की रक्षा कर रहे हैं, तब शूर्पणखा घूमती-घामती वहाँ प्रत्यक्ष होती है। सामने लक्ष्मण को देखकर उनपर आसक्त हो जाती है। फिर वह उनके सामने शादी का प्रस्ताव पेश करती है। उन दोनों में बहुत देर तक बातचीत चलती रहती है, इतने में पौ फटने लगती है। सीताजी बाहर आकर लक्ष्मण के सामने एक अनुपम सुन्दरी को देखती है, और वे लक्ष्मण की दिल्लगी उड़ाते हुए कहती है कि—

> "देवर तुम कैसे निर्दय हो, घर आये जन का अपमान
> किसके पर नर तुम, उसके जो चाहे तुमको प्राण समान?"

फिर सीता-लक्ष्मण से कहती है कि अगर कोई भिखारी आता है तो लाचार होकर उसे निराशा से भेजना पड़ता है, परन्तु यह सुन्दरी तो तुम्हें अपना सब कुछ अर्पण करने आयी है। देने में तो तुम कंजूस हो सकते हो, परन्तु लेने में तुम्हें क्या बाधा है यह बात समझ में नहीं आती है।

> "देने में कार्पण्य तुम्हें हो, तो लेने में है क्या सोच?"

जब लक्ष्मण उनके चरणों में प्रणाम करते हैं तो सीताजी आशीर्वाद देती है कि "हों सब सफ़ल तुम्हारे काम" फिर वे लक्ष्मण से पूछती है:—

> "कब से चलता है बोलो, यह नूतन शुक-रंभा संवाद"

और शूर्पणखा को आश्वासन देते हुए कहती हैं कि—

> "अजी, खिन्न तुम न हो, हमारे ये देवर हैं ऐसे ही"

चाहती है। इतना ही नहीं वे अपनी देवरानी से कुछ काम भी करवाना चाहती हैं। परन्तु पहले से ही वे एक बात कह देती हैं कि—

"हाँ पालित पशु पक्षी मेरे, तंग करे यदि तुम्हें कभी,
उन्हें क्षमा करना होगा तो, कह रखती हूँ इसे अभी"

फिर सीताजी रामचन्द्रजी को बुलाती हैं। शूर्पणखा को देखकर रामचन्द्रजी में विनोद वृत्ति उत्पन्न होती है। सीताजी उनसे कहती हैं कि—

"देख तुम्हारे प्राणानुजका तप सुरेन्द्र भी डोल गया"

वे आगे राम से कहती हैं कि तुम्हारे भाई के आगे इन्द्रासन की भी कुछ गिनती नहीं। जब अप्सरा पास आई है, तो वे उनकी नम्र विनती भी सुनते नहीं। तुम सबका स्वभाव ही ऐसा निश्चल और निराला है। नहीं तो आयी हुई लक्ष्मी को कोई ठोकर मारे? वह बेचारी वरमाला लेकर आयी है परन्तु लक्ष्मण उनकी बात मानते नहीं।—"कुम्हला रही देख लो कर में, स्वयंवर की वरमाला,

किन्तु कंठ देवर ने अपना, मानो कुंठित कर डाला।"

फिर रामचन्द्रजी को देखकर शूर्पणखा उनपर आसक्त होती है और उन्हें अपनी वरमाला पहनाने को तैयार होती है। तब सीताजी मुस्कुराकर कहने लगती हैं कि—"प्रथम देवरानी फिर सौत"

परन्तु वे केवल इतना ही चाहती है कि शूर्पणखा उनकी मौत माँग न लें। वे तो केवल अपने पति के दर्शन करना ही चाहती है। रामचन्द्रजी उसकी बात टाल देते हैं। परन्तु वे कहते हैं कि—

"किन्तु विवाहित होकर भी यह मेरा अनुज अकेला हैं,
मेरे लिए सभी स्वजनों की, कर आया अवहेला है।"

शूर्पणाखा के एकांगी स्वभाव पर ध्यान देकर उनके प्रबल प्रेम का दान करने के लिए रामचन्द्र उसे धन्यवाद देते हैं।

अंत में शूर्पणखा दोनों ओर से निष्फल हो जाने पर वह अपना भयंकर रूप धारण करती है, तब सीताजी घबड़ा उठती है। राम लक्ष्मण दोनों उन्हें धीरज बँधाते हैं। लक्ष्मण पुरुषार्थ की बातें करते हैं। वे कहते हैं कि—

"विधि की बात बड़ों से पूछो, वे ही उसे मानते हैं।
मैं पुरुषार्थ पक्षपाती हूँ, इसीको सभी जानते हैं।"

यह कहकर तीनों मुस्कुराने लगते हैं। फिर से विनोद का वातावरण छा जाता है। उस समय सीता विनोद करती हुई, लक्ष्मण से कहती है—

"रहो, रहो पुरुषार्थ यही है—पत्नी तक साथ न लाये"

यह कहते ही सीता की आँखें प्रेम से भर जाती हैं। यह बताता है कि राम, सीता और लक्ष्मण वन में रहते हुए भी सुखी और संतोषी हैं। वे दुःख में भी

मज़ार का चिराग़

श्री नार्ला गणपति राव

काया की कुटिया का
अब बुझा कि अब बुझा
ऐसा एक चिराग़ हूँ मैं ।

अब गिरा कि अब गिरा
ऐसे गिरते मज़ार के
दीवट का एक चिराग़ हूँ मैं ।।

कमज़ोर दीवट पर रखा ।
ऐसा दीपक हूँ मैं, कि
जैसे कोयल सीस नवाकर
अंबिया पर सो जाए ।।

अंधकार में तूफ़ानों से जूझता
टिमटिमाता एक चिराग़ हूँ मैं ।
रात को चुपके से कान में बोली अंधियारी
मन-मंदिर में बिठा ले मुझे
ऐ ! ज्योती के राजा !

तुम टिमटिमाते दीपक, तो मैं
थकी अंधियारी,
जिसे कोई न पूछे
ऐसी मैं किस्मत की मारी ।।

तब डाल दी मैंने अंधियारी
के गले में बाहें ।
नयनों से झरते आँसू थे
और होठों पर आहें ।।

सुनकर अंधियारी की बातें,
मैं बोला, "उठ जाग शरण में,
मेरी तरह यही है तेरे भाग ।
भड़क रही सीने में मेरी,
तेरे विरहा की आग ।।

तब काया के मन्दिर से,
गूँज उठा एक तूफ़ानी राग ।
"कि काया की कुटिया का
अब बुझा कि, अब बुझा
ऐसा एक दीपक हूँ मैं ।।"

पटमटा, विजयवाड़ा, 520 006
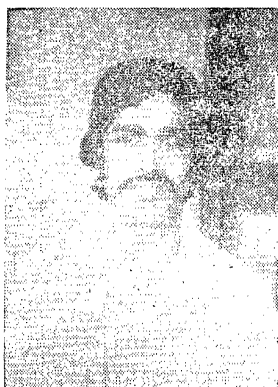
हिन्दी प्रचारक विद्यालय 79-80 के छात्राध्यापक श्री के. वेंकन्न बाबू, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा संचालित वाद-विवाद प्रतियोगिता में **आन्ध्र भाषा-भाषियों** में सर्वप्रथम आये ।

राष्ट्रीय एकता (NATIONAL UNITY)

श्री के. संपगि रामय्या, मैसूर

राष्ट्रीय एकता पर चर्चा करने के पूर्व हमें चाहिए कि राष्ट्र तथा एकता का अर्थ अच्छी तरह जान ले। राष्ट्र की परिभाषा के अनुसार हमें यह मालूम होता है; राष्ट्र के लिए जनता, एक झंडा, चिन्ह, भाषा और राज्य का होना आवश्यक है।

भारत इस परिभाषा के अनुसार एक राष्ट्र माना जाता है। परन्तु भाषा की समस्या को लेने पर इस उपखंड में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं, जिन्हें राज्य-भाषाएँ कहीं जाती हैं और इनकी लिपि भी भिन्न-भिन्न है। सारे देश में भिन्न-भिन्न धर्मवाले, भिन्न-भिन्न जाति के अनुयायी रहते हैं। इतनी भिन्नताओं के बावजूद हमारे देश के लोगों की नसों में एकता की धारा प्राचीन-काल से बहती आ रही है। इसका कारण, यही हो सकता है। हमारी प्राचीन संस्कृति।

इस संस्कृति को यदि हम भूल जाये; तो हमारे राष्ट्र को नींव ही हिलने लग जायेगी। इसलिए हमें सदा अपनी संस्कृति पर गर्व करना चाहिए और इनमें मिले हुए सिद्धांतों के अनुसार पुनः प्रसार और प्रचार के लिए उचित कदम उठाना, प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य है।

किसी अंग्रेज़ी इतिहासकार ने कहा है **There is Unity in Diversity** अर्थात् "विभिन्नताओं के बीच में एकता" यद्यपि प्रत्येक राज्य के लोगों के आहार; रहन-सहन में विभिन्नता पायी जाती हैं; तथापि उनमें एकता अवश्य पायी जाती है।

हमको एकता और एकरूपता इन दोनों शब्दों का ठीक अर्थ जान लेना जरूरी है। भारत में प्राचीन काल से एकता रही। इतिहास और प्राचीन संस्कृति इसकी साक्षी है। प्राचीनकाल में तीर्थ-यात्री काशी से रामेश्वरम् तक रामेश्वरम् से काशी तक एक ही मंत्र का जप करते थे। इतना ही नहीं हमारे ऋषि मुनियों ने "वसुदैव कुटुम्बकम्, ॐ शान्ति शान्ति का पाठ पढ़ते थे।" उनका मनोविचार सारे विश्व की एकता के सूत्र में बाँधकर विश्व शान्ति की हो इच्छा करते थे।

जब उन लोगों का विचार इतना उदार रहा तब हमें अपने राष्ट्र में अपने देश में एकता के विचार करना असंगत-सा प्रतीत होता है।

परन्तु आजकल के वैज्ञानिक युग में जब यातायात एवं संचार के साधन उपलब्ध हैं, और इसके फलस्वरूप विश्व के सारे देश निकट संपर्क स्थापना करने लगे हैं, हम पाते हैं; इनमें और अपने देश में प्रत्येक राज्य, और पड़ोसी राज्य में एकरूपता नहीं है।

यदि हम दक्षिण भारत के चार प्रान्तों को उदाहरण के लिए ले तो हम पाते हैं। उनकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ हैं, और तमिलनाडु में सौरमान (Solar Calendar) और आंध्र और कर्नाटक में चान्द्रमान (Lunar Calendar) पंचांग चालू है। उनका नया वर्ष भिन्न-भिन्न दिनों में प्रारंभ होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनमें भिन्नता अवश्य पायी जाती है। इसी तरह उत्तर भारत में भी विभिन्न प्रकार के अन्तर ज़रूर हैं। परन्तु इन दोनों उत्तर और दक्षिण को बाँधनेवाली वह चीज़ है जिसे हम कहते हैं प्राचीन भारतीय-संस्कृति, दर्शन और साहित्य। भारतीय-संस्कृति मिली जुली संस्कृति है। न केवल आर्य या न केवल द्राविड। इस मिली जुली संस्कृति पर प्रत्येक नागरिक एक प्रकार की प्रसन्नता का अनुभव करता है।

हमारी भाषाएँ, कला, लिपियाँ, संगीत, नाट्य सब प्राचीन हैं। फिर भी हम एक राष्ट्र के रहनेवाले हैं। बाहर के आक्रमण इस पवित्र देश पर आक्रमण करना भविष्य में असंभव है। क्योंकि भारत शान्तिप्रिय देश है और संसार के सब राष्ट्रों से स्नेह का हाथ बढ़ाना चाहता है। इसमें शंका नहीं है।

हमारे विभिन्नत्व को देखकर कुछ आलोचकों में मतभेद पैदा हुए हैं। वे कहने लगे हैं कि आपकी राजभाषा अब भी अंग्रेज़ी है, और देशीय भाषा हिन्दी के प्रति सारे भारतवर्ष में किसी न किसी प्रकार का विवाद चलता रहता है। उन लोगों ने एकता और एकरूपता (uniformity) इन दोनों का अर्थ ठीक नहीं समझा।

सारे भारतवर्ष के लोगों की आशाएँ (hopes), हमारे, मनोविचार (our thoughts) हमारे अन्य पड़ोसियों के प्रति दृष्टिकोण (our outlook on others) एवं हमारी इच्छाएँ (aspirations) सब एक है।

श्री स्वामी विवेकानन्दजी का जन्म यद्यपि उत्तर में हुआ था परन्तु उन्होंने दक्षिण में कुमारी अन्तरीप में आकर तपस्या की थी। उनमें एकता की भावना कूटकूट कर भरी हुई थी।

अन्त में मैं यहीं कहुँगा एक रूपता एकता के लिए आवश्यक वस्तु नहीं। भारत जैसा एक विशाल उपखण्ड में एक रूपता का हाना आवश्यक नहीं एक रूपता के लिए हमारा प्रान्त विफल हीं सिद्ध होंगे। एक रूपता के लिए प्रयत्न करनेवाले इतिहास के पन्नों को दोहरायें तो उनको पता चलेगा, भाषा की समस्या हो, कोई भी ससस्या, हल नहीं हो पायी है। यूरोप में रूस और ग्रीस छोडकर सब राष्ट्रों को एक ही लिपि है, परन्तु अपनी निजी भाषा, साहित्य अलग-अलग हैं। उनके धर्मों को माननेवाले केथलिक और प्राटेस्टेंट हैं। इसी तरह

इस्लामी राष्ट्रों को ले तो Y. A. R. की भाषा अरबी है। हमारे पडोसी पाकिस्तान में उर्दु और बंगला में बंगला भाषा बोली जाती है। यद्यपि एक ही धर्मावलंबी हैं। इससे हमें पता चलता है कि धार्मिक एकता रहने पर भी भाषा में विभिन्नता है।

इसलिए यदि हम अपने देश के साहित्यक, सांस्कृतिक विचारों को मजबूत बनाये तो हमारे देश की एकता अवश्य सुदृढ़ हो जायेगी ; परन्तु जब हमें एकरूपता के लिए हमारे विचारों को दूसरों पर थोपने लग जाये ; तब एकता खतरें में रह जायेगी। परन्तु लोगों को इस वैज्ञानिक युग में आर्थिक वित्तीय दृष्टिकोण से एकरूपता के फ़ायदे को समझावे, बतावे तो वे शायद धीरे-धीरे अपनायेंगे। परन्तु हमको इसमें बुद्धिमता से धीरे-धीरे चलने पडेंगे।

जिस राष्ट्र में एकता प्रस्तुत है उसी राष्ट्र को शक्तिमान राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्रीय एकता के बिना कोई राष्ट्र अपना अस्तित्व खडा नहीं कर सकता। जिस राष्ट्र में एकता है उसी में मजबूत शक्ति है। दुनिया की कोई भी शक्ति हिला नहीं सकती। वह अग्रणी राष्ट्रों की पक्ति में गिन्ना जा सकता है। उदाहरण के तौर पर इस्रेल को लेने पर पता चलता है कि उस राष्ट्र में एकता होने के कारण ही सारे अरब गणराज्यों को हरा सके। एकता के बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति के शिखर पर आरूढ नहीं हो सकता।

हमारे देश में आज़ादी मिलने के पहले एकता न होने के कारण ही अंग्रेज लोग हमारे देश में आकर अपना अड्डा जमा कर बैठे और हमपर हुकूमत करने लगे थे। हमारे राजा-महाराजा लोग एक दूसरे से छोटी छोटी बातों के लिए आपस में झगडते थे और अपनी सारी शक्ति को कुंठित कर लेते थे। 1966

हमारे प्रधान-मंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधीने भी कश्मीर में National Integration Committee की बैंठक बुलायी थी। उनका उद्धेश्य यह था कि समूचे राष्ट्र में एकता बनाये रखें।

जिस राष्ट्र में एकता बनी रहेगी उसी राष्ट्र में एकता की झलक हम देख सकते हैं। हमारे शत्रु भी डरेंगे। समूचे संसार में हमारे राष्ट्र का गौरव बढता है, एकता एक भावातमक भाव है। राष्ट्रीय भावना राष्ट्र के लोगों के हृदय में तभी धर कर लेती है जब उनमें देश प्रेम कूट कूट कर भरा पड़ा है। देश के लिए सबकुछ त्याग कर सकते हैं।

राष्ट्रीय एकता एक ऐसी संजीवनी शक्ति है जिससे राष्ट्रीय मनोभावना जागृत होती है और एकता बनी रहेगी। इसमें संदेह नहीं।

आन्ध्र प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग की हिन्दी प्रचारक विद्यालय-प्रवेश परीक्षा संबंधी सूचना

OFFICE OF THE COMMISIONER FOR GOVERNMENT EXAMINATIONS ANDHRA PRADESH : HYDERABAD

NOTIFICATION

HINDI ENTRANCE EXAMINATION JUNE 1980.

It is hereby notified for the information of the public that Hindi Entrance Examination for admission to Hindi Pandit's Training Course, Pracharak Training Course and Shishak Training Course 1980-81 will be conducted by the Commissioner for Government Examinations, A. P. Hyderabad at the places HYDERABAD, VIJAYAWADA AND KURNOOL on 10-6-1980.

QUALIFICATION :—A pass either in Rastra Basha Praveen of Dakshina Bharath Hindi Prachara Sabha, Madras or Vidwan of Hindi Prachara Sabha, Hyderabad or any other examination recognised as equivalent to them.

EXAMINATION FEES :— Rs. 5/- should be remitted towards the examination fees on or before 15-5-1980 under the following Head of Account.

" 077—Education (B) Secondary Education.

(05) Tution and other fees—Commissioner for Government Examinations, A. P. Hyderabad.

(01) Examination fee (02) Other fees "

The last date for the receipt of applications directly from the candidates addressed to the additional Joint Secretary to the Commissioner for Government Examinations, A. P. Hyderabad is 20-5-1980.

MODE OF EXAMINATION :—The Examination consists of 2 parts i. e. Written Test for 75 marks and Viva-Voce test for 25 marks. The written test will be of 2 hours and structure of the question paper is as follows :—

1.	2 Essay type questions on the History of Hindi Literature (15 marks) each	30	Marks
2.	General Essay	— 20	
3.	Precis writing	— 15	
4.	Letter writing	— 10	
	Total	75	

The written test will be conducted from 10-00 A. M. to 12-00 Noon and the Viva-voce on the same day from 2-00 P. M. and on the following day, if necessary.

APPLICATION FORMS :—The applications may be obtained from this office enclosing a 22 X 12 Cms. size self addressed envelope.

The application forms filled completely should be sent to this office within the prescribed date. Application forms which will be received after the due date will be summarily be rejected.

Office of the Commissioner for
Government Examinations
Andhra Pradesh, Hyderabad

(MD. WAJHIUDDIN)
Addl. Joint Secretary.

आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी प्रचारक विद्यालय

आन्ध्र प्रदेश के विजयवाडा, तेनाली, अवनिगड्डा तथा हैदराबाद में इस साल भी आन्ध्र प्रदेश सरकार की प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में मिलें तो सभा की ओर से प्रचारक विद्यालय चलाये जाएँगे। प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थी केन्द्र सभा को अपने पूरे विवरण के साथ सूचित कर सकते हैं कि वे किस विद्यालय में भर्ती होना चाहते हैं।

तमिलनाडु में हिन्दी प्रचारक विद्यालय—1980-81

आवेदन-पत्र भेजने का विवरण

आगामी जुलाई 80 से पर्याप्त संख्या में छात्र होने पर मद्रास, मदुरै तथा तिरुच्चिरापल्लि में हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय चलाने की योजना है। सभा की राष्ट्रभाषा-प्रवीण या तत्समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण लोगों को प्रवेश दिया जायगा।

इसके लिए आवेदन-पत्र पांच रुपये के पोस्टल आर्डर के साथ अपना पता लिखा हुआ लिफ़ाफ़ा, जिसमें 0-30 पैसे का डाक टिकट लगा हो, भेजकर श्री शिक्षा-निदेशक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास-17 से प्राप्त कर सकते हैं।

पूरा किया हुआ आवेदन-पत्र ता. 16-6-80 तक शिक्षा-विभाग में पहुँचना चाहिए।

विद्यालय प्रवेश के लिए एक प्रवेश-परीक्षा होगी। जो प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे उन्हीं को प्रवेश दिया जायगा।

दो घंटे की एक लिखित और मौखिक परीक्षा भी होगी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर निबंधात्मक दो प्रश्न

(प्रत्येक प्रश्न 15 अंकों का)	30
सामान्य निबन्ध	20
संक्षिप्तीकरण	15
पत्र-लेखन	10
	75
मौखिक परीक्षा	25
कुल	100

हिन्दी प्राचर समाचार

हिन्दी शिक्षक शिबिर—समापन-समारोह

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की ओर से हिन्दीतर क्षेत्रीय शिक्षकों के लिए दि. 25-3-'80 से 31-3-'80 तक आयोजित हिन्दी कार्य शिबिर का समापन-समारोह दि. 31-3-'80 सायं चार बजे सभा-भवन में डॉ. मोटूरि सत्यनारायण की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस शिबिर में दक्षिण के चारों राज्यों तथा मद्रास शहर के 25 प्रचारक बन्धुओं ने भाग लिया। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के क्षेत्रीय अधिकारी डॉ. भास्करन नायर और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के सहायक निदेशक श्री रामदास के सक्रिय सहयोग से यह शिबिर चलाया गया। सभा के प्रधान सचिव श्री वे. राधाकृष्णमूर्ति शिबिर-निदेशक थे और संयुक्त सचिव श्री वी. आर. चंद्रशेखर आयोजक थे।

शिबिर-अवधि के दौरान श्री रामदास, डॉ. वी. जगन्नाथन, डॉ. माहेश्वरी, श्री बालशौरि रेड्डी, डॉ. रमेश चौधरी आरिगपूडि, श्री वे. राधाकृष्णमूर्ति आदि विद्वानों के भाषण हुए। हिन्दी शिक्षण की समस्याएँ, भाषाई प्रकृति, मानक रूप, शिक्षा पद्धति, वर्ग-संचालन, विषय-प्रस्तुति आदि पहलुओं पर विचार-विमर्श हुआ।

समापन समारोह के आयोजन में श्री रामदास (सहायक निदेशालय, नई दिल्ली) के स्वागत, प्रतिभागियों का स्वपरिचय, डॉ. माहेश्वरी के साधुवाद तथा डॉ. भास्करन नायर के आभार प्रदर्शन के उपरान्त प्रमुख वक्ता अध्यक्ष डॉ. मोटूरि सत्यनारायणजी का भाषण हुआ। मानी हुई बात है कि मोटूरिजी भारतीय भाषाई आंदोलन के, विशेषकर दक्षिण के अग्रदूत है और प्रयोजनमूलक राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं के प्रबल प्रवक्ता भी हैं। आपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "हमारा बड़प्पन पुरानेपन में है, नयेपन में नहीं। लेकिन नयेपन में जो ग्रहण योग्य तत्व हैं, उनसे चूकना नहीं चाहिए।...यहाँ शिक्षक इकट्ठे हुए हैं। शिक्षक के व्यक्तित्व में आकर्षण है, महत्व भी है। छात्र शिक्षक में विलीन हो जाते हैं, विस्मृति से स्मृति में आ जाते हैं। विद्यार्थियों को एकरस बनाना शिक्षक का काम है।"

श्री मोटूरिजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सभा की महत्वपूर्ण राष्ट्रीय भूमिका का स्मरण किया—विशेषकर अपने कारावास के दिनों का। वर्तमान केन्द्रीय वित्तमंत्री श्री आर. वेंकटरामन, भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री सी. सुब्रह्मण्यम्; श्री कामराज आदि को हिन्दी पढ़ाने की प्रक्रिया पर (बिना कागज-कलम के; जबानी तरीक़े से पढ़ाने की) प्रकाश डाला। उस जमाने में राष्ट्रीय भावना से

प्रेरित होकर हिन्दी प्रचार क्षेत्र में आये प्रचारक (स्वयंसेवक) बन्धुओं का सादर स्मरण किया और अपील की, पुराने छात्र-छात्राओं की तरह आजकल के विद्यार्थियों को भी हिन्दी के राष्ट्रीय भावात्मक संदेश व स्वदेशी भावना की प्रेरणा देने में वर्तमान हिन्दी प्रचारक तथा अध्यापक बन्धुओं की शैक्षणिक भूमिका रहनी चाहिए। अखिर इस बात पर भी जोर दिया कि हिन्दी सारे राष्ट्र की संपत्ति है, अत: हिन्दी भाषी—अहिन्दी भाषी का भ्रमजाल दूर करना है।

प्रतिभागियों की तरफ़ से श्री पी. एस. चंद्रशेखर (कर्नाटक), श्रीमती सावित्री देवी (आन्ध्र) ने शिबिर के आयोजकों व संचालकों को धन्यवाद दिया।

सभा के संयुक्त सचिव तथा इस कार्यशिबिर के आयोजक श्री वी. आर. चन्द्रशेखर ने धन्यवाद प्रस्तुत किया। प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र और ग्रन्थ-पुरस्कार वितरित किये गये।

'श्री अनंत गोपाल शेवडे पुरस्कार'

सुविख्यात हिन्दी सेवी एवं वरिष्ठ पत्रकार स्वर्गीय **श्री अनंत गोपाल शेवडे** की पत्नी श्रीमती यमुना शेवडे ने अपने पति की स्मृति में प्रतिवर्ष हज़ार रुपये का पुरस्कार प्रदान करने का निश्चय किया है।

यह पुरस्कार, हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मौलिक कृति—कहानी, कविता, जीवन चरित्र आदि पर उस लेखक को दिया जाएगा जिसकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।

1980 के पुरस्कार के लिए उन पुस्तकों पर विचार किया जायेगा, जिनका प्रकाशन 1 जनवरी, 1979 से 31 दिसंबर, 1979 तक हुआ होगा।

प्रतियोगिता में सम्मिलित किये जाने की अंतिम तिथि 31 मई, 1980 है, अतएव निर्णय के लिए पुस्तक की चार प्रतियाँ उक्त तिथि से पूर्व नीचे लिखे पते पर पहुँच जानी चाहिए।

नागपुर टाइम्स ट्रस्ट,
द्वारा : **नागपुर टाइम्स**
रामदास पेट : : नागपुर - 440 010

हिन्दी के माध्यम से मित्रता की कड़ियाँ सुदृढ़ हों

श्रीमती इंदिरा गांधी

हिन्दी विश्व की महान भाषाओं में से एक है और मुझे विश्वास है कि हिन्दी के द्वारा भारत की अन्य देशों से मित्रता की कड़ियाँ और

दृढ होंगी। हिन्दी को चाहिए कि वह अपने दरवाज़े और खिड़कियाँ खुला रखें। ऋग्वेद में कहा गया है कि अच्छे विचारों का सभी दिशाओं से हम आह्वान करें। इसी तरह हिन्दी एक विश्व भाषा का रूप ले सकेगी। जिस हद तक हिन्दी का भंडार बढेगा, उस हद तक अधिक लोग हिन्दी सीखना चाहेंगे।

हिन्दी करोड़ों लोगों की भाषा है। गंगा-जमुना के निकटवर्ती प्रदेशों में विकसित होकर, इस भाषा का प्रयोग भारत के सुदूर कोनों तक प्रचलित है। इसका स्वर उन देशों में भी सुना जा सकता है, जहाँ हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गये थे।

भारत-जैसे संयुक्त परिवार का अच्छा उदाहरण मिलना कठिन है। हमारी प्रत्येक भाषा इस परिवार की पुत्री के समान है। वे सभी भाषाएँ भारत की सांस्कृतिक संपत्ति की समान उत्तराधिकारिणी हैं। ये भाषाएँ भारत की राष्ट्रीय भाषाएँ हैं और इनमें से हिन्दी भारत की राष्ट्रीय संपर्क की भाषा है; क्योंकि इस भाषा का परिवार सबसे बड़ा है।

संसार की सीमाएँ मिटती जा रही हैं। इस तकनीकी युग में लोगों का देश-विदेशों में आवागमन बहुत बढ़ गया है। कोई भी व्यक्ति केवल एक भाषा से काम नहीं चला सकता। कुछ देशों में अनिवार्य रूप से तीन भाषाएँ सिखायी जाती हैं। हमारे विशाल देश में भी वह आवश्यक है और वह कठिन भी नहीं है।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि प्रत्येक भारतीय स्वभावतः दुभाषी है। वे अन्तरप्रान्तीय समझ-बूझ और स्नेह-संपर्क बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने ठीक ही कहा था कि यह तभी संभव है जब ज़्यादा लोग हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी सीखें और बोलें। इसी कारण हमारे स्वतंत्रता-संग्राम में हिन्दी का एक ख़ास स्थान रहा है।

सभी भाषाएँ दूसरी भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करके विकसित और समृद्ध हुई हैं। बहुत-से हिन्दी शब्दों को प्रायः सारा देश समझता है। इसका एक कारण यह है कि मुगलों ने संपूर्ण भारतवर्ष में एक समान शासन-प्रणाली अपनायी, जिससे एक सामान्य प्रशासनिक और सैनिक शब्दकोश उपजा। अंग्रेज़ों ने भी उसी प्रणाली और शब्दकोश से काम चलाया। बाद में राष्ट्रीय आंदोलन ने देश के सभी भाषाओं में इस शब्दभण्डार में वृद्धि की। हिन्दी के पुनः जागरण में बहुत-से हिन्दीतर भाषियों ने महत्वपूर्ण भाग लिया। इसलिए भारत की अच्छे तत्वों को आत्मसात करने की प्रतिभा हिन्दी में प्रतिबिम्बित होती रही है। यह ज़रूरी है कि इस विशेषता को बढ़ाने का प्रयास बरबस होता रहे। भाषा देशचरित्र का दर्पण होती है। इसीलिए हिन्दी के समर्थकों और हिन्दी भाषियों को मेरी सलाह है कि वे हिन्दीतर भाषियों के दिलों को जीतें, उनकी आशंकाओं को दूर करें और उनमें विश्वास जगाएँ। किसी देश और जनता को गौरव मिलने से उनकी भाषा को भी सम्मान मिलता है। भाषा के सौन्दर्य से भी उसका आदर होगा। हिन्दी का विकास अवश्यंभावी है और अन्य भाषाओं की समृद्धि इसमें विशेष सहायक होगी। भाषा का समृद्ध होना स्वावलंबन के लिए आवश्यक है।

✶

हिन्दी से अंतरराष्ट्रीय एकता बढ़ेगी

● डॉ० शिवसागर रामगुलाम
(मारिशस के प्रधान मंत्री एवं विश्व हिन्दी सम्मेलन के अध्यक्ष)

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए यह बात अधिक महत्व की है कि हिन्दी एक अन्तरराष्ट्रीय भाषा है। मारिशस, सुरीनाम, गियाना, फिजी और अफ्रीका के कई देश इस बात को मानते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है। आज हिन्दी अनेक देशों में बोली जाती है। बोलनेवालों की संख्या को देखते हुए यह तथ्य उभरता है कि आज हिन्दी विश्व की चार प्रमुख भाषाओं में से एक है।

हिन्दी को यह गौरव प्रदान करने में भारत के वंशजों का बहुत बड़ा हाथ है, जो मजदूर बनकर अपना देश छोड़कर कई देशों में जा बसे और आज अपनी मेहनत के बल पर आजाद हैं; साथ ही साथ अधिक से अधिक प्रगति कर रहे हैं। मारिशस का हिन्दी भाषा का बहुत ही महत्वपूर्ण इतिहास है। बहुत मजबूरियों के बावजूद, अपनी मातृभूमि से बहुत दूर होने के बावजूद मारिशस और भारत का सांस्कृतिक रिश्ता कभी नहीं टूटा।

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन ने विश्व-एकता और सामाजिक भाईचारे के आदर्श को सामने रखा है। आज दुनिया के सब देश यह अनुभव कर रहे हैं कि जब तक इनसान, वर्ग, जाति, रंग के भेदभाव को नहीं भूलेगा, तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। धीरे-धीरे अलग-अलग बसे देश एक सूत्र में बँधते जा रहे हैं।

इस सम्मेलन में उपस्थित विद्वानों से मेरी अपील है कि हिन्दी के विकास की रूपरेखा बनाते हुए वे इस बात का विशेष ध्यान रखें कि हिन्दी आज की दुनिया में एकता, समानता व परस्पर सद्भाव के निर्माण में सहयोगी बन सके। विश्व की सारी भाषाएँ एक विशाल वृक्ष की डालियाँ हैं। हमें सब भाषाओं को और निकट लाना है और इसी प्रयास में से ही हमें हिन्दी को आगे बढ़ाने की परियोजनाएँ बनानी हैं।

(अध्यक्षीय भाषण में से संग्रहीत)

स्वागत-भाषण

◉ वसंतराव नाईक
(मुख्य मंत्री, महाराष्ट्र राज्य)

आज का दिन विश्व के इतिहास का एक स्वर्ण दिवस है जब पहली बार भारत में विश्व हिन्दी सम्मेलन हो रहा है। इस सम्मेलन में विश्व के दूर-दूर के देशों के हिन्दी विद्वानों ने अपनी उपस्थिति से हमें गौरवान्वित किया है।

भारत और मॉरीशस के सम्बन्ध अत्यंत घनिष्ठ और मैत्री के हैं। वहाँ की अधिकांश जनता से तो हमारे रक्त के भी सम्बन्ध हैं। इसलिए श्री शिवसागर रामगुलम को अपने बीच पाकर पारिवारिक मिलन का सुख हमें प्राप्त हो रहा है। उसी तरह हम इस बात में भी धन्यता अनुभव कर रहे हैं कि इस विराट अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्‌घाटन करने के लिए हमारी लोकप्रिय प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधीजी विशेष रूप से यहाँ उपस्थित हैं। उन्होंने हमेशा ही इस प्राचीन, प्रबुद्ध, महान देश की विश्व शांति और मैत्री की परम्परागत नीति का प्रबल प्रतिनिधित्व किया है। इन दोनों महान व्यक्तियों के आगमन से इस विश्व हिन्दी सम्मेलन को अपूर्व महत्त्व और गौरव प्राप्त हुआ है। हम पूरे हृदय से उनका स्वागत करते हैं। साथ ही यूरोप, अमरीका, अफ्रीका, एशिया आदि महाद्‌वीपों के अनेक देशों के विद्‌वानों का भी हम हार्दिक स्वागत करते हैं जिन्होंने अनेक समुद्र पार कर यहाँ आने का कष्ट किया है। भारत की उन 15 समर्थ भाषाओं के साहित्यकारों का भी हम स्वागत करते हैं जिन्होंने इस विशाल आयोजन में उपस्थित रहकर हमें सम्मान प्रदान किया है। उसीके साथ जिस भाषा को राष्ट्रपिता गांधीजी के नेतृत्व में स्वाधीनता-आन्दोलन की फलश्रुति के रूप में राष्ट्रभाषा की संज्ञा प्राप्त हुई है और जिसे अब राजभाषा का स्वरूप प्राप्त हुआ है, उस हिन्दी के समस्त साहित्यकारों, कवियों और लेखकों का तथा उसकी समृद्‌धि के लिए परिश्रम और साधना करनेवाले हिन्दीतर भाषी हिन्दी सेवियों का भी हम यहाँ हार्दिक स्वागत करते हैं। आप-जैसे विद्‌वान और सरस्वती के उपासकों की उपस्थिति से यह

ऐतिहासिक नगरी धन्य हो उठी है। इसीलिए हमारा हृदय उल्लास और कृतज्ञता से भरा हुआ है।

महाराष्ट्र की राजधानी बम्बई की तरह नागपूर की परम्परा भी अत्यंत उदार और व्यापक रही है। सभी भाषाओं, जातियों और धर्मों के लोग इस नगरी में अत्यंत प्रेम और भाईचारे के वातावरण में रहते हैं। इसलिए केवल नागपूर की ही नहीं, सारे महाराष्ट्र की जनता ने विश्व हिन्दी सम्मेलन की कल्पना का हृदय से स्वागत किया है और उसकी सफलता के लिए अपना उत्साहपूर्ण योगदान दिया है। नागपूर की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ से सेवाग्राम अत्यंत निकट है। सेवाग्राम में ही विश्व-वंद्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी निवास करते थे और उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद से ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थान और सामर्थ्य प्राप्त हुआ था। उन्हींके क्रान्तिकारी नेतृत्व के कारण हमारी स्वतंत्रता का स्वप्न साकार हुआ। महात्माजी का स्पष्ट निर्देश था कि भारत की स्वतंत्रता विश्व-शांति और सारी मानव जाति के कल्याण का एक अनिवार्य सोपान है और भारत को हमेशा ही सारी मानव जाति की सेवा और समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना है। इस विश्व हिन्दी नगर में हमने राष्ट्रपिता पूज्य बापूजी की प्रतिमा की स्थापना इसीलिए की है कि वे इस सम्मेलन की कल्पना के मुख्य प्रेरणा-बिन्दु हैं। उनके प्रति हम अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनसे आशीर्वाद माँगते हैं कि यह विश्व हिन्दी सम्मेलन सफल हो और उनकी विश्वात्मकता की जो दृष्टि थी, उस दिशा में प्रवास करे।

महाराष्ट्र का यह परम सौभाग्य है कि उसे प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का संयोजन करने का अवसर प्राप्त हुआ। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से इसका आयोजन किया जा रहा है, जिसका केन्द्रीय कार्यालय वर्धा, महाराष्ट्र में ही है। महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव से लेकर तो मध्य-युगीन सन्त तुकाराम-रामदास सहित आधुनिक सन्त तुकडीजी महाराज तक सभी राष्ट्रभाषा हिन्दी में अभंगों और भक्ति-गीतों की रचना की है। इन सभी सन्तों ने हमेशा सारी मानव जाति के कल्याण की ही चर्चा की है। महाराष्ट्र के सन्त शिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराज का यह मन्त्र—'हें विश्वचि माझे घर'—'सारा विश्व मेरा घर' हम सबके लिए प्रेरणा का सन्देश देता है। उसी विश्वात्मक भावना को लेकर इस विश्व हिन्दी सम्मेलन की योजना की गयी है। महाराष्ट्र के शासकों और राज्यकर्ताओं की यह परम्परा रही है कि उन्होंने हमेशा ही सन्तों के सामने अपना-अपना मस्तक झुकाया है। छत्रपति शिवाजी महाराज ने, जिन्होंने न्याय और नीति

के सिद्धांतों पर शासन-तन्त्र का निर्माण किया, हमेशा सन्तों और विद्वानों का आदर ही किया है।

राष्ट्र और मानवता के हित में जो भी कार्य होता है, उसमें महाराष्ट्र ने सदैव योगदान देने का प्रयत्न किया है। देश के स्वाधीनता-संग्राम में तो उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की ही है, लेकिन स्वतंत्रता के बाद भारत पर जब कभी फौजी आक्रमण हुआ तब महाराष्ट्र के सह्याद्रि पर्वत की चट्टानों ने हिमालय की चट्टानों के साथ खड़े होकर देश के स्वाभिमान और सुरक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम किया है। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी महाराष्ट्र के कवियों, कलाकारों और साहित्यकारों ने सारे विश्व को एक ही मानकर उसके कल्याण का स्वप्न देखा है। भाषा की तरफ़ भी उसका दृष्टिकोण सदैव ही व्यापक और उदार रहा है और उसने सभी भाषाओं का आदर किया है। विशेषतः हिन्दी के लिए तो महाराष्ट्र में हमेशा ही बड़ी अनुकूलता रही है। नागरी लिपि का स्वीकार कर मराठी भाषा हिन्दी के अत्यन्त निकट आ गयी है। यही कारण है कि असंख्य मराठी भाषी लेखकों ने हिन्दी भाषा, साहित्य, पत्रकारिता तथा अन्य क्षेत्रों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। एक लिपि के माध्यम से भाषाएँ किस तरह निकट आ सकती हैं, इसकी प्रत्यक्ष प्रयोगशाला हमें महाराष्ट्र में दिखाई देती हैं। जैसा कि आधुनिक सन्तवर आचार्य विनोबाजी कहते हैं कि अपनी-अपनी लिपियों के अतिरिक्त यदि नागरी लिपि में भी भारतीय भाषाओं का साहित्य प्रकाशित किया जाय तो उससे भारतीय साहित्य की एकात्मता का अधिक साक्षात्कार होगा और हम लोग एक राष्ट्र की कल्पना को अधिक दृढ़ और समर्थ बना सकेंगे। किन्तु यह सब स्वेच्छा से और बिना किसी जोर-जबर्दस्ती से होना चाहिए—ऐसी हमारी मान्यता है।

इस पृष्ठभूमि के आधार पर ही जब हमारे सामने विश्व हिन्दी सम्मेलन की कल्पना प्रस्तुत हुई तो हमने इसे कर्तव्य-बुद्धि से तुरन्त स्वीकार किया और इसमें हमारे शासन से जो भी योगदान बन पड़ा, वह हमने सहर्ष दिया। इस सम्मेलन की कल्पना अत्यंत भव्य और व्यापक है और हमें लगा कि इसको सफल बनाने में यदि हमारे हाथ से अल्प-स्वल्प-सी भी सेवा हो सके तो हम धन्य होंगे। हमारी यही दृष्टि रही है कि केवल मराठी और हिन्दी ही नहीं, भारत और विश्व की सभी भाषाएँ प्रेम और सहयोग की भावना से रहें और विश्व में शांति और मैत्री की स्थापना करने में मदद करें। यह भावना जाति, भाषा, धर्म और राजनीतिक विचार-प्रणाली आदि भेद-विभेदों से ऊपर उठकर सारे मानव के कल्याण को स्पर्श करती है। इसीलिए हमने पूरे अन्तःकरण से इस सम्मेलन का समर्थन किया है। अन्तःकरण की उसी गहरी भावना से हम आपका फिर एक बार स्वागत करते हैं।

उद्बोधन-भाषण

काका कालेलकर

हिन्दी के साथ मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। आजादी से अनेक वर्ष पहले हमने महात्मा गांधी की प्रेरणा पाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के लिए अपने उत्तमोत्तम वर्ष दिये हैं भारतीय-एकता को मजबूत करने के लिए, और भारतीय जनता को एकहृदय बनाने के लिए। स्वाभाविक है कि 'हिन्दी' इस छोटे-से शब्द के साथ जिंदगी की बहुत-सी यादें जुड़ी हैं (जिनमें से कुछ सुख देनेवाली हैं और कुछ दु:ख देनेवाली)। इन यादों में गांधी जी के साथ बिताये वर्षों की यादें भी हैं और मैं समझता हूँ कि विश्व हिन्दी सम्मेलन के मौके पर सबसे पहला काम होना चाहिए उस महान विभूति, युग-पुरुष का स्मरण जिन्होंने भारतीय स्वराज्य के साथ हिन्दी को जोड़कर हिन्दी के प्रचार को एक पवित्र राष्ट्रीय कार्य बनाया था।

आज भारत स्वतंत्र हुआ है और विश्व के दरबार में उसे आदर का स्थान प्राप्त हुआ है। इसीलिए हम आज 'विश्व—हिन्दी—सेवा' के आदर्श को लेकर इस सम्मेलन में इकट्ठे हुए हैं।

विश्व की सेवा के क्षेत्र में हिन्दी आगे आये, इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। मानव जाति ने सर्वत्र जो प्रगति की है, उसके फलस्वरूप हमारा स्वराज्य (प्रजा-राज्य) हुआ है। इसीलिए समस्त भारत की प्रजा को संगठित करके समस्त मानव जाति की सेवा करने का मिशन, जो मिशन इतिहास-विधाता ने हमारे सामने रखा है, उसकी सिद्धि के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के सेवक आगे आएँ, यह स्वाभाविक भी है और जरूरी भी।

इतिहास-विधाता की योजना में आज सर्वत्र प्रजा-राज्य ही है। अमरीका हो या चीन, भारत हो या एशिया, मानव जाति का भाग्य अब किसी एक सम्राट या किसी एक प्रभावशाली प्रतिष्ठित वर्ग के हाथ में नहीं रह सकता। सारी प्रजा को ही अपना भाग्य प्रजाकीय सहयोग से सिद्ध करना है। जहाँ तक भारत का सवाल है, इतिहास-क्रम से यहाँ की जनता बहुवंशी, बहुधर्मी और बहुभाषी है।

जो जो गुण-दोष समस्त मानव जाति में हैं, वे सब हमारे भारत में भी पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में भारत काफ़ी हद तक सारे विश्व की मानव जाति के संगठन का प्रतिनिधित्व कर सकता है। इसी कारण यदि हम हिन्दी की सेवा के माध्यम से जो इस देश की राष्ट्रभाषा है, आज के युगानुकूल समस्त भारतीय जनता का संगठन और कल्याण कर सकें तो जो समृद्ध, विशालहृदयी, सेवा-शक्ति हम स्थापित करेंगे उसके बल पर हम इस धरती की समस्त मानव जाति की सुरक्षा, शांति और उन्नति के आदर्श को भी सिद्ध कर सकेंगे।

इस बात पर मैं जो इतना जोर दे रहा हूँ उसका कारण भी मुझे यहाँ स्पष्ट करना चाहिए। पिछले पचीस वर्षों में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जिन लोगों ने अपनी शक्ति लगायी, वे जानते हैं कि केवल संख्याबल से सरकारी या राष्ट्रीय प्रस्ताव पास करने से हिन्दी में अपने मिशन को सिद्ध करने का बल संगठित नहीं हो पाएगा। भारतीय जनता ने सर्वानुमति से कब का प्रस्ताव पास किया है कि हिन्दी ही स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा बनेगी। किन्तु स्थिति अब भी कोई विशेष नहीं बदली है। हम अंग्रेजों का राज्य अपने सिर पर से दूर कर सके, लेकिन अंग्रेज़ी का जो राज्य हमारे हृदय पर स्थापित हुआ है उसे दूर नहीं कर सके।

मैं यहाँ स्पष्ट करना चाहता हूँ कि अंग्रेजी भाषा की और उसके साहित्य की सेवा लेने के विरुद्ध मैं नहीं हूँ। जब तक अंग्रेजी भाषा यहाँ पर विदेशी राज्यकर्ता की भाषा थी, तब तक मेरे जैसे कुछ लोगों ने अंग्रेज़ी का विरोध जोरों से किया। अब समस्त प्रजा का स्वराज्य हो गया है, तो राष्ट्रभाषा के तौर पर हिन्दी-जैसी स्वदेशी भाषा को स्वीकार करने के बाद, हिन्दी की ही शक्ति बढ़ाने के लिए अंग्रेजी शब्दों की सेवा लेते मैं संकोच नहीं करूँगा।

राष्ट्रभाषा का प्राण है अजरामर संस्कृत भाषा। उसकी मदद से हम बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि सब देशी भाषाओं की सेवा लेंगे। जिस तरह हमने अरबी-फारसी शब्दों की थोड़ी बहुत मदद ली, उसी तरह अंग्रेज़ी शब्दों की भी कुछ मदद ज़रूर लेंगे। इतना ही नहीं, दुनिया के सभी प्रधान राष्ट्रों की भाषाओं का अध्ययन करके उनके कुछ खास शब्द भी हिन्दी में ले लेंगे। जहाँ प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छा से हम सहयोग बढ़ाएंगे, वहाँ विचारों का आदान-प्रदान भी होगा और विचार कभी-कभी अपने साथ सुन्दर अर्थ-समृद्ध शब्दों को भी ले आते हैं। समस्त मानव जाति के बीच सहयोग बढ़ाने के इस युग में, विचारों का आदान-प्रदान करते हुए, दूसरी भाषाओं के थोड़े खास शब्दों को ग्रहण करना ज़रूरी है।

हिन्दी प्रचार समाचार

एक अत्यंत महत्व का सिद्धांत आपके सामने रख रहा हूँ, "मानवता-प्रधान युग में सर्वश्रेष्ठ बल **सत्ता** का नहीं, किन्तु आत्मीयता से की हुई **निष्काम सेवा** का ही रहेगा।" हिन्दीभक्तों के आज के इस सम्मेलन में, अपने नब्बे वर्ष के अनुभव का सार कह रहा हूँ कि भारतीय जनता की प्रादेशिक प्रधान भाषाओं की और समाजों की जैसी सेवा हम करेंगे, वैसी ही हमारी और हमारी राष्ट्रभाषा की शक्ति बढ़ती जाएगी।

हमारा बड़ा सौभाग्य है कि विशाल भावना से प्रेरित होकर विभिन्न देशों के जिन लोगों ने भारतीय संस्कृति का और हमारे साहित्य का अध्ययन किया है, ऐसे बहुत-से लोग भी इस सम्मेलन में उपस्थित हैं। उनकी संख्या भले ही कम हो, उनका महत्व मैं सबसे अधिक मानता हूँ। उनका सहयोग, उनकी सेवा और उनकी समर्थ मानवता मनुष्य जाति का सबसे बड़ा बल है।

इस प्रकार मैं देखता हूँ कि आज इस विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर जितने लोग इकट्ठे हुए हैं, वे (लेखक हों या पत्रकार, अध्यापक हों या विद्यार्थी) सबके सब हिन्दी के सेवक हैं। हम सबका समान सेवा-धर्म हैं और हिन्दी इस सेवा का माध्यम या साधन है। इसीलिए हम हिन्दी को अन्य भाषाओं से बड़ा नहीं कहेंगे। सेवा का साधन हमेशा नम्र होता है। इस हिन्दी के माध्यम से हमने आज़ादी से पहले राष्ट्र की सेवा की है, आज़ाद होने के बाद भी हिन्दी के माध्यम से राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं और अब इसी हिन्दी के माध्यम से विश्व की, सारी मानवता की कुछ सेवा करने में अग्रसर हो रहे हैं।

हिन्दी भारत के 36 करोड़ और विदेशों के और 6 करोड़ लोगों द्वारा समझी और बोली जाती है। यह संसार की कई उन्नत भाषाओं की तरह समृद्ध न सही, भारत की कुछ अन्य भाषाएँ भी, हो सकता है, हिन्दी से ज्यादा समृद्ध हों, लेकिन यह संसार के बयालीस करोड़ लोगों की आवाज़ है और यह आवाज़ मानव जाति के भाग्य के निर्णय में बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकती है। विश्व अब पहले जैसा विश्व नहीं रहा है। यह बहुत छोटा हो गया है, कुछ बड़ी शक्तियों की हथेली में आमले की तरह बन गया है। मनुष्य जाति का भाग्य कुछ लोगों और उनकी बनाई हुई कुछ संस्थाओं के हाथों में है। राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थों में अंधे होकर ये चंद लोग मनुष्य के अधिकारों का दमन करने की स्थिति में हैं और आगे भी रहेंगे। ऐसी स्थिति में 42 करोड़ लोगों की आवाज़ यह हिन्दी बहुत बड़ा काम कर सकती है। वह मानव जाति के शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठा सकती है और मनुष्य मात्र की सेवा का संदेश दे सकती है।

यह बड़े-बड़े युद्ध जीतनेवाले राजाओं और बादशाहों की भाषा कभी नहीं रही, यह तो मानव जाति की सेवा में सर्वस्व समर्पित करनेवाले साधु-सन्तों, फकीरों की भाषा रही है। कबीर, नानक, दादू, सूर, तुलसी-जैसे सन्तों ने इसे सँवारा है। सारे विश्व को एक दृष्टि से देखनेवाले संन्यासी दयानंद ने और सारी मानव जाति को हृदय से प्यार करनेवाले महात्मा गांधी ने इसे सेवाभावना का पुट दिया है। आजादी की अहिंसात्मक लड़ाई लड़नेवाली यह भाषा सारे संसार को आजादी का संदेश दे सकती है और अधिकारों के दमन के खिलाफ़ आवाज़ उठा सकती है। इसलिए मेरा कहना है और अंतर्मन से मैं विश्वास करता हूँ कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ जैसे संगठनों में यदि, बयालीस करोड़ लोगों की यह आवाज पहुँचेगी तो यह विश्वशांति की ओर, अहिंसाप्रधान मानव-व्यवस्था की ओर, शोषणरहित समाज की ओर, तथा समस्त विश्व के बीच एक पारिवारिक स्नेह-संबंध की ओर आगे बढ़ेगा।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

प्रमाणित प्रचारक कृपया ध्यान दें

प्रमाणित प्रचारकों की क्रम-संख्याएँ ता. 1-1-'75 से प्रमाणिकता के पुनर्वीकरण के क्रमानुसार बदल दी गयी हैं। 'समाचार' के रैपर पेपर पर पते में प्रत्येक प्रमाणित प्रचारक के नाम के पहले दो क्रम-संख्याएँ टंकित रहेंगी। उनमें ऊपर की क्रम-संख्या प्रमाणित प्रचारक की नयी क्रम-संख्या है और नीचे की क्रम-संख्या उनकी पुरानी। प्रमाणित प्रचारकों से निवेदन है कि वे भविष्य में सभा से अपने पत्र-व्यवहार में कृपया अपनी नयी क्रम-संख्या का ही उल्लेख करें।

ता. 15-2-'75 **प्रधान मंत्री**

संकल्प एवं परिकः

◎ अनन्त गोपाल शेवड़े
(महासचिव, विश्व हिन्दी सम्मेलन)

मानव के इतिहास का यह एक स्वर्णिम दिवस है जब यह प्राचीन ऐतिहासिक नगर में सर्वप्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा है। आज केवल इस नगर का ही नहीं, केवल महाराष्ट्र राज्य का ही नहीं, समूचे देश का भाग्य जाग उठा है और हमारा यह छोटा-सा नगर एक तीर्थस्थल बन गया है। यह एक अपूर्व विश्व संगम है, जहाँ इस सुन्दर और पवित्र पृथ्वी के कोने-कोने से अनेक भाषाओं, वर्णों और धर्मों के लोग विश्व हिन्दी सम्मेलन के माध्यम से एक मंच पर एकत्रित हुए हैं। आपकी उपस्थिति में तो हमें प्रभु का दर्शन का अनुभव हो रहा है। इसलिए हम आप सबका नतमस्तक और कृतांजलि से स्वागत और अभिवादन करते हैं।

हिन्दी भारत की एक प्रमुख भाषा है और राष्ट्रपिता परम पूज्य महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में जो इस विश्व हिन्दी सम्मेलन के अधिष्ठात्री देवता भी हैं, उसे राष्ट्रभाषा की संज्ञा दी गयी और अब वह भारतीय संविधान के अन्तर्गत राजभाषा के रूप में घोषित हुई है। फिर भी विश्व हिन्दी सम्मेलन के संयोजकों की, विशेषतः राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की, जिसकी ओर से इस सम्मेलन का आयोजन हुआ है, यही दृष्टि रही है कि हिन्दी को सभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं के प्रति नितान्त आदर की भावना रखते हुए तथा भारत की सभी 15 प्रमुख भाषाओं का स्नेह और सहयोग प्राप्त करके ही आगे बढ़ना है, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बने। भारतीय संविधान हिन्दी से इसी प्रकार के उत्तरदायित्व के निर्वाह की अपेक्षा रखता है। इसी भावना से हमने विश्व हिन्दी सम्मेलन के मंच से भारत की 15 प्रमुख भाषाओं के ज्येष्ठ और वरिष्ठ साहित्कारों का सम्मान करने का निश्चय किया है। इसके अलावा ऐसे हिन्दी सेवियों का भी सम्मान करने की योजना है जिनकी मातृभाषा

हिन्दी को छोड़कर कोई अन्य भारतीय भाषा हो, या रूसी, अंग्रेजी, चैक, जैसी कोई विदेशी भाषा हो। यह सम्मान तो केवल प्रतीकात्मक है जिसके द्वारा भारत की तथा विश्व की सभी भाषाओं के प्रति हिन्दी अपना विनम्र अभिवादन करती है। भाषा के प्रति तो हमारी यही दृष्टि है कि चूँकि वह माता के दूध के साथ सीखी जाती है, इसलिए उसमें एक विशिष्ट प्रकार के प्रेम और पवित्रता की भावना रहती है और चूँकि हमारे लिए सभी मातृ-जाति वन्दनीय हैं, इसलिए हमारे लिए विश्व की सभी भाषाएँ वन्दनीय हैं।

भाषा तो अपनी भावनाओं, विचारों और संवेदनाओं की अभिव्यंजना का एक माध्यम मात्र है; लेकिन उसे गरिमा प्राप्त होती है उसके कथ्य से। कौन-सा वह जीवन-दर्शन है, मानव के अन्तस्तल में छिपा हुआ कौन-सा दर्द है, या उसके मन में बसा हुआ कौन-सा स्वप्न है जिसे वह साकार करना चाहता है। मानव की ऐसी कौन-सी समस्याएँ हैं, कौन-से प्रश्न-चिह्न हैं जिनका समाधान पाने के लिए वह छटपटा रहा है? भाषा का इसमें क्या योगदान हो सकता है? आधुनिक युग की चुनौतियों और समस्याओं का वह जितने अधिक प्रमाण में उपयोगी और समर्थ हल निकाल पाएगी, उतना ही अधिक सामर्थ्य और मान्यता वह प्राप्त कर सकेगी।

आज का युग संक्रांति का युग है। इतिहास ने जो कभी नहीं देखे ऐसे परिवर्तन आज विश्व में हो रहे हैं। विज्ञान ने मानव जीवन में एक अभूतपूर्व क्रांति का प्रादुर्भाव किया है जिसकी सौ-पचास वर्ष पूर्व कल्पना करना भी कठिन था। इस क्रान्ति ने जहाँ मानव के लिए कई कल्याणकारी और मंगलमय वरदान प्रदान किये हैं, वहाँ कई भीषण और भयंकर समस्याएँ भी उत्पन्न की हैं जिन्हें यदि सावधानी और विवेक से नहीं सुलझाया गया तो विध्वंस और विनाश का खतरा अवश्यम्भावी है। मानव के सामने सबसे बड़ी चुनौती यही है कि कैसे वह विज्ञान की विध्वंसात्मक और नकारात्मक सम्भावनाओं से बचकर उसकी मंगलमय उपलब्धियों से लाभ उठा सके और कैसे इस शुभ, मंगल और सुन्दर दुनिया को प्रेम और शांति के तपोवन में परिवर्तित कर सके। आज के प्रचण्ड गतिमान युग में अनेक समस्याएँ मुँह बाकर सामने खड़ी हैं। पुराने मूल्य और पुराने सन्दर्भ टूट रहे हैं। विज्ञान की विराट शक्ति के कारण मानव और मानव के संबंधों में तनाव तथा मानव और निसर्ग के सम्बन्धों में अन्तर्विरोध आ गया है। राष्ट्र, वर्ण, वंश और धर्म आदि प्रतिमान अर्थहीन हो रहे हैं। स्वयं क्रान्ति और परिवर्तन जैसे शब्दों के परम्परागत अर्थ भी नये युग के सन्दर्भ में कालबाह्य हो चुके हैं। ऐसे गतिमान क्रान्ति-युग में मानव के नये मूल्य और नये सन्दर्भ क्या हों, स्वयं

मानव का स्वरूप क्या हो, समूची सृष्टि के साथ उसका क्या संबंध हो, और जीवन का वह कौन-सा वैचारिक एवं दार्शनिक आधार हो जिसे भाषा और साहित्य अपनी शब्दसम्पदा के माध्यम से नये युग और नये विश्व की सृष्टि के लिए प्रेरणा दे सकता है? आज मानव की जो पीड़ा है वह प्रसव-वेदना है, क्योंकि मानव अब विश्व-मानव के रूप में जन्म ले रहा है जिसे अपने संकीर्ण और संकुचित दायरे से उठकर सभी चराचर सृष्टि से अपने अद्‍वैतत्व के सम्बन्ध की अनुभूति करनी है—ईशावास्यम् इदम् सर्वम् ।

शताब्दियों से ही नहीं, सहस्राब्दियों से भारत के ऋषियों, सन्तों और कवियों की वाणी ने तो हमेशा विश्व-मानुष की ही कल्पना की है और सारे विश्व को एक परिवार के रूप में ही देखा है। केवल विश्व को ही नहीं, समस्त ब्रह्माण्ड को और उसमें निहित सभी चेतन और अचेतन तत्व को एक चैतन्यमयी दैवी शक्ति के रूप में ही माना है। इसलिए भारत में कभी भी कोई साम्राज्यवादी या विस्तारवादी परम्परा नहीं रही है। इस देश के बाहर यदि लोग गये हैं तो भगवान बुद्‍ध के भिक्षुओं की तरह या स्वामी विवेकानन्द जैसे परिव्राजकों की तरह प्रेम और मैत्री का सन्देश लेकर ही गये हैं, यह बताने के लिए कि सन्तुलन और संगीत ही सृष्टि का नियम है, उसको भंग करने से ही मानव दुख उठाता है, और उसीका पालन करने में उसका सुख और आनन्द समाया हुआ है। वही परंपरा आज भारत के सभी साहित्यकारों, विचारकों, कवियों और कलाकारों को अनुप्राणित और अनुप्रेरित करती है कि कैसे मानव अपनी सारी विषमताओं, संकीर्णताओं और विद्‍वेषों से ऊपर उठकर नये शांतिमय और मैत्रीपूर्ण विश्व का निर्माण कर सके, जहाँ स्नेह और संगीत का अनहद नाद निरन्तर बजता रहे और वाणी उसे साकार करने में धन्यता अनुभव करे।

इन्हीं स्वप्नों और आकांक्षाओं की पृष्ठभूमि पर इस सर्वप्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। जैसा कि विषय-सूची से ज्ञात होगा, हम अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में हिन्दी की स्थिति और स्वरूप के बारे में चर्चा तो करेंगे ही, साथ ही साथ यह भी विचार करेंगे कि आधुनिक युग के संदर्भ में हिन्दी को किन-किन उत्तरदायित्वों को निभाना है, उसकी क्या आवश्यकताएँ हैं, उपलब्धियाँ हैं और क्या सम्भावनाएँ हैं? लेकिन भाषा का काम केवल इतने से ही समाप्त नहीं हो जाता। वह मानव की सबसे बड़ी शक्ति है और वही उसे सृष्टि के अन्य सब प्राणियों से एक अलग और महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है और वही उसमें बसी हुई भव्य-दिव्य आत्मा की सृजनशीलता का एकमात्र माध्यम है।

[illegible] मानव पर ही है कि वह विश्व की सभी भीषण और विराट समस्याओं का हल निकालने के लिए अपने चिन्तन और स्वप्न को शब्दों से आकार प्रदान करे, चाहे वे समस्याएँ आर्थिक विषमता हों, ग़रीबी या भूखमरी हों, संस्कृतियों के टकराव या संघर्ष की हों या वातावरण के दूषण की या स्वयं मानव-जाति के अस्तित्व की हों। भाषा को यह भी स्पष्ट रूप से कहना होगा कि आधुनिक विश्व की जटिल समस्याएँ केवल राजनीति के आधार पर ही सुलझ नहीं सकतीं, क्योंकि अब राजनीति की शक्ति क्षीण होती जा रही है और उसका स्थान विज्ञान ने ले लिया है। लेकिन विज्ञान की शक्ति भी, सामर्थ्यशाली और विराट होने के बावजूद वह क्षमता नहीं रखती कि मानव की सभी समस्याओं का समाधान कर सके। क्योंकि विज्ञान की अपनी स्वतन्त्र प्रज्ञा या आत्मा नहीं होती और वह कोई स्वयंचालित शक्ति नहीं है। उसका संचालन करने के लिए महान् विवेक और संयम की आवश्यकता है जो एक योगी की वृत्ति से ही आ सकती है और जिसका आंतरिक प्रेरणा स्थल मानव की आत्मा ही हो सकती है। इसलिए हमें विज्ञान की शक्तियों के साथ ही साथ आत्मज्ञान की या अध्यात्म की शक्तियों की शरण लेना अत्यंत आवश्यक है और दोनों का समन्वय साधकर ही हमें नये विश्व और मानव के तथा नई संस्कृति के निर्माण की कल्पना करनी होगी। अब केवल फौजी और पाशवी शक्ति का युग समाप्त हो रहा है और एक नयी आत्मिक शक्ति का उदय हो रहा है जो यथार्थ में प्रेम की शक्ति है, करुणा और अहिंसा की शक्ति है, जो हमारा उद्धार करेगी। विज्ञान के साथ अगर संस्कृति न चले तो विकृति के सिवाय और कुछ हाथ नहीं लगेगा। इस संस्कृति के उद्घोष का काम तो कवियों और कलाकारों को, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को, सन्तों और साहित्यकारों को मिलकर ही करना होगा, क्योंकि उन्हींके हृदय में यह अटूट श्रद्धा और विश्वास रहता है कि आज का स्वप्न कल का सत्य हुआ करता है। इन युगान्तरकारी स्वप्नों को साकार करने में शब्द-ब्रह्म के उपासकों के साथ ही साथ स्त्री-शक्ति की असीम और दुर्दम्य सृजनशीलता तथा युवकों की क्रियाशील आदर्शवादिता का सहयोग और सहारा लेना होगा, ताकि हम सब मिलकर उस नये विश्व और नई संस्कृति के निर्माण का कार्य करें जिसमें वैर, वैमनस्य, द्वेष और संघर्ष के लिए कोई स्थान न रहे, क्योंकि मानव अब उससे ऊब चुका है, तंग आ गया है। भाषा तो प्रेम की वाणी है और उसे हृदयों को जोड़ने का काम करना है, ताकि मानव मानव के नजदीक आये और विश्व एक परिवार की तरह इस पृथ्वी-माता के आंचल में सुख-शांति और आनन्द के साथ रहे।

इसीलिए हमारी श्रद्धा है कि जो भाषा प्रेम और शांति की भाषा होगी वही विश्व की भाषा होगी और यदि हिन्दी इस उत्तरदायित्व का अधिकाधिक स्नेह, सद्भाव और मान्यता प्राप्त करेगी। और, अन्त में चलकर तो भाषा कोई भी हो, सबसे श्रेष्ठ भाषा तो हृदय की भाषा ही होती है। इसलिए विश्व की सभी भाषाओं को अक्षर वाङ्मय के माध्यम से, इसी हृदय की भाषा का वाहन बनना होगा। अगर भारत में होनेवाला यह प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन, महामानव की इस शाश्वत और चिरन्तन प्रेम-यात्रा की दिशा में प्रवास करने में कुछ अल्प-स्वल्प-सी सहायता भी कर सका तो हम कृतकृत्य हो उठेंगे।

हमें इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि हमारा निमन्त्रण स्वीकार कर यूरोप, अमरीका, अफ्रीका और एशिया महाद्वीपों के अनेक देशों के विद्वान, जिनमें कॅनडा से लेकर जापान तक और त्रिनिडाड से लेकर तो फीजी तक, अनेक देशों के प्रतिनिधि, सुदूर यात्रा की असुविधाओं और कठिनाइयों को सहन करके भी यहाँ पधारे हैं। उनके आगमन से हमारा हृदय गद्गद हो उठा है तथा आनन्द और कृतज्ञता से ओतप्रोत भरा हुआ है। अगर हम अपने देश, वर्ण, धर्म आदि बाह्य उपकरणों के भीतर पैठकर गहराई में जाकर देखें तो हमें यह अनुभव होगा कि हम सब एक ही हैं, दूजा कोई नहीं है। आप सब हमारे अतिथि हैं गुरुजन हैं; इसलिए हमारे हृदय के निकट हैं। हमारी गली प्रेम की गली है। इसमें जैसा कि कबीर साहब ने कहा है, दो नहीं हो सकते—

जब मैं था तब गुरु नहीं,
अब गुरु हैं, हम नाहिं,
प्रेम गली अति साँकरी,
ता मैं दो न समाहिं।

जय मानव! जय जगत्!!

राजभाषा रजत जयंती वर्ष के संस्मरण में

एक भाव आह्लाद हो !

डॉ॰ इंद्रराज बैद 'अधीर'

थकी-हारी, मनमारी, सरकारी आज भाषा है,
बड़ी दीन, पराधीन बिचारी स्वराज भाषा है।
किसीके इंगितों पर डोलती यह ताज भाषा है,
जिस तरह चाहो, करो, हिन्दी तुम्हारी राजभाषा है।

अभ्यास है इसको अधर को सीने अश्रु पीने का,
अन्यायों को सहने, घुट-घुटके मरने-जीने का।
असहाय है ऐसी कि इसकी संतान ही नामर्द है,
कोई नहीं पहिचानता कि दिल में कैसा दर्द है।

जो भी आया कर गया है साथ इसके दिल्लगी,
अवश जोड़े हाथ सबकी करती रही है बंदगी।
यह भी कैसी माँ कि इसके बेटे इसे भूलते,
सुनीति को तज सुरुचि की ही गोद में वे झूलते।

इस पाप का, संताप का हा दैव, अब तो अंत हो ;
निष्प्राण इसकी संतति फिर एक बार जीवंत हो।
जागें, बढ़ें आगे कि झुकता सामने जहाँ मिले ;
सोये हुए सिंह-सुतों से पुनः उनकी माँ मिले।

हों भारती की अर्चना में भारतीय बोलियाँ,
भरती जाएँ ज्ञान से विज्ञान से ये झोलियाँ।
हो एक देश, एक प्राण, एक भाव आह्लाद हो,
निखिल विश्व में गूंजता जनभारती का नाद हो!

राजभाषा : कल्पना और सत्य

● पी. वी. नरसिंह राव

[यह लेख उस बहुचर्चित हिन्दी विरोधी आंदोलन के बाद उठी हिन्दी-समस्या से संदर्भित सशक्त स्वरसंधान था, जो 1965 में 'धर्मयुग' द्वारा आयोजित वैचारिक परिचर्चा को अर्थवत्ता देने में समर्थ था। आंध्र के जनसेवन, शासन और चिन्तन के प्रतिभावान कर्णधार के यह भाषापरक विचार दस साल के बाद आज भी हिन्दी की वर्तमान स्थिति-गति के साथ कितना कुछ तालमेल बिठा पाते हैं, इसका पता पाठकों को स्वयं चल सकेगा।]

आखिरकार, मद्रास के विद्यार्थी अपनी कक्षाओं में लौट आये।

फ़िसाद खत्म हो गया, चाहे कोई उसे 'महा युद्ध' कहे या उसके बारे में कुछ भी मत रखे। जिसे 'अनिश्चित काल' कहा गया है, ऐसे समय के लिए सहभाषा के नाते अंग्रेज़ी को उच्चासन पर प्रतिष्ठित करके जिसे 'हिन्दी साम्राज्यवाद' कहा गया, उसे सफलतापूर्वक हरा दिया गया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भूत आज बहुत खुश है कि हिन्दी के साथ उसका हिसाब-किताब, उसके मरने के बाद आज यों तय किया जा रहा है। भारत के सामने इतनी समस्याएँ हैं—और सब की सब इतनी जरूरी या फ़ौरी हैं कि कोई एक प्रश्न मंच के मध्य भाग में अधिक समय तक अपनी ओर सारा ध्यान केन्द्रित करके रह नहीं सकता। ग़रीबी में विविधता बुरी नहीं मानी जायेगी, समस्याओं का यह त्वरित परिवर्तन एक सच्चा खतरा भी है। राष्ट्र की प्रतिक्रियाएँ अनेक विध होने से कदाचित समस्या की तीव्रता

कम मानी जाये। सरकार का ध्यान भी बहुत बिखरा हुआ होता है और इस कारण से धीरे-धीरे हमारे मन में यह भावना दृढ़ होने लगती है कि शायद सब समस्याओं का एकमात्र हल 'काल' है। और इसलिए आवश्यकता से अधिक टालमटोल हम प्रश्नों की करते जाते हैं।

हिन्दी एक प्रतीक थी। जरा स्थिति की सतह से नीचे डुबकी लें और इस शीघ्र ज्वालाग्राही समस्या को देखें। पहली बात, स्वराज्य के बाद लोगों के दिल में मौलिक किन्तु धीमा अन्तर हिन्दी के प्रति आया है। स्वतंत्रता-संग्राम में हिन्दी एक प्रतीक थी, संग्राम का अस्त्र थी। अब प्रतीक कुछ ऐसी वस्तु है जो पवित्र बन जाती है। उसे लोग मानकर चलते हैं। उसके बारे में शंका करने की बात कभी सोची भी नहीं जा सकती। इस तरह से कभी चर्खा, सत्याग्रह, अहिंसा आदि के बारे में कभी प्रश्नचिह्न मन में नहीं उठा था, वैसे ही हिन्दी थी। पर स्वराज्य के बाद इनमें से हर चीज़ के बारे में शंका और प्रश्न लोग उठाने लगे। भावना से अधिक तर्क-बुद्धि बढ़ी, और बुद्धि के पास तो संशयवाद का पूरा अस्त्रागार है, अब हर चीज़ की नयी व्याख्या, पुनर्परीक्षण, फिर से समर्थन चाहे जाने लगे। आँकडे, संख्या, हिसाब में अंट सके, ऐसे लक्ष्य आदि जनता माँगने लगी।

यह ठीक है कि जब कोई कार्यक्रम बनाया जाता है तो उसमें थोड़ी अधीरता भी आ जाती है। आज जो खड़ी बोली हिन्दी है, वह अन्य भारतीय भाषाओं से उम्र में छोटी है। और एकदम हिन्दीतर भाषी प्रदेश की प्राथमिक शालाओं में उसे ले जाना कोई बहुत अकलमन्दी की बात नहीं थी। पहले उस प्रदेश की भाषाओं के साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों को मित्र बनाना चाहिए था। यदि यह परस्पर आदान-प्रदान का कार्यक्रम अधिक गति से होता, तो न केवल हिन्दी समृद्ध होती, उस राष्ट्रभाषा के प्रति सबका प्रेम और सहानुभूति भी अधिक खिंच आती। यह सही है कि केन्द्र सरकार ने राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाओं के बीच संबंध बढ़ाने के कुछ प्रयत्न भी किये। पर वे नाकाफ़ी थे, अपर्याप्त थे, और वे बहुत देर बाद हुए, जब कि भाषाओं के बीच वैमनस्य का बीज पहले ही बोया जा चुका था। इसलिए भाषा-समस्या अधिक कठिन और उलझी हुई बन गयी।

कृपया मुझे गलत न समझें। मैं कल्पना से बातें नहीं कर रहा हूँ। जो मैंने अपने कानों से सुना है, वही कह रहा हूँ। मारवाडी व्यापारी, चौकीदार, भैया और बनारसी पानवालों के मुँह से मैंने कई 'साहित्यिक' (?) प्रवचन सुने हैं, जिनमें उनका साहित्य-ज्ञान तुलसीदास या कबीर के एकाध गलत उद्धरण से अधिक नहीं होता। ऐसे लोग जब अतिरिक्त अहं-ग्रन्थि से बात करते हैं, तो हम कैसे आशा करें कि हिन्दी सारे देश में पनपेगी?

तमिलनाडु का भारतवासी कुछ टूटे-फूटे वाक्य हिन्दी में बोलने का साहस करता है। उत्तर का दूसरा भारतीय भाई उसे टोकता है—"तुम्हारा उच्चारण गलत है।" उसपर हँसता है। वह सोचता नहीं कि हिन्दी के साथ वह कितना बड़ा अन्याय कर रहा है। हमारी फिल्मों में ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जहाँ हास्य के नाम पर ऐसे कई दृश्य होते हैं, जो हिन्दीतर भाषियों के हिन्दी उच्चारण को लक्ष्य करके बनाये जाते हैं। हमारे 'सेन्सर' जो अपना अधिकांश ध्यान इस बात में बिताते हैं कि नारी के अंगों के कितने मिली मीटर फिल्म में प्रदर्शित किये जायें, जिससे हमारी तथाकथित नीति-मर्यादा शास्त्र का उल्लंघन न हो, राष्ट्रीय एकता के ऐसे प्रश्नों की ओर ध्यान नहीं देते। शायद वे उसमें कोई बुराई नहीं देखते।

हिन्दी के हित में ही हमें यह मानकर चलना चाहिए कि राष्ट्रभाषा अनेक रूपों में विकसित होगी। कट्टरपंथी हिन्दी पंडित पसन्द करें या न करें, राजस्थानी, अवधी, ब्रजभाषा, मैथिली आदि की भांति हिन्दी से कई रूप विकसित होंगे। और आखिर एक उपभाषा और-दूसरी उपभाषा में किसको छोटा या बड़ा कहा जाये। व्याकरण की दृष्टि से सब समान नहीं हैं क्या?

हिन्दी के साथ दोहरा अन्याय

असल में सारी गलतफहमी इन तीन नामों को लेकर हुई हैं: 'राष्ट्रीय', 'प्रादेशिक', 'राजकीय' (प्रशासनिक) भाषा। हमारे नेता अनेक बार कह चुके हैं चौदह भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। फिर भी 'प्रादेशिक भाषा' शब्द बार-बार प्रयोग में लाया जाता है, और उससे एक बुरी मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि पैदा हो गयी है। इसका एक कारण शायद यह है कि कोई भी भारतीय भाषा (हिन्दी भी नहीं) राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकसित की ही नहीं गयी। जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है, उसके साथ दोहरा अन्याय हुआ। एक तरफ़ कानूनी और संविधानिक रूप में उसे 'राजभाषा' बनाया गया, दूसरी ओर उसे 'सम्पर्क' भाषा (लिंक लैंग्वेज) माना गया। और दोनों वर्णन ऐसे हैं कि जनसाधारण में उसके प्रति कोई सहानुभूति या भावनात्मक इकाई नहीं पैदा हो सकी। चूँकि वह राजभाषा है, चलो, सरकार उसकी चिन्ता करे। चूँकि वह संपर्क भाषा है, हर कोई चाहता है कि दूसरा हर कोई उसके बारे में चिन्ता करें। यानी इस तरह हिन्दी के साथ खिलवाड किया गया, मानो वह किसीकी बेटी नहीं हो।

सबसे ज़्यादा नुकसान उन लोगों ने किया जो हिन्दी को अंग्रेज़ी का पर्यायवादी मानकर चले। कानून की दृष्टि से यह कहना ठीक था कि "हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान लेगी।" पर जनसाधारण की भावना इतने कानूनी पेंच नहीं समझती।

मेरे मत से इसी वाक्य में से यह भ्रम फैला कि हिन्दी 'साम्राज्यवाद' जैसा कोई हौआ है, चूँकि अंग्रेजी के विकास ने भारत की भाषाओं और संस्कृति के विनाश का बीड़ा इतिहास में उठाया था, भोले-भाले जनसाधारण समझ बैठे कि हिन्दी भी वही करेगी, जो अंग्रेज़ी ने किया था। इस विचार को खण्डित करने का प्रचार बहुत कम किया गया।

हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान न लेना चाहती है, न वैसी ही वह कभी बनेगी। इस बारे में भ्रम दूर कर देना चाहिए। हिन्दी तो भारत की सांस्कृतिक-राजनीतिक एकता का सप्रमाण प्रतीक है। वह सबका प्रिय सूत्र है, जो प्रेम और सामंजस्य से हर भाषाई इकाई के साथ घुल-मिल जाता है और उसे मज़बूत बनाता है। वह हमारे हृदयों को जोड़ेंगे, सिर्फ सरकारी कागज-पत्रों को नहीं। हिन्दी पर यह उत्तरदायित्व था और है। यदि हिन्दी यह नहीं करेगी, तो उसका सचमुच में प्रयोग कैसे बढ सकेगा?

आज तक हिन्दी केवल कुछ प्रदेशों की भाषा रही। इस सीमित क्षितिज को ध्यान में रखकर उसके स्त्री-पुरुषों की साहित्य-सर्जना, मेरी दृष्टि में, ज़रा भी निराशाजनक नहीं है, जैसा कुछ लोग मानते-कहते हैं। बाकी, हिन्दी को सच्ची राष्ट्रभाषा के नाते विकसित करना केवल हिन्दी भाषियों का जिम्मा नहीं है, केवल हिन्दी लेखकों का काम नहीं है—वह तो समूचे देश का कर्तव्य है। इस बात को भुला देने से हिन्दीतर प्रदेशों में तर्कहीन, विवेकहीन विरोध हिन्दी के प्रति उकसाया गया है।

मैं हिन्दीवालों से नम्रतापूर्वक यह कहना चाहता हूँ:

1. कृपया अपने आगे सबको छोटा समझने और प्रोत्साहन देनेवाली मुद्रा छोड़ दीजिए। इससे अनावश्यक मनोवैज्ञानिक चिड़चिड़ाहट बढ़ती है।

2. कृपया अपने आपको एकमात्र भाषा-दाता समझने का अहंकार छोड दीजिए। भावी हिन्दी का रूप न जाने कितनी भिन्न हो जायेगा। कोट्टयम या कोहिमा का भारतवासी भी उतना ही राष्ट्रभाषा-सेवक बनेगा जितने आप हैं।

3. कृपया इस बीच में एकाध-दो अन्य भारतीय भाषाएँ सीख लीजिए। उनके प्राचीन साहित्य-रत्नाकारों में डूबकर देखिए कि सब स्थानों के महापुरुष कितनी समानता से सोचते हैं। इस प्रकार से आप हिन्दी के अधिक अच्छे प्रेमी बना सकेंगे।

4. हिन्दीतर प्रदेश में हिन्दी पढ़ाने की तब तक इच्छा न रखिए, जब तक आपको वहाँ की भाषा नहीं आती, या वहाँ के साहित्य से परिचय नहीं होता। यह बात वैसे मामूली और सामान्य जान पड़ती है, लेकिन इसपर अमल जैसे होना चाहिए वैसे नहीं हुआ है।

हिन्दीतर भाषियों से मेरी आदरपूर्वक प्रार्थना है :

1. हिन्दी के प्रति अपना उपेक्षाभाव एकदम बन्द कीजिए। इस तरह से आप खुद अपना नुकसान कर रहे हैं। राजभाषा हिन्दी देश में चालू हो गयी है। आपने उतना ही उसे चाहा था (संविधान बनाते समय), जितना उत्तरप्रदेश के आपके मित्र ने। अंग्रेजी को अनन्त काल तक रखने की कानूनी माँग करने से आप भाषा-समस्या को नहीं सुलझा सकते। अंग्रेज़ी के प्रति आपका यह सहसा प्रेम फूटना नकारात्मक है, और मात्र प्रतिक्रियावादी दुराग्रह है। बदले की भावना से कुछ नहीं होता।

2. आधुनिक भाषा के नाते हिन्दी भी खूब विकसित हो रही है। आपकी अपनी भाषाओं की तरह हिन्दी में दो गुण हैं। वह पूर्वाग्रहविरहिता है, वह लचीली है; उसे सीखना बहुत आसान है। क्या यह हमारा सौभाग्य नहीं है कि हमें राजभाषा के रूप में एक ऐसी भाषा मिली है, जिसे बनाने-सँवारने में हम सब योगदान दे सकते हैं।

3. हमारे हिन्दी भाषी भाइयों या हिन्दी पण्डितों के दोष देखते रहने से काम नहीं चलेगा। उनसे जो बन सकता था, उन्होंने किया। उन्होंने, वस्तुतः एक बड़ा रिक्त था, उसे पूरा किया। वे न होते तो रिक्त रिक्त ही बना रहता। हम सब एक होकर हिन्दी को और समृद्ध बनायें। उसकी प्रादेशिक संकीर्णता से उसे ऊपर उठाकर उसे अखिल भारतीय संस्कार जल्दी से जल्दी दें।

4. हम अपनी (हिन्दीतर भाषियों की) उपेक्षा और अवहेलना-भाव से एक कृत्रिम दरार पैदा कर रहे हैं, एक विरोधाभास का निर्माण कर रहे हैं—हिन्दी और अन्य भाषाओं के बीच में। वस्तुतः हममें से समझदार और योग्य व्यक्ति हिन्दी और अन्य भाषाओं के बीच में अधिक मजबूत प्रेमसंबंध और आदान-प्रदान बढ़ाने से चूक गये हैं। एक दूसरे को कूपमण्डूक कहने से कोई काम सधेगा नहीं। हम सबको मिलकर मेंढ़क को कुएँ से निकालकर गंगा में डालना है।

5. आज से हर प्रादेशिक भाषा में अपना हिन्दी कार्यक्रम ज़ोरों से होना चाहिए : अनुवाद, तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दी के 'स्थानीय रंग' को पकड़ने की कोशिश, हिन्दी के शाहकार और उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रादेशिक भाषाओं में लाना

द्विभाषी मासिक और अखबार चलाना, साहित्य-गोष्ठियाँ और सम्मेलन बुलाना जिसमें हिन्दी और अन्य भाषा के लेखक इकट्ठे हों, कोश-निर्माण, नाट्य-प्रदर्शन, ऐसी फिल्में और प्रहसन जिनमें पात्र एक साथ अपनी-अपनी दो भाषाएँ बोलें, इनसे देश में कितनी एकता बढ़ेगी, इसकी कल्पना कीजिए।

हमने बहुत वक्त खोया है, हमारे मिजाज़ बहुत तन गये हैं, हवा में गुस्सा है और गर्मी है। इन सबके बावजूद साहित्यकारों को और भाषा के बारे में सोचनेवालों को एकता के लिए कुछ जल्दी करना है, जो बहुत बड़ी लकीर खींच सकें। राज्य सरकारों को भी हिन्दी के प्रश्न को प्राथमिकता देनी होगी।

फिर देखना होगा कि हिन्दी न केवल संविधान में, कानून की किताबों में, पर प्रत्यक्ष जीवन में कैसे अंग्रेज़ी का स्थान लेगी। इसके लिए देश-भर के सर्वोच्च विद्वानों और बुद्धिजीवियों का एकत्र आना होगा। हज़ारों-लाखों किताबें उन सब विषयों पर लिखवानी होंगी गंभीरता से, प्रामाणिकता से; मौलिक, निरे अनुवाद नहीं। तभी भारत का हर बच्चा हिन्दी के द्वारा देश-विदेश का सारा ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

जो बात साहित्य के लिए सच है, वह कला के लिए और भी अधिक आवश्यक है। हमारे विभिन्न प्रादेशिक नृत्य-संगीत नाट्य रूप और विधाएँ अपनी रंगत रखेंगी। वस्तुतः कला में भाषा को छोड़ 'प्रादेशिक' क्या होता है? क्यों न कथकलि पंजाबी में हो और भांगडा मलयालम में किया जाये, या दोनों ही कम से कम हिन्दी में तो हो सकते हैं? मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों होता। आज तो सारी भाषाओं और प्रदेशों में जो एक नृत्य समान भाव से अपनाया हुआ जान पड़ता है, 'राक एन रोल।'

संप्रति गैर-सरकारी सँस्थाएँ हिन्दी प्रचार का काम अपनी शक्ति-भर कर रही हैं। पर वह काफी नहीं है। समस्या इतनी बड़ी है कि सरकार को उसे हाथ में लेना होगा, दिशा-दर्शन कराना होगा। बड़े परिणाम पर ऊपर सुझाये कार्यक्रम करने होंगे। एक बार हिन्दीतर भाषी प्रदेश हिन्दी को अपना लेंगे, तो मामला बहुत जल्दी आगे बढ़ेगा। हिन्दीतर भाषा प्रदेशों से हिन्दी लेखकों, पत्रकारों, साहित्यकारों की एक पीढ़ी की पीढी का निर्माण होगा जो सारा काम आसान बना देगी। इसलिए हिन्दीतर भाषी भाइयों को हिन्दी के लिए सबसे अधिक काम करना ज़रूरी है। उन्हें राष्ट्रभाषा के निर्माण में साझीदार बनने का मौका और श्रेय भी दिया जाना चाहिए।

अंग्रेजी और उसका प्रयोग अनन्तकाल तक या अनिश्चित रूप में नहीं चल सकता। ज्यों ही हिन्दीतर भाषी हिन्दी को अपनाएँगे अंग्रेज़ी की महत्ता आपसे आप कम होगी। अंग्रेज़ी सखी भाषा कब तक रहेगी? क्या वह राजनैतिक या तकनीकी कारणों पर निर्भर होगी? आत्मनिष्ठ या वस्तुनिष्ठ कारणों से निर्णीत होगा? असल में इस सबके मूल में जो यह 'भाषा थोपना' शब्द है, वह ग़लत है। कौन किसपर क्या 'थोप' रहा है? प्रश्न थोपने का नहीं, पर अपरिपक्व अवस्था में कोई भी कार्य शुरू कर देने का है। पन्द्रह साल हमने खोये ही हैं, क्या और ऐसे ही वर्ष खोते जाना है? हिन्दी पर विवाद एकदम बन्द होना चाहिए। जितना समय ढील में बीतता है, हिन्दीविरोधी तत्वों को बल मिलता है। ईंट पर ईंट रखकर जैसे कदम-ब-कदम निर्माण किया जाता है, हिन्दी प्रयोग भी उसी तरह अमल में लाना ज़रूरी है।

लोकसेवा आयोग को चाहिए कि वह कार्यक्रम बनाये कि अगले पन्द्रह वर्षों में हर प्रशासक के लिए अंग्रेजी के साथ साथ हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य रूप से हो जाये। तभी अंग्रेज़ी को प्रशासन-सेवाओं से हटाया जा सकेगा।

(साभार: धर्मयुग, 9 मई, 1965)

भ्रष्टाचार और जनता की अन्य समस्याएँ किसी तरह के आंदोलनों से ख़तम नहीं हो सकतीं। आंदोलनों का उद्देश्य उन समस्याओं को खतम करना नहीं, बल्कि व्यवस्था को कमज़ोर करना है। देश के सम्मुख उपस्थित समस्याएँ मेहनत, सूझबूझ और सब लोगों के सहयोग से ही हल हो सकती हैं। —इंदिरा गांधी

हृदय बोले, तो हिन्दी आये

रा. वीलिनाथन्

तमिल के महाकवि भारती कहते हैं :

"आठों दिशाओं में जाओ! कला के उत्तम रत्न जहाँ भी मिलें, हमारे यहाँ लाकर संचित कर रखो!"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं :

"अपनी भाषा की उन्नति करो; वह सभी उन्नतियों का मूल है।"

इन दोनों साहित्य के कर्णधारों के कथन में कौन-सा फ़र्क पड़ता है? तह में बैठकर देखें तो पता चलेगा कि दोनों एक ही बात पर ज़ोर देते हैं; वह है अपनी भाषा की उन्नति।

इतिहास साक्षी है कि बहुभाषी भारत में प्रागैतिहासिक काल से भाषाओं की ऐसी उन्नति हुई है कि उसीका एक इतिहास लिखा जा सकता है।

भारती के शब्दों में अठारह भाषायें बोलनेवाली भारत माता एक चिंतन, एक विचार रखनेवाली है, तो गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में एक आस, एक विश्वास, एक भरोसा रखनेवाली है। इसी एक सूत्र में बँधकर भारतीय संस्कृति पनपी है और भारतीय साहित्य समूचे विश्व में फैला है।

आदि कवि वाल्मीकि की रामायण संस्कृत में प्रणीत है, तो क्या हुआ? भारत की हर भाषा में उसका छंदोबद्ध काव्य खड़ा हुआ है और उन उप-कवियों को उन उप-भाषाओं के 'महाकवि' की उपाधि से विभूषित किया है। इस तरह भारत के भी उत्तम साहित्य, आज के वैज्ञानिक युग में नहीं, उन दिनों के विज्ञानेतर युग में उत्तम नमूने उपस्थित कर चुके हैं कि उस ज़माने के लोग अपने घर में बैठे उनका आस्वादन कर पाये हैं।

यह तो हुई साहित्य की बात! संस्कृति को लीजिये तो उसने भी एक अनोखा कमाल किया है। 'पग पग पर प्रयाग राज' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए तीर्थस्थल बने हैं, जिनका तीर्थाटन करने अबोध निरीह जनता ने उत्तर से दक्षिण,

दक्षिण से उत्तर, पश्चिम से पूरब और पूरब से पश्चिम करके भारती के शब्दों में आठों दिशाओं में घूमकर भावात्मक एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भिन्नता में अभिन्नता का यह संयोग-वैचित्र्य इतने सुन्दर रूप से और कहाँ देखने को मिलता है? इसीलिए तो मुहम्मद इकबाल गाये हैं: 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तान हमारा!'

भाग्य से, और ज़ोर देकर कहें तो भारत की परतंत्रता एक तरह से वरदान सिद्ध हुई। हाँ, उसे स्वाधीन करने के लिए, आज़ादी की लड़ाई लड़ते हुए पूज्य बापू ने एकात्म भावना की नींव का पुनर्नवीकरण किया। अपने रचनात्मक कार्यों में मातृभाषा के लिए समुचित स्थान देते हुए, संपर्कभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार शुरू किया।

सच पूछिये तो हिन्दी प्रचार के शिलान्यास के समय मेरा जन्म भी नहीं हुआ था। पर जब मैंने होश सँभाला तो देखा कि गांधीजी के राष्ट्रीय जागरण की यह लहर गाँव-गाँव में फैली है। आज जिस तमिलनाडु को समूचा भारत 'हिन्दी विरोधी' के रूप में देखता है, वह तमिलनाडु ज़रा भी पिछड़ा नहीं रहा।

द्राविड कळकम के सर्वेसर्वा ईरोड़ के पेरियार रामस्वामी नायकर उन दिनों कांग्रेस में थे और हिन्दी के प्रचार में भरपूर योगदान दिया करते थे। पूज्य राजाजी तो हिन्दी के ऐसे हिमायती थे कि हिन्दी के प्रचार में ही नहीं, 'हिन्दी स्वबोधिनी' के प्रणयन में भी उनका बड़ा हाथ था। आज के द्राविड़ मुन्नेट्र कळकम के कितने ही नेता हिन्दी सीखते हुए नज़र आये!

इस सूरत में, यहाँ पर हिन्दी के प्रति विरोध-भावना का बीज क्योंकर पड़ा? इसके पीछे एक इतिहास है।

स्वतंत्रता के पूर्व कांग्रेसी मंत्रिमंडल जो बना, उसमें स्वर्गीय राजाजी मद्रास के मुख्य मंत्री थे। उन्होंने स्कूलों में अनिवार्य हिन्दी जारी की तो कांग्रेस के छिपे विरोधियों ने उससे फ़ायदा उठाने को सोचा। फलस्वरूप हिन्दी के विरोध का बीज पड़ा।

अनुभव तो यह बताता है कि किसी बात को किसीपर ज़बरदस्ती थोपना नहीं चाहिए। स्वातंत्र्य-संग्राम के मूल में भी इसी विचार-धारा का सैलाब था! राजनीति के बहाव में बहनेवाले हिन्दीतर भाषियों के लिए लगा कि हिन्दी उनपर थोपकर उन्हें गुलाम बनाने की कोशिश की जा रही है। विरोधी पक्ष को अनिवार्य हिन्दी ने बल दे दिया और शासक भी अपनी बात पर अड़े रहे। फलस्वरूप तमिल-नाडु के स्कूलों से हिन्दी ही नहीं, संस्कृत भी चली गयी।

अन्यथा न ली जाए तो मैं कहूँगा कि हिन्दीतर भाषियों के मन में यह वहम घर कर गया कि सभी नौकरियाँ हिन्दीवालों के हाथों में चली जाएँ तो क्या हो? सच पूछिये तो पीछे चलकर राजाजी भी विरोधी बन गये। पर ऐसे विरोधी कि संपर्क-भाषा के रूप में उसके समर्थक थे और राजभाषा के रूप में विरोधी थे। इसका अधिकांश श्रेय (?) हिन्दीवालों की जल्दबाज़ी को ही जाना चाहिए।

तमिलनाडु खुल्लम खुल्ला विरोध करता है और अन्य राज्य छुपे रूप से! सच ही तमिलनाडु का यह विरोध विरोध नहीं है। रबर की गेंद को जितने ज़ोर से दीवार पर दे मारते हैं, उतने ही ज़ोर से—नहीं, नहीं—दुगुने-तिगुने वेग से वह वापस आती है। विरोध के बीच तमिलनाडु में जो हिन्दी पनपती है, वही टिकाऊ हो सकती है। कोयम्बत्तूर जेल में सज़ा भुगतनेवाले कुछ कैदी पिछले अगस्त की हिन्दी परीक्षा देने पुलिस की सुरक्षा में आये थे—हाल में अखबारों में छपी यह खबर मेरी बात की पुष्टि ही तो करती है!

कुछ महीनों पहले एक दिन तमिलनाडु के मुख्य मंत्री श्री कलैञर मु करुणा-निधि से मुलाक़ात होने पर मैंने पूछा, "जिस हिन्दी का आप विरोध करते हैं, उसके बारे में आपके क्या विचार हैं?"

हाज़िरजवाबी के लिए मशहूर उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, "किसने कहा कि मैं हिन्दी का विरोध करता हूँ? हिन्दी भी भारत माँ की भाषा-पुत्री है। रिश्ते में तमिल की बहिन है। उसके प्रति मेरे विचार ऊँचे हैं। मैं इतना ही चाहता हूँ कि कोई भाषा किसी दूसरी भाषा पर अपना आधिपत्य जमा न ले! भारत में जितनी भी भाषायें हैं, वे एक के साथ एक होड़ लगाकर विकास करें और अपने-अपने राज्य की राजभाषा बनें। हिन्दी का क्षेत्र तो विस्तृत है। अपने राज्यों में वह राजभाषा बने तो यहाँ कौन इनकार करता है?"

"समूचे भारत की कड़ी मिलाने के लिए आप एक आम भाषा की आवश्यकता महसूस करते हैं कि नहीं?"

"हाँ, करता हूँ! अंग्रेज़ी संपर्क भाषा का काम करे तो क्या हानि है?"

"कुछ नहीं! फिर भी भारत की ही अपनी भाषा वह काम करे तो अच्छा रहेगा न?"

"भारतीयता का ढोल पीटनेवाले बहुत-से लोग अनेक बातों में अंग्रेज़ी की नकल उतारते हुए नहीं हिचकते! ऐसी हालत में अंग्रेज़ी को संपर्क भाषा मानते हुए क्यों हिचकें? उससे देश का महत्व घट जाएगा क्या?"

" त्रिभाषासूत्र को अपनाने में क्या हानि है? आप द्विभाषासूत्र पर जोर क्यों देते हैं? "

" जहाँ देखिये, समान अधिकार की माँग जोरों पर है। त्रिभाषासूत्र से किसीपर ज्यादा और किसीपर कम जोर पड़ेगा। मान लीजिये कि हम त्रिभाषा-सूत्र में हिन्दी को स्थान देते हैं तो हमपर एक भाषा का भार जरूर पड़ता है। उत्तरवालों को हम बेज़रूरी मजबूर क्यों करें कि वे तीसरी कोई भाषा सीखें? उल्टे, मान लिया जाए कि द्विभाषा सूत्र ठीक है तो मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा के अलावा अंग्रेजी सीखना काफ़ी है। उससे भारत में ही नहीं भारत से बाहर के राष्ट्रों से भी संपर्क स्थापित किया जा सकता है। मनुष्य शक्ति इतने कम मूल्य की नहीं है कि दो-दो या तीन-तीन भाषाएँ सीखकर अपना समय व्यर्थ गँवाये! मैं तो सामान्य जनता की बात कह रहा हूँ। भाषाविद् जो हैं, वे तीन ही क्यों, जितनी भाषायें चाहें, सीख सकते हैं। नौकरीपेशा लोग सीखेंगे, जरूरतमंद लोग सीखेंगे; इसे सीखने में हमें कौन-सी आपत्ति हो सकती है? "

" आप जानते हैं कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा हिन्दी के अतिरिक्त दक्षिण की भाषायें भी सीखने-सिखाने में हाथ बँटाती है? "

" अच्छा! यह तो बड़ी खुशी की बात है। सच मानिये, मुझे हिन्दी के प्रति कतई विरोध नहीं है। उसे थोपना छोड़कर, राजनीति के चंगुल से छुड़ाकर साहित्य के क्षेत्र में ले जाया जाए और आदान-प्रदान द्वारा एकात्म भावना की कोशिश की जाए। यह काम कम हो रहा है; इसे आगे बढ़ाया जाए! "

इन विचारों को लेकर तमिल के सुप्रसिद्ध कवि श्री कण्णदासन के पास गया तो वे बोले, " एक बात में मैं श्री करुणानिधि से सहमत हूँ। हमारे भारत के लोग अंग्रेजों की देखा-देखी नकल उतारते हैं और अंग्रेज़ों के रहन-सहन और तौर-तरीके को अपनाने का मोह पालते हैं। पर एक बात ध्यान रखिये, दक्षिण के लोगों का कदम उत्तर के लोगों के मुकाबले में धीमा ही उठा है। अंग्रेजी का भी व्यामोह पालकर स्वतन्त्र भारत को परतंत्रता की चादर क्यों ओढ़े? श्री करुणानिधि की दलील में ही मैं उत्तर देता हूँ, सामान्य जनता को अंग्रेज़ी की क्या ज़रूरत है? भारत के अधिकांश लोग हिन्दी बोलते हैं। सामान्य जनता को अगर संपर्क किसीसे होना है तो उन्हीं सामान्य लोगों से होना है। द्विभाषा-सूत्र में अंग्रेज़ी हटाकर हिन्दी रख दी जाए तो क्या हर्ज है? ...हाँ, हर्ज है! हिन्दीवालों के लिए द्विभाषा-सूत्र एक भाषा-सूत्र हो जाएगा। अन्य भाषियों के लिए द्विभाषा-सूत्र भारी पड़ेगा।

ाविज्ञान-तकनीकी आदि क्षेत्र में तो अंग्रेजी के बिना काम नहीं चल सकता। भारत उसमें भी उन्नति करना चाहे, तो उसे झक मारकर अंग्रेजी सीखनी ही पड़ेगी। अतः समूचे भारत के लिए त्रिभाषा-सूत्र जारी करें तो समान अधिकार चाहनेवालों पर समान भार पड़ेगा। फिर किसीको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हाँ, इसका पालन बड़ी पाबन्दी से होना चाहिए!"

तमिलनाडु राज्य के भूतपूर्व मुख्य मंत्री और अनुभवी बुजुर्ग नेता श्री भक्तवत्सलम तो इस त्रिभाषा-सूत्र के कर्णधारों में हैं।

ये तीनों नेता एक बात में एकमत हैं कि भाषायें तो साधन मात्र हैं, भावनायें ही प्रधान हैं। भावात्मक एकता लाने के लिए इन भाषाओं को निकट लाना चाहिए; वह साहित्यिक आदान-प्रदान से ही संभव है। भाषाओं को निकट लाने के विषय में राजनीतिज्ञ दूर रहें और साहित्यक निकट आवें।

इस दिशा में उत्तर की दृष्टि में तथाकथित हिन्दी विरोधी तमिलनाडु ने जो तुल्य कदम उठाया है, उतना हिन्दी या अन्य उत्तरी भाषाओं ने कहाँ उठाता है? तमिल ने जितना आयात किया है, उतना निर्यात नहीं हुआ है। इस एकतरफ़ा नीति का मुख्य कारण उत्तरवालों का किसी दक्षिणी भाषा को न सीखना ही है। दूसरा, हिन्दीतर हिन्दी लेखकों को एक आँख में मक्खन और दूसरी में चूना डालकर उपेक्षाभरी दृष्टि से देखना भी है!

साहित्य का आदान-प्रदान ऐसा हो कि हृदय हृदय को पहचाने और गलत धारणा-दुर्भावना को दूर कर दे।

हिन्द की छटा

पी. बी. श्रीनिवास

[बहुभाषाविद्, संगीत-साहित्य सेवी, सुमधुर स्वर के धनी श्रीनिवास का नाम-यश फ़िल्मी पार्श्वगायक के रूप में बहुत चमक रहा है। हिन्दी में सभा की रा. भा. विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण इस शायर व गायक की धाक कवि-सम्मेलनों में भी खूब जम जाती है। स्वर और बोल के क्षेत्र में आपने नये प्रयोग प्रस्तुत किये हैं, जो स्वरमाला, गायत्रीछंद, श्रीनिवासवृत्तम् आदि के नाम से प्रशस्त हुए हैं। हिन्दी के प्रति अपने रागात्मक लगाव को इस कवि-गायक ने सुस्वर शब्द दिये हैं, जो उनके मोहक तराने में सुनते ही बनते हैं।]

अनुपम भाषा है हिन्दी
बढ़ती आशा है हिन्दी!

स्वर की सुविधा है हिन्दी
गीतों की सुधा है हिन्दी
कवि की कविता है हिन्दी
रस की सरिता है हिन्दी!

जीवन की सुषमा है हिन्दी
यौवन-प्रतिमा है हिन्दी
गुण की सफलता है हिन्दी
मन की सरलता है हिन्दी!

रीत की प्रथा है हिन्दी
प्रीत की कथा है हिन्दी
छंद की घटा है हिन्दी
हिन्द की छटा है हिन्दी!

विश्व हिन्दी सम्मेलन—आन्ध्र प्रदेश

एम. वी. कृष्णाराव

(शिक्षा मंत्री, आन्ध्र प्रदेश ; कार्याध्यक्ष, विश्व तेलुगु सम्मेलन ; अध्यक्ष, विश्व हिन्दी सम्मेलन, आन्ध्र प्रदेश शाखा)

विश्व हिन्दी सम्मेलन के शुभ अवसर पर आन्ध्र प्रदेश की सरकार और यहाँ की चार करोड जनता की ओर से उन सब को जो राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थक हैं, प्रेमी हैं और इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं—शुभ-कामनाएँ पहुँचाता हूँ।

आन्ध्र प्रदेश ने आरंभ से महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के समर में भाग ही नहीं लिया, अपितु महान् त्याग भी किया। बापूजी के रचनात्मक कार्यक्रमों को भी आन्ध्र प्रदेश ने आचरण में लाने का भरसक प्रयत्न किया है। बापूजी ने जब देश की एकता के लिए राष्ट्रभाषा के प्रचार का संदेश दिया तब आन्ध्र प्रदेश ने उसे सहर्ष स्वीकार किया और हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए तन-मन-धन से कार्य किया। प्रसन्नता की बात है कि उदार, त्यागी और देशभक्त आन्ध्र जनता ने कभी भी राष्ट्रभाषा का विरोध नहीं किया। आन्ध्र प्रदेश के सभी नेताओं ने इस राष्ट्रभारती का हृदय से समर्थन किया है।

आन्ध्र प्रदेश सरकार की नीति शुरू से भाषा के संबंध में उदार रही है। यहाँ त्रिभाषासूत्र को ईमानदारी से अमल में लाया गया है। आन्ध्र प्रदेश में रहनेवाले अल्पसंख्यकों की भाषाओं को—जैसे उर्दू, मराठी, कन्नड और तमिल आदि आन्ध्र प्रदेश सरकार की ओर से संपूर्ण सहयोग दिया जा रहा है। इस उदार नीति को भारत के सभी प्रांत अपनाएँ तो हमारा विश्वास है कि भाषासंबंधी झगड़े समाप्त हो जाएँगे।

आन्ध्र प्रदेश में पाँचवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाती है। हर साल हिन्दी के पंडितों के वेतन के लिए डेढ़ करोड़ रुपये खर्च किये जा रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश में 3,262 माध्यमिक पाठशालाएँ हैं और 5,764 हिन्दी अध्यापक इन पाठशालाओं में हिन्दी अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। लगभग 10,65,092 विद्यार्थी माध्यमिक कक्षाओं में हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

हिन्दी अध्यापकों के लिए आन्ध्र प्रदेश सरकार की ओर से तीन प्रशिक्षण महाविद्यालय चलाये जा रहे हैं जहाँ हर साल लगभग 200 (दो सौ) प्रशिक्षित अध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

आन्ध्र प्रदेश मूलत: तेलुगु भाषी प्रांत है। फिर भी, यहाँ 30 हिन्दी माध्यम के हाई स्कूल हैं। हैदराबाद में हिन्दी माध्यम का डिग्री कालेज भी है। राज्य सरकार उन्हें पूर्ण अनुदान देकर प्रोत्साहित कर रही है।

इसके अलावा आन्ध्र प्रदेश के इक्कीस जिलों में 18 ऐसे हिन्दी विद्यालय हैं जिन्हें सरकार की मान्यता और अनुदान प्राप्त है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र की ओर से आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी का काफ़ी प्रचार हो रहा है। उसकी ओर से तीन हिन्दी प्रशिक्षण महाविद्यालय, 30 हिन्दी विशारद विद्यालय, दो टंकण विद्यालय, 250 हिन्दी शिक्षण केन्द्र चलाये जा रहे हैं। हर साल इस संस्था की परीक्षाओं में करीब 50,000 (पचास हजार) तक परीक्षार्थी बैठ रहे हैं।

हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा की ओर से भी हिन्दी का प्रचार किया जा रहा है। परीक्षाएँ चलायी जा रही हैं। हर साल इस सभा की परीक्षाओं में हजारों की संख्या में परीक्षार्थी बैठते हैं। इन दोनों संस्थाओं को आन्ध्र प्रदेश सरकार की ओर से अनुदान दिया जाता है।

यहाँ प्रथम एवं द्वितीय भाषा हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण हुआ है। राज्य सरकार ही इनका प्रकाशन करती है।

राज्य के शिक्षा निदेशालय में एक उपलोकशिक्षा संचालक (प्राच्य भाषाएँ) हैं जो हिन्दी का कार्य संभालते हैं। हिन्दी विशेषाधिकारी भी हैं, जो हिन्दी के विकास और प्रचार का कार्य देखते हैं। इस प्रकार आन्ध्र प्रदेश सरकार क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के साथ-साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में अपना संपूर्ण सहयोग दे रही है। भारत के हर प्रांत में राष्ट्रवाणी की जो अनन्य आराधना हो रही है, उसमें आन्ध्र प्रदेश की सरकार भी अपना यत्किंचित योग देकर अपने राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को निभा रही है।

प्रसन्नता की बात है कि नागपुर में यह विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया गया है। आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र का प्रारंभ से मधुर संबंध रहा है। समूचे महाराष्ट्र प्रांत में लाखों की संख्या में तेलुगु भाषी रहते हैं। महाराष्ट्र प्रांत में रहकर आन्ध्र प्रदेश के कितने ही किसान खेतीबाड़ी कर रहे हैं। निजाम सरकार के समय मराठवाडा हैदराबाद में शामिल था। इसलिए यह संबंध और

रहा है। आन्ध्र प्रदेश में महाराष्ट्र के लोग लाखों की संख्या में हैं। उन सबका सहयोग आन्ध्र प्रदेश सरकार को मिल रहा है। आन्ध्र प्रदेश सरकार का भी सहयोग उन्हें मिल रहा है। ये दोनों प्रांत पडोसी हैं। महाराष्ट्र प्रांत में विश्व हिन्दी सम्मेलन 1975 जनवरी में हुआ है। आन्ध्र प्रदेश में 1975 अप्रैल में विश्व तेलुगु सम्मेलन हो रहा है। दोनों सम्मेलनों के लक्ष्यों में समानता है। अतः मैं आन्ध्र प्रदेश सरकार और चार करोड जनता की ओर से फिर से और एक बार विश्व हिन्दी सम्मेलन के कर्ता-धर्ताओं को साधुवाद पहुँचा रहा हूँ।

आत्मीय अभिनंदन

विश्व हिन्दी सम्मेलन की संस्मरणीय उपलब्धियों में एक का विशिष्ट महत्व था—हिन्दीतर भाषी वरिष्ठ-विख्यात हिन्दी सेवियों का सम्मान। उनमें दक्षिण भारत के हिन्दी सेवियों को इधर इसलिए विशेष रूप से साधुवाद एवं बधाइयाँ देते हैं कि ये चारों महानुभाव हमारी सभा के कार्य एवं विकास से आत्मीय सहयोगी स्तर पर संबद्ध थे और अब भी हैं हितैषी समर्थक। ये हैं—

दक्षिण के हिन्दी प्रचार कार्य के युग-निर्माता श्री मोटूरि सत्यनारायण (तेलुगु भाषी), वरिष्ठ हिन्दी-सेवी श्री सिद्धनाथ पंत (कन्नड भाषी), साहित्यिक आदान-प्रदान के प्रशस्त लेखक श्री रा. वीलिनाथन (तमिल-भाषी), भाषा एवं साहित्य के सुप्रसिद्ध सेवी डा० विश्वनाथ ऐयर (मलयालम भाषी)।

इन सम्मानित महानुभावों को सभा की ओर से और समस्त हिन्दी प्रचारकों की ओर से हमारे आत्मीय अभिनंदन !

—सम्पादक

राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्याएँ

● प्रेमचन्द

[यह भाषण-अंश उस महान राष्ट्रवादी व तपस्वी साहित्यकार का है, जिसके जनवादी साहित्य से हिन्दी पाठक बखूबी परिचित हैं। यह भाषण कई मुद्दों से महत्वपूर्ण है। एक तो यह हमारी सभा के चौथे वार्षिक पदवीदान-समारंभ में (29 दिसंबर, 1934) प्रेमचंद के द्वारा दिया गया दीक्षांत भाषण है; दूसरा, इसी मंच पर सभा से, हिन्दी प्रचार कार्य से संबद्ध सभी कार्यकर्ताओं, प्रचारकों को संबोधित करते हुए दिया गया भाषण था; साथ ही, तत्कालीन राष्ट्रीय क्षोभ एवं राष्ट्रीय माँग पर व्यक्त किया गया उद्गार भी था। आज के संदर्भ में भी प्रेमचन्दजी के यह विचार उतने ही सार्थक और उद्बोधक साबित होते हैं, जितने 40 साल पहले हुए थे।]

प्यारे मित्रो,

आपने मुझे जो यह सम्मान दिया है, उसके लिए मैं आपको सौ ज़बानों से धन्यवाद देना चाहता हूँ; क्योंकि आपने मुझे वह चीज़ दी है, जिसके मैं बिलकुल अयोग्य हूँ। न मैंने हिन्दी-साहित्य पढ़ा है, न उसका इतिहास पढ़ा है, न उसके विकासक्रम के बारे में ही कुछ जानता हूँ। ऐसा आदमी इतना मान पाकर फूला न समाये, तो वह आदमी नहीं है। नेवता पाकर मैंने उसे तुरन्त स्वीकार किया। लोगों में 'मन भाये और मुँड़िया हिलाये' की जो आदत होती है, वह खतरा मैं न लेना चाहता था। यह मेरी ढिठाई है कि मैं यहाँ वह काम करने खड़ा हुआ हूँ, जिसकी मुझमें लियाकत नहीं है; लेकिन इस तरह की गंदुमनुमाई का मैं अकेला मुजरिम नहीं हूँ। मेरे भाई घर-घर में, गली-गली में मिलेंगे। आपको तो अपने नेवते की लाज रखनी है। मैं जो कुछ अनाप-शनाप बकूँ, उसकी खूब तारीफ़ कीजिये, उसमें जो अर्थ न हो वह पैदा कीजिये, उसमें अध्यात्म के और साहित्य के तत्व खोज निकालिए—जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ!

आपकी सभा ने पन्द्रह-सोलह साल के मुख्तसर-से समय में जो काम कर दिखलाया है, उसपर मैं आपको बधाई देता हूँ, खासकर इसलिए कि आपने अपनी

ही कोशिशों से यह नतीजा हासिल किया है। सरकारी इमदाद का मुँह नहीं ताका। यह आपके हौसलों की बुलन्दी की एक मिसाल है। अगर मैं यह कहूँ कि आप भारत के दिमाग हैं, तो वह मुबालगा न होगा। किसी अन्य प्रान्त में इतना अच्छा संगठन हो सकता है और इतने अच्छे कार्यकर्ता मिल सकते हैं, इसमें मुझे सन्देह है। जिन दिमागों ने अंग्रेज़ी राज्य की जड़ जमायी, जिन्होंने अंग्रेज़ी भाषा का सिक्का जमाया, जो अंग्रेज़ी आचार-विचार में भारत में अग्रगण्य थे और हैं; वे लोग राष्ट्र-भाषा के उत्थान पर कमर बाँध लें, तो क्या कुछ नहीं कर सकते? और यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है कि जिन दिमागों ने एक दिन विदेशी भाषा में निपुण होना अपना ध्येय बनाया था, वे आज राष्ट्रभाषा का उद्धार करने पर कमर कसे नज़र आते हैं और जहाँ से मानसिक पराधीनता की लहर उठी थी, वहाँ से राष्ट्रीयता की तरंगें उठ रही हैं। जिन लोगों ने अंग्रेज़ी लिखने और बोलने में अंग्रेज़ों को भी मात कर दिया, यहाँ तक कि आज जहाँ कहीं देखिये अँग्रेज़ी पत्रों के सम्पादक इसी प्रान्त के विद्वान मिलेंगे, वे अगर चाहें तो हिन्दी बोलने और लिखने में हिन्दीवालों को भी मात कर सकते हैं। और गत वर्ष यात्रीदल के नेताओं के भाषण सुनकर मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि वह क्रिया शुरू हो गयी है। 'हिन्दी प्रचारक' में अधिकांश लेख आप लोगों ही के लिखे होते हैं और उनकी मंजी हुई भाषा और सफ़ाई और प्रवाह पर हममें से बहुतों को रश्क आता है। और यह तब है जब राष्ट्र-भाषा प्रेम अभी दिलों के ऊपरी भाग तक ही पहुँचा है, और आज भी यह प्रान्त अंग्रेज़ी भाषा के प्रभुत्व से मुक्त होना नहीं चाहता। जब यह प्रेम दिलों में व्याप्त हो जायगा, उस वक्त उसकी गति कितनी तेज़ होगी, इसका कौन अनुमान कर सकता है? हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व है।...

लेकिन मित्रो, विदेशी भाषा सीखकर अपने ग़रीब भाइयों पर रोब जमाने के दिन बड़ी तेजी से बिदा होते जा रहे हैं। प्रतिभा का और बुद्धिबल का जो दुरुपयोग हम सदियों से करते आये हैं, जिसके बल पर हमने अपनी एक अमीरशाही स्थापित कर ली है, और अपने को साधारण जनता से अलग कर लिया है, वह अवस्था अब बदलती जा रही है। बुद्धिबल ईश्वर की देन है, और उसका धर्म प्रजा पर धौंस जमाना नहीं, उसका खून चूसना नहीं, उसकी सेवा करना है।...

मानो परिस्थिति ऐसी है कि बिना अंग्रेज़ी भाषा की उपासना किये काम नहीं चल सकता। लेकिन अब तो इतने दिनों के तजुरबे के बाद मालूम हो जाना चाहिए कि इस नाव पर बैठकर हम पार नहीं लग सकते, फिर हम क्यों आज भी उसीसे

चिमटे हुए हैं? अभी गत वर्ष एक इंटरयूनिवर्सिटी कमीशन बैठा था कि शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर विचार करे। उसमें एक प्रस्ताव यह भी था कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी की जगह पर मातृभाषा क्यों न रखी जाय? बहुमत ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, क्यों? इसलिए कि अंग्रेज़ी माध्यम के बगैर अंग्रेज़ी में हमारे बच्चे कच्चे रह जायेंगे और अच्छी अंग्रेज़ी लिखने और बोलने में समर्थ न होंगे। मगर इन डेढ़ सौ वर्षों की घोर तपस्या के बाद आज तक भारत ने एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखा, जिसका इंगलैण्ड में उतना भी मान होता, जितना एक तीसरे दर्जे के अंग्रेज़ी लेखक का होता है। याद नहीं, पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने कहा था, या सर तेजबहादुर सप्रू ने, कि पचास साल तक अंग्रेज़ी से सिर मारने के बाद आज भी उन्हें अंग्रेज़ी में बोलते वक्त यह संशय होता रहता है कि कहीं उनसे गलती तो नहीं हो गयी! हम आँखें फोड़-फोड़कर और कमर तोड़-तोड़कर और वक्त जला-जलाकर अंग्रेज़ी का अभ्यास करते हैं, उसके मुहावरे रटते हैं; लेकिन बड़े से बड़े भारती-साधक की रचना विद्यार्थियों की स्कूली एक्सरसाइज़ से ज्यादा महत्व नहीं रखती। शिक्षा का अंग्रेज़ी माध्यम ज़रूरी है, यह हमारे विद्वानों की राय है। जापान, चीन और ईरान में तो शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी नहीं है। फिर भी वे सभ्यता की हरेक बात में हमसे कोसों आगे हैं, लेकिन अंग्रेज़ी माध्यम के बगैर हमारी नाव डूब जायगी!

मित्रो, शायद मैं अपने विषय से बहक गया हूँ; लेकिन मेरा आशय केवल यह है कि हमें मालूम हो जाय, हमारे सामने कितना महान् काम है। यह समझ लीजिये कि जिस दिन आप अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जाएँगे। मुझे याद नहीं आता कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त कर सका हो। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है; नदी, पहाड़, समुद्र और राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बन्धन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रहती है, और उसका शीराजा बिखरने नहीं देती। जिस वक्त अंग्रेज़ आये, भारत की राष्ट्रभावना लुप्त हो चुकी थी। यों कहिये कि उसमें राजनैतिक चेतना की गंध तक न रह गयी थी। अंग्रेज़ी राज ने आकर आपको एक राष्ट्र बना दिया। आज अंग्रेज़ी राज बिदा हो जाय—और एक-न-एक दिन तो यह होना ही है—तो फिर आपका यह राष्ट्र कहाँ जायगा? क्या यह बहुत संभव नहीं है कि एक-एक प्रान्त एक-एक राज्य हो जाय और फिर वही विच्छेद शुरू हो जाय? वर्तमान दशा में तो हमारी कौमी चेतना को सजग और सजीव रखने के लिए अंग्रेज़ी राज को अमर रहना चाहिए। अगर हम एक राष्ट्र बनकर अपने स्वराज्य के लिए उद्योग करना चाहते हैं, तो हमें राष्ट्रभाषा का आश्रय

... होगी और उसी राष्ट्र-भाषा के बख्तर से हम अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकेंगे। आप उसी राष्ट्र-भाषा के भिक्षु हैं, और इस नाते आप राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं। सोचिये, आप कितना महान् काम करने जा रहे हैं। आप कानूनी बाल की खाल निकालनेवाले वकील नहीं बना रहे हैं, आप शासन-मिल के मज़दूर नहीं बना रहे हैं, आप एक बिखरी हुई कौम को मिला रहे हैं, आप हमारे बन्धुत्व की सीमाओं को फैला रहे हैं, भूले हुए भाइयों को गले मिला रहे हैं। इस काम की पवित्रता और गौरव को देखते हुए, कोई ऐसा कष्ट नहीं है, जिसका आप स्वागत न कर सकें। यह धन का मार्ग नहीं है, संभव है कि कीर्ति का मार्ग भी न हो; लेकिन आपके आत्मिक संतोष के लिए इससे बेहतर काम नहीं हो सकता। यही आपके बलिदान का मूल्य है। मुझे आशा है, यह आदर्श हमेशा आपके सामने रहेगा। आदर्श का महत्व आप खूब समझते हैं। वह हमारे रुकते हुए कदम को आगे बढ़ाता है, हमारे दिलों से संशय और सन्देह की छाया को मिटाता है और कठिनाइयों में हमें साहस देता है।

राष्ट्र-भाषा से हमारा क्या आशय है, इसके विषय में भी मैं आपसे दो शब्द कहूँगा। इसे हिन्दी कहिए, हिन्दुस्तानी कहिए, या उर्दू कहिए, चीज़ एक है। नाम से हमारी कोई बहस नहीं। ईश्वर भी वही है, जो खुदा है, और राष्ट्र-भाषा में दोनों के लिए समान रूप से सम्मान का स्थान मिलना चाहिए। अगर हमारे देश में ऐसे लोगों की काफी तादाद निकल आये तो, जो ईश्वर को 'गाड' कहते हैं, तो राष्ट्र-भाषा उनका भी स्वागत करेगी। जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बनती रहती है।...

अब हमें यह विचार करना है कि राष्ट्रभाषा का प्रचार कैसे बढ़े। अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि हमारे नेताओं ने इस तरफ़ मुजरिमाना गफ़लत दिखायी है। वे अभी तक इसी भ्रम में पड़े हुए हैं कि यह कोई बहुत छोटा-मोटा विषय है, जो छोटे-मोटे आदमियों के करने का है, और उनके जैसे बड़े-बड़े आदमियों को इतनी कहाँ फुरसत कि वह झँझट में पड़ें। उन्होंने अभी तक इस काम का महत्व नहीं समझा, नहीं तो शायद यह उनके प्रोग्राम की पहली पाँति में होता। मेरे विचार में जब तक राष्ट्र में इतना संगठन, इतना ऐक्य, इतना एकात्मपन न होगा कि वह एक भाषा में बात कर सके, तब तक उसमें यह शक्ति भी न होगी कि स्वराज्य प्राप्त कर सके। गैरमुमकिन है। जो राष्ट्र के अगुआ हैं, जो एलेक्शनों में खड़े होते हैं और जीत पाते हैं, उनसे मैं बड़े अदब के साथ गुजारिश करूँगा कि हज़रत इस तरह के एक सौ एलेक्शन आयेंगे और निकल जायेंगे, आप कभी हारेंगे, कभी जीतेंगे; लेकिन

स्वराज्य आपसे उतनी ही दूर रहेगा, जितनी दूर स्वर्ग है। अंग्रेज़ी में आप अपने मस्तिष्क का गूदा निकालकर रख दें, लेकिन आपकी आवाज़ में राष्ट्र का बल न होने के कारण कोई आपकी उतनी परवाह भी न करेगा, जितनी बच्चों के रोने की करता है। बच्चों के रोने पर खिलौने और मिठाइयाँ मिलती हैं। वह शायद आपको भी मिल जावे, जिसमें आपकी चिल्लपों से माता-पिता के काम में विघ्न न पड़े। इस काम को तुच्छ न समझिये। यही बुनियाद है, आपका अच्छे से अच्छा गारा, मसाला, सीमेंट और बड़ी से बड़ी निर्माण-योग्यता जब तक यहाँ खर्च न होगी, आपकी इमारत न बनेगी। घरौंदा शायद बन जाय, जो एक हवा के झोंके में उड़ जायगा।...

हमारा काम यही है कि जनता में राष्ट्रचेतना को इतना सजीव कर दें कि वह राष्ट्रहित के लिए छोटे-छोटे स्वार्थों को बलिदान करना सीखे। आपने इस काम का बीड़ा उठाया है, और मैं जानता हूँ आपने क्षणिक आवेश में आकर यह साहस नहीं किया है, बल्कि आपका इस मिशन में पूरा विश्वास है, और आप जानते हैं कि यह विश्वास कि हमारा पक्ष सत्य और न्याय का पक्ष है, आत्मा को कितना बलवान् बना देता है। समाज में हमेशा ऐसे लोगों की कसरत होती है, जो खाने-पीने, धन बटोरने और ज़िन्दगी के अन्य धँधों में लगे रहते हैं। यह समाज की देह है। उसके प्राण वह गिने-गिनाये मनुष्य हैं, जो उसकी रक्षा के लिए सदैव लड़ते रहते हैं—कभी अन्धविश्वास से, कभी मूर्खता से, कभी कुव्यवस्था से, कभी पराधीनता से। इन्हीं लड़ंतियों के साहस और बुद्धि पर समाज का आधार है। आप इन्हीं सिपाहियों में हैं। सिपाही लड़ता है, हारने-जीतने की उसे परवाह नहीं होती। उसके जीवन का ध्येय ही यह है कि वह बहुतों के लिए अपने को होम कर दे, आपको अपने सामने कठिनाइयों की फौजें खड़ी नज़र आयेंगी। बहुत सम्भव है, आपको उपेक्षा का शिकार होना पड़े। लोग आपको सनकी और पागल भी कह सकते हैं। कहने दीजिये। अगर आपका संकल्प सत्य है, तो आप में से हरेक एक-एक सेनानायक हो जायगा। आपका जीवन ऐसा होना चाहिए कि लोगों को आप में विश्वास और श्रद्धा हो। आप अपनी बिजली से दूसरों में भी बिजली भर दें, हर एक पन्थ की विजय उसके प्रचारकों के आदर्श जीवन पर ही निर्भर होती है। आयोग्य व्यक्तियों के हाथों में ऊँचे से ऊँचा उद्देश्य भी निन्द्य हो सकता है। मुझे विश्वास है, आप अपने को अयोग्य न बनने देंगे।

हिन्दी और आधुनिकता

आधुनिकता के लोगों ने अलग-अलग अनेक अर्थ किये हैं। मेरी दृष्टि में आधुनिकता एक अनगढ़ चीज़ है। वह एक सिद्ध स्थिति नहीं, एक प्रक्रिया है। संस्कारवान होने की क्रिया को ही मैं आधुनिकता मानता हूँ। जो संस्कारी हो चुका है और अब स्थिर है, वह मेरी दृष्टि में आधुनिक नहीं है।

आधुनिकता की दृष्टि से सबसे पहले मैं हिन्दी भाषा पर विचार करना चाहूँगा, क्योंकि यह आज का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। मेरी दृष्टि में हिन्दी सदा से आधुनिक रही है। सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सारा क्षेत्र हिन्दी का है चाहे आज उनके दोनों छोर देश से बाहर चले गये हैं। यह देश भाषाओं और संस्कृतियों के संगमों का देश है। हिन्दी उन संगमों से ही विकसित हुई है। अतः वह संगमों की भाषा है, विद्रोहों की भाषा है। इसी भाषा ने सारे देश में भारतीय संस्कृति को बनाये रखा, भारतीयता के बोध को जीवित रखा। युद्ध होते रहे, फिर भी भारतीय संस्कृति नाम की एक चीज़ आगे बढ़ती रही। हिन्दी उसकी भाषा रही। हिन्दी प्रदेश से प्रवृत्तियाँ उठीं और सारे देश में फैलीं। दूसरे भाषा-क्षेत्रों में भी जो प्रसारणीय हुआ है वह हिन्दी में आया और हिन्दी से छनकर वितरित हुआ। किसी दूसरी भाषा ने यह काम नहीं किया। हिन्दी अब भी यह कार्य कर रही है। 19वीं सदी से पहले हम हिन्दी के माध्यम से ही भारतीयता को पहचानते थे। आज़ादी की आकांक्षा इसी भाषा के माध्यम से विकसित हुई--बाँगला में उसके उदय के बावजूद। राजधानी के रूप में कलकत्ता की प्रतिष्ठा के कारण स्थिति थोड़ा बदली। पश्चिम के प्रभाव राजधानी कलकत्ता और मुख्य सागर-व्यापार-केन्द्र बंबई से आते रहने के कारण भारतीय सांस्कृतिक चेतना का एक उत्स मध्य देश न रहकर दिल्ली-कलकत्ता-बंबई का त्रिकोण बना। पर हिन्दी फिर राष्ट्रीयता के स्वर की मुख्य वाहिका बनी, उठते हुए देशव्यापी आन्दोलन की भाषा बनी। यह भाषा खड़ी बोली थी, अर्थात् संस्कारी बनने के लिए निरंतर सचेष्ट हिन्दी। (अच्छी संस्कारी हिन्दी बोलनेवाले पहले भी कम थे और आज भी कम हैं।) इस प्रकार हिन्दी असमान संस्कारों और पनपते विद्रोहों की भाषा रही है। यह किसी क्षेत्र की

साम्प्रदायिक भाषा नहीं रही। कभी आगरा-मथुरा को, कभी कलकत्ता-बंबई को और कभी दिल्ली को केन्द्र बनाकर वह सारे देश के संस्कारों और परिवर्तनों का नेतृत्व करती रही है। आधुनिकता का संस्कार सदा इसके साथ रहा है।

आधुनिकता के साथ हिन्दी को जोड़े रखने के लिए काशी ने उसके उत्तरदायित्व को जब पहचाना, तो वहाँ से उसका नये सिरे से उदय हुआ। खड़ी बोली हिन्दी काशी की भाषा नहीं थी, पर काशी में भारतीयता की जो चेतना जाग रही थी उसकी वाहिका यही हो सकती थी। इसीसे आधुनिकता की नयी चेतना उसमें आयी। अब भी वह उस चेतना को वहन कर रही है। मैं इसी अर्थ में उसे आधुनिकता का गौरव और राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा देना चाहता हूँ।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए कानून का आश्रय मैं ज़रूरी नहीं मानता। हिन्दी कभी क़ानून से आगे नहीं बढ़ेगी। इसमें आधुनिकता और भारतीयता के जो संस्कार हैं, वे ही इसे आगे बढ़ायेंगे। आज राष्ट्रभाषा पर ज़ोर देने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी ज़रूरत एक लिपि पर ज़ोर देने की है। अगर आज देवनागरी लिपि को सारा देश स्वीकार कर ले, तो हिन्दी की व्यापकता स्वतः स्वीकार कर ली जायेगी। हिन्दी का यह परंपरागत उत्तरदायित्व है कि वह जिस अर्थ में आधुनिक थी, उसी अर्थ में आधुनिक बनी रहे। उसे निरन्तर संस्कारवान होते रहने की अपनी प्रवृत्ति को नहीं त्यागना है। यदि वह ऐसा करती रही तो कोई भी शक्ति उसका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकती।

(साभार : 'लिखि कागद कोरे' राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6)

गांधी भारत के लिए अनिवार्य है

श्रीमन्नारायण

[गांधी पुण्यतिथि की श्रद्धेय स्मृति के साथ इस उपादेय नये स्तंभ का प्रवर्तन एक विशुद्ध गांधीवादी मनीषी के प्रेरक, युगापेक्षी लेख के साथ करते हैं। आगे से इस स्तंभ में पाठक बंधुओं को ऐसी विचार-वीथी सैर करने को मिलेगी, जिसका महत्व अपने समय का समानांतर होने के बावजूद नितनूतन संप्रेषण के कारण भी बड़ा हो।]

गांधी शताब्दी वर्ष को पाँच वर्ष हो गये। हमने इस 2 अक्तूबर को फिर ंधी जयन्ती मनायी। शायद यह हमारा राष्ट्रीय अभ्यास हो गया है कि हम तों और नेताओं का सम्मान करें, उनकी पूजा करें और उनके आदर्शों को मज़े में ल जायें। इन दिनों यह पूछने का लगभग एक चलन ही हो गया है कि हमारी ाज की परिस्थिति में गांधीजी के आदर्श प्रासंगिक बने हैं अथवा नहीं। मेरी मझ में यह प्रश्न बिलकुल फ़ाजिल है; क्योंकि गांधीजी ने कुछ शाश्वत सिद्धांतों ा प्रतिपादन किया। वे उनके जीवन-काल में तो प्रासंगिक थे ही, आज भी ासंगिक हैं; और भविष्य में भी सदियों तक प्रासंगिक बने रहेंगे।

आज भारत के सामने विभिन्न प्रकार की जो समस्याएँ हैं उनके बारे में जब ोचता हूँ तो मुझे लगता है कि हमारी कठिनाइयों को हल करने का, टिक सकनेवाला ाधार केवल गांधी सिद्धांतों के अनुसार चलने पर ही हो सकता है। जितना ाधिक सोचता हूँ, यह विचार उतना अधिक दृढ़ होता चला जाता है।

अभी पिछले वर्ष ही प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री डा० गुन्नार मिरडल ने ारतीय योजना से सम्बद्ध व्यक्तियों को इस बात की याद दिलायी थी, "हमारी ोजनाओं के असफल होने का मुख्य कारण यह है कि योजना बनानेवालों ने ाष्ट्रपिता के सिद्धांतों की गहराई को जितना महसूस करना चाहिए था, उतना हसूस नहीं किया।" आजकल विदेशों में गांधी विचार को लेकर खासी बड़ी संख्या पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, जिनसे मालूम होता है कि वे रोज़ ब रोज़ गांधी

विचार की सार्थकता को अधिकाधिक प्रासंगिक समझते जा रहे हैं और ऐसा लगता है कि हम अपने ही इस महान् पुरुष को पश्चिम की मार्फ़त समझने का हास्यास्पद प्रयत्न कर रहे हैं।

हमारी आज की समस्याएँ क्या हैं और गांधीजी ने उन समस्याओं के कौन-से हल सुझाये थे? सबसे पहली बात तो यह है कि महात्माजी बार-बार हम लोगों को इस बात की याद दिलाते रहे कि साधन साध्य के बराबर महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने जोर देकर कहा, "हम अपने लक्ष्य की पूर्ति साधनों की शुद्धता के अनुपात में ही कर पाते हैं। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसका अपवाद नहीं होता।" उन्होंने यह भी कहा, "समाजवाद स्फटिक की तरह स्वच्छ और पवित्र है, इसलिए उसे स्फटिक की तरह स्वच्छ साधनों के द्वारा ही पाया जा सकता है। अशुद्ध साधनों का परिणाम अशुद्ध ही रहता है।" हम लोगों में से जो समाजवाद के विषय में उच्च स्वर से बातचीत करते हैं, उन्हें इस सम्यक वचन पर ध्यान देना चाहिए। साधनों की शुद्धि के विषय में गांधीजी के आग्रह को कोई हवाई ख्याल नहीं मानना चाहिए। वह व्यावहारिक बुद्धि से सम्बद्ध बात है और यदि हम इसपर ध्यान न दें तो हमारी ऐसी उपेक्षा खतरनाक साबित होगी।

गांधीजी ने सदा हमसे इस बात की कि हम उच्च विचार और सीधे-सादे रहन-सहन के ऊँचे आदर्श को सदा ध्यान में रखेंगे। इसे भी किसी कोरेपन का विषय न माना जाय। आज पश्चिमी देश बड़ी गम्भीरता से अनुभव कर रहे हैं कि इसका आधार भी ठोस आर्थिक आधार ही है। 'द क्लब ऑफ रोम' एक ऐसी संस्था है जिसमें संसार के बड़े-से-बड़े अर्थशास्त्री और वैज्ञानिक सदस्य के रूप में सम्मिलित हैं। इस क्लब के द्वारा अभी-अभी एक अत्यन्त तर्कसंगत प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है जिसमें कहा गया है, "भौतिक उन्नति की सीमाएँ स्पष्ट हैं; केवल भौतिक उन्नति का मोह हमें असीमित कष्टों में ले जाकर छोड़ देगा।"

भौतिक साधनों की निश्चय ही एक सीमा है। वे अपरिमित नहीं हैं। इसलिए उसका जो मनमाना और आवश्यकता से बहुत अधिक उपयोग किया जा रहा है, वह निस्संदेह किसी-न-किसी दिन मानवता को भयंकर परिस्थिति में डाल देनेवाला सिद्ध होगा। यह ठीक है कि आधुनिक विज्ञान और तकनीक ने कृषि और उद्योग के क्षेत्रों में उत्पादन को अनेक रूपों में बढ़ाया है, फिर भी इस तकनीक से अपनी कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिनमें बेकारी, केन्द्रीय करण और वातावरण का दूषित होना सभी की नज़रों में आ रहा है। इसलिए हमको भारत में योजना के आधारभूत उद्देश्यों पर पुनर्विचार करना पड़ेगा और देखना

पड़ेगा कि विभिन्न स्तर का जीवन-यापन करनेवाली हमारी जनता को उसकी ज़रूरतों की नितान्त आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती रहें।

इसके साथ ही हमें इस बात की भी सावधानी रखनी पड़ेगी कि हम जनसाधारण के मन में नैतिक मूल्यों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करके उसे अधिकाधिक नीतिवान बनाते चले जाएँ। गांधीजी ने इस बात पर बहुत अधिक ज़ोर दिया था। यदि ऐसा नहीं हुआ तो हम एक भ्रमजाल में फँस जायेंगे और बैठे-बैठे पछताते रहेंगे।

योजना में सबसे अधिक महत्व मिलना चाहिए, व्यक्ति के पूरे-पूरे रोज़गार को। मैंने सेवाग्राम में सन् 1940 के आसपास गांधीजी से मशीनों संबंधी उनके विचार को लेकर कुछ प्रश्न किये थे तो उन्होंने कहा था—"क्या तुम मुझ झक्की समझते हो? मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान का कोई भी एक तन्दुरुस्त आदमी जो अपनी जीविका के लिए श्रम करना चाहता है, बेकार न रहे। उसे काम दिया जा सके। यदि यह उद्देश्य बड़े-बड़े कल-कारखानों के द्वारा पूरा हो सकता है, तो मैं खादी और ग्रामोद्योग के अपने कार्यक्रम को समेट लूँगा।" उन्होंने यह भी कहा—"खादी के पक्ष में रुख रखने का मतलब इतना ही है कि ज़िन्दगी की जरूरियात को विकेन्द्रीकृत ढंग से पैदा किया जा सके और उसी तरह उनका वितरण हो सके।" महात्माजी को इस बात की सत्यता में कोई सन्देह नहीं था कि भारत-जैसे ग़रीब और बहुत बड़ी आबादीवाले देश में सभी व्यक्तियों को पूरा काम देना तब तक सम्भव नहीं है, जब तक हम मास प्रोडेक्शन (बड़े पैमाने पर उत्पादन) के बजाय प्रोडेक्शन बाई दि मासेस (जन-जन से उत्पादन) की योजना नहीं बनाते। इस प्रकार की उत्पादन-योजना में सुधरी हुई तकनीकी का उपयोग तो गृहीत ही है। वे कुछ आवश्यक अनिवार्य वस्तुओं को उत्पन्न करनेवाले बड़े-बड़े उद्योगों के विरोध में नहीं थे, किन्तु वे चाहते थे कि इनका प्रबन्ध राज्य के द्वारा किया जाय, राज्य ही उनकी देखरेख करे और "हमारी राष्ट्रीय गति-विधियों" का इसे एक नगण्य अंश ही होना चाहिए। वास्तविक और बड़े पैमाने पर जो गतिविधियाँ होंगी, वे मुख्य रूप से गाँवों में ही होंगी।

1971 में जब गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू हुआ तो मैंने सारे राज्य के गाँवों की जनता को खुला आमंत्रण दिया कि जिन लोगों को काम की ज़रूरत हो, उन्हें राज्य की केन्द्रीय या स्थानीय विकास-योजनाओं में काम दिया जायेगा। यदि और कुछ सम्भव न हो तो हरेक ऐसे व्यक्ति को—चाहे वह स्त्री या पुरुष—जो बेकार हो, उसे दो तकुएवाला अम्बर चरखा तो दिया ही जा सकता था। इसके

प्रशिक्षण में बहुत दिन नहीं लगते और इससे साधारण रोजी तो मिल ही जाती है। मैंने देखा कि हजारों आदमियों को रोजगार देने के लिए चरखों की जरूरत पड़ी, जबकि गुजरात एक ऐसा राज्य है जिसमें उद्योग-धन्धे बड़े पैमाने पर चलते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकार को बिना किसी प्रकार की देरी लगाये उन सभी लोगों के लिए जिनको पूरा-पूरा रोजगार प्राप्त नहीं है, खादी और ग्रामोद्योग पर ज़ोर देकर ठीक-ठीक रोजगार देना चाहिए। जहाँ-तहाँ थोड़े-बहुत पायलेट प्रोजेक्ट शुरू कर देने और उन्हीके बल पर कुछ और पंचसाला योजनाओं के बाद सारे देशवासियों को काम देने का वचन देना हमारी राष्ट्रीय योजना का मखौल उड़ाना ही है।

मैंने बार-बार कहा है कि शराबबन्दी, गरीबी हटाओ कार्यक्रम का एक अनिवार्य अंग माना जाना चाहिए। अगर कोई इसे केवल गांधीवादी जिद्द या सनक माने तो यह बहुत बड़ी गलती होगी। जब तक सर्वसाधारण गरीब जनता को शराब पीने के लालच से मुक्त नहीं किया जाता, तब तक उनके जीवन का रहन-सहन कम-से-कम दरजे के रहन-सहन से भी नीचा बना रहेगा और उसे उठाना मुमकिन नहीं होगा। गांधीजी ने तो यहाँ तक कह दिया कि अगर उन्हें एक घण्टे के लिए भी भारत का तानाशाह बना दिया जाय, तो वे बिना ज़रा-सी भी दया दिखाये देश-भर की शराब की दूकानों को सबसे पहले बन्द करने का प्रबन्ध करेंगे। हमारी राज्य सरकारें आजकल शराब के चलन को तर्कसंगत बनाने में एक दूसरे से होड़ लगाये हुए हैं और कहती हैं कि इस तरह विकास की योजनाओं के लिए द्रव्य जुटाया जा सकेगा। इस बात का कोई ख्याल नहीं करता कि सरकारी खजाने में आनेवाले हर रुपये पर गरीब-से-गरीब तबके को तीन रुपये तो नाली में फेंकने ही पड़ते हैं। मेरा तो ख्याल है कि शायद हर रुपये पर जो खजाने में आता है, चार रुपये की शराब पीनी होती है। कुछ दिनों अख़बारों में यह ख़बर पढ़ी थी और उसे पढ़कर बड़ा दुख हुआ था कि अभी-अभी अखिल भारतीय कांग्रेस का दिल्ली में जो अधिवेशन हुआ, उसमें इस बात पर घण्टों बहस हुई कि खादी पहनना और शराब न पीना हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस की सक्रिय सदस्यता के लिए अब अनिवार्य नियम रहे या न रहे। यदि सत्तारूढ़ दल गांधीजी के मूलभूत विचारों को इतने हल्के मन से बहस-तलब मानती हो, तो जनता के बीच से बहुत जल्दी उसका विश्वास समाप्त हो जायेगा। लोगों को इसपर किसी प्रकार की श्रद्धा बच नहीं रहेगी।

महात्माजी ने एक बार कहा था—"मैंने अपनी ज़िन्दगी में देश के सामने कई कार्यक्रम रखे हैं, किन्तु मैं मानता हूँ कि नयी तालीम मेरा अन्तिम और सदा ही

हुमूल्य कार्यक्रम है।" बड़े दुख की बात है कि केंद्रीय शासन और राज्य-सरकारों ने इस शिक्षा-योजना पर ठीक से अमल करने की बात पर विचार तक करना ज़रूरी नहीं समझा। प्रो० जान डेवी ने जो हमारे ज़माने के सबसे प्रमुख शिक्षाविदों में गिने जाते हैं, मुझसे कई वर्षों पहले न्यूयार्क में कहा था कि गांधीजी की बुनियादी तालीम की योजना को वे 'अन्य सब योजनाओं से एक कदम आगे' मानते हैं। मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि अपनी शैक्षणिक संस्थाओं में हमें आज जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है, वे तब तक दूर नहीं हो सकतीं जब तक हम सभी स्तरों पर उत्पादक और सामाजिक रूप से उपयोगी कामों के साथ अपनी शिक्षा को नहीं जोड़ते। इसके बिना शिक्षण-पद्धति का कोई विकास नहीं हो सकता। विद्यार्थी की रोज़मर्रा की गतिविधियों के आधार पर निरन्तर दृष्टि रखकर परीक्षा लेने के तरीके का विकास किया जाना चाहिए और रोज़मर्रा की इन गतिविधियों में उत्पादन तथा समाजसेवा को भी शामिल मानना चाहिए। यही वह तरीका है जिसके बल पर हम अपनी शिक्षा-पद्धति को उपयोगी बना सकते हैं और शिक्षितों की बेकारी को दूर करने में सफल हो सकते हैं। इसके अलावा सरकारी और गैर-सरकारी दोनों विभागों में डिग्रियों को नौकरी देने का आधार मानना बंद कर देना चाहिए। मैट्रीक्युलेशन के बाद छात्रों को कोई न कोई विशेष हुनर सिखाया जाना चाहिए, ताकि वे जीविका कमाने लगें और उन्हें योजनाओं के अंतर्गत जो कई प्रकार के काम हैं, उनमें लगने का अवसर मिल सके। केवल ऐसे ही छात्रों को विश्वविद्यालयों में जाने की अनुमति मिलनी चाहिए जो उच्च शिक्षा के लिए विशेष रूप से योग्य माने जायें।

आर्थिक और राजनैनिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण गांधी विचार का मुख्य स्वर है। बापू के अनुसार 'यदि लोगों को जीवन की हर तफ़सील में सरकार का मुँहताज होना पड़े तो ऐसा स्वराज्य कष्टकारक ही कहलायेगा।' अपनी शहादत के बारह दिन पहले ही उन्होंने हरिजन में लिखते हुए चेतावनी दी थी: 'सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमियों के द्वारा संचालित नहीं किया जा सकता। उसे तो नीचे से गाँव-गाँव के लोगों के द्वारा संचालित होना है।' इसलिए वे भारत में पंचायती राज्य कायम करने के पक्ष में थे। सच कहें तो गांधीजी ने मेरे सुझाव पर, इस विषय पर एक ज़ोरदार लेख भी लिखा था और उसके कारण संविधान-समिति ने भारतीय संविधान की चालीसवीं धारा के मुताबिक राज्यों में कहना पड़ा था कि ग्राम-पंचायतों का संगठन करें और उन्हें ऐसे अधिकार दें जिनके बल पर वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में काम कर सकें। 'किन्तु यह कहते हुए दुख होता है कि आज का पंचायतों का ढाँचा गांधीजी की अपेक्षाओं के कदापि अनुकूल

नहीं है। ऋषि विनोबा ने ग्रामदान के जिस विचार का विकास किया, राज्य सरकारों को उसपर ठीक तरह से ध्यान देना चाहिए। जब तक ग्राम सभाओं को पर्याप्त मात्रा में अपने काम खुद चलाने की ताक़त नहीं दी जाती, तब तक भ्रष्टाचार, ग़रीबी और मुद्रास्फीति की ज्वलंत समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। हम पिछले कितने ही वर्षों से 'नीचे से योजना' करने की बात चलाते आ रहे हैं। किन्तु इस दिशा में अभी तक कहने लायक कोई काम नहीं हुआ है।

अनुत्पादक खर्च को जितना बने उतना कम किया जाना चाहिए, इसके बिना मुद्रास्फीति को रोकना बहुत कठिन हो जायेगा। स्वदेशी और आत्मनिर्भरता हमेशा हमारी आँखों के सामने रहना चाहिए। चाहे खेती हो या उद्योग हिन्दुस्तान में उत्पादन तभी बढ़ सकता है जब हम वेतनमान को उत्पादन के किसी कम से कम स्तर के साथ संयुक्त करें। कुछ वर्षों पहले रूस के उप-प्रधान मंत्री ने भिलाई स्टील योजना का निरीक्षण किया था और इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया था कि भारत ने काम के आधार पर वेतन की पद्धति को लागू नहीं किया है जो रूस में लागू है। हमने बहुत ही 'प्रगतिशील' नियम श्रमिकों के लिए बनाये हैं। फल यह हुआ है कि श्रमिक उत्पादन बढ़ाने के अपने प्राथमिक कर्तव्य की अवहेलना करके अधिकारों पर ज़ोर देते रहते हैं। गांधीजी ने अपनी अटूट शब्दावली में कहा था, "मैं तो एक ही अधिकार की बात जानता हूँ और वह अधिकार है अपना-अपना कर्तव्य पूरा करना।" यदि हम इस आधारभूत नीति की उपेक्षा कर दें तो चीज़ों के मूल्य बढ़ने के सिलसिले में उन्हें रोकने तथा उत्पादन बढ़ाने के संबंध में निश्चित की गयी सारी योजनाएँ काग़ज़ी बनकर रह जायेंगी।

गांधीजी ने हमसे इस बात की भी आशा की थी कि हम दूसरों पर कीचड़ उछालने के बजाय अपने भीतर झाँककर देखें। चाहे भ्रष्टाचार हो, चाहे सार्वजनिक जीवन की कोई दूसरी समस्या, उसका निराकरण खुद अपने से प्रारंभ होना चाहिए। यदि वे सारे लोग जो ज़ोर-ज़ोर से भ्रष्टाचार की बात करते हैं, स्वयं स्वच्छ हों तो हमारा दूषित वातावरण देखते ही स्वच्छ होने लगे। एक बार किसी प्रोफ़ेसर ने गांधीजी से देश के प्रति उनका सन्देश जानना चाहा। उन दिनों गांधीजी नौआखली क्षेत्र में नंगे पावों गाँव-गाँव घूम रहे थे। गांधीजी ने कहा, "जब तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हारे चारों तरफ़ बुराई फैलायी हुई है और तुम खुद अच्छे हो तो तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि आसपास का सब कुछ अच्छा है, तुम्हारे अपने भीतर ही कोई खराबी पड़ी हुई है।"

मुझे तो इस बात में कभी कोई शक ही नहीं होता कि आज पहले से भी अधिक गाँधीजी के विचारों को देश की आवश्यकता है। गाँधीजी किसी भूतकाल के भग्नावशेष नहीं हैं। बल्कि वे तो भविष्य के मसीहा हैं। वे आज भी हमारे बीच में बने हुए हैं और दशाब्दियों तक बने रहेंगे। गांधीजी ने स्वयं कहा था, "जब तक निष्ठा की भी मेरी ज्योत जल रही है, तब तक मैं मरकर भी जिन्दा रहूँगा। इतना ही नहीं, मैं उस वक्त भी अपनी बात कहता रहूँगा—केवल अकेला पड़ जाने पर तो यह बात सही है ही।" लुई फिशर ने अपनी एक नयी किताब में कहा है, 'यदि मनुष्य जाति को जिन्दा रहना है और यदि संस्कृति, सत्य और लोकतंत्र को फलना-फूलना है, तो बीसवीं सदी को बजाय लेनिन या ट्राटस्की, मार्क्स या माओ या हो ची की बात के गांधी की बात सुननी पड़ेगी।'

[साभार : गांधीमार्ग, अक्तूबर, '74; गांधी शांति प्रतिष्ठान, राजघाट, नई दिल्ली-110 001]

"विकास सदा प्रयोगात्मक होता है। गलतियाँ करने और उनको ठीक करने से ही सब प्रकार की प्रगति होती है।

परिवर्तन प्रगति की एक शर्त है। जब मन किसी चीज़ को ग़लत मानकर उसके खिलाफ़ विद्रोह करता है, तब कोई ईमानदार आदमी यांत्रिक सुसंगतता का पालन नहीं कर सकता। अपनी अपूर्णता महसूस करना प्रगति का पहला क़दम है।"

—गांधीजी

भारत का भाषायी विकास: श्री मोटूरि सत्यनारायण

🌐 इब्राहीम शरीफ़

'सत्यनारायण, तुम कहीं भी रहो, कुछ भी करो, लेकिन हिन्दुस्तानी का काम मैं तुम्हें सौंपता हूँ, इसे मत छोड़ो।' गांधीजी ने अपने अंतिम दिनों में यह महत्व-पूर्ण काम दिया था दक्षिण भारत के सबसे अधिक जागरूक हिंदुस्तानी प्रचारक श्री मोटूरी सत्यनारायण को।

गांधीजी की इस बात पर गौर करने पर स्वतः ही दो चीज़ों की तरफ़ निगाह जाती है। बल्कि यों कहा जा सकता है कि दो बेहद अहम सवाल मन में कुलबुलाने लगते हैं। पहला सवाल यह है कि इतने बड़े देश के बेहिसाब हिन्दी-हिंदुस्तानी के हिमायतियों के बावजूद गांधीजी ने सत्यनारायण जी के कंधों पर ही हिन्दुस्तानी की तरक्की का भार क्यों सौंपा? और लोगों की बनिस्बत सत्यनारायण जी को ही क्यों यह अहमियत दी? इसके सही जवाब की खोज के संदर्भ में यह हकीकत खासी सफ़ाई के साथ उभरती है कि गांधी जी पूरे विश्वास के साथ मानते थे कि हिन्दुस्तानी यानी भारत की राष्ट्र-भाषा को लेकर उनकी जो परिकल्पना थी, उसे रूप देने का काम कोई ऐसा व्यक्ति ही संपन्न कर सकता है जो तथाकथित हिन्दी या उर्दू के अतिरिक्त भावुक दबाव को महसूस न करके चीज़ों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि और दम रखता हो। जाहिर है, ऐसा व्यक्ति वही हो सकता था जिसकी मातृभाषा हिन्दी-उर्दू न होकर कुछ और हो और इसके बावजूद वह हिन्दुस्तानी के चौतरफा

फैलाव को अपनी जिंदगी का सबसे महत्त्वपूर्ण काम समझता हो। स्पष्ट था, गांधीजी को ये सारी खूबियाँ सत्यनारायण जी में नजर आयी थीं जिन्होंने उस समय तक अपनी जिंदगी का रास्ता चुन लिया था और बार-बार इस बात का सबूत भी दिया था कि वे उस रास्ते पर बराबर चलते रहेंगे, भले ही उसमें बेहिसाब रुकावटों का सामना क्यों न करना पड़े। बाद की पीढ़ियाँ इस बात को बखूबी जानती हैं कि गांधीजी की इस दूरंदेशी को, इस विश्वास को सत्यनारायण जी ने किस हद तक सही साबित किया, किस हद तक बरकरार रखा।

सत्यनारायण जी से कही हुई गांधीजी की इस बात को लेकर दूसरा सवाल यह उठता है कि उन्होंने हिन्दी और उर्दू को छोड़कर हिन्दुस्तानी का नारा क्यों दिया था? गांधीजी संभवत: इस बुनियादी बात को पूरी ईमानदारी के साथ मानने लग गये थे कि दरअसल हिन्दी और उर्दू समूचे देश की भाषाएँ न होकर हिन्दुओं और मुसलमानों की भाषाओं के रूप में ही अपना विकास करने की मजबूरी से बाज़ नहीं आ सकेंगी और ऐसी हालत में देश के समसामयिक संदर्भों को उद्घाटित करनेवाली संपन्न संपर्क भाषा की जो कमी रह जायेगी वह हिन्दुस्तानी से ही पूरी हो सकेगी। राष्ट्रभाषा संबंधी गांधीजी के इस नजरिये को सत्यनारायणजी ने माना। माना ही नहीं, इसकी सचाई को बहुत गहरे महसूस किया।

कुल मिलाकर, सत्यनारायणजी हिन्दुस्तानी के काम में लग गये। उसे अखिल भारतीय रूप देने की हर संभव कोशिश की। संविधान-परिषद में हिन्दुस्तानी की स्थिति को मजबूत करने में अपनी पूरी शक्ति लगायी। राष्ट्रभाषा प्रचार ससति, वर्धा के द्वारा हिन्दुस्तानी को फैलाने का प्रयत्न किया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की भाषा-प्रचार की नीति में हिन्दुस्तानी को प्रधानता दी। राज्य सभा में हिन्दुस्तानी के पक्ष में आवाज़ बुलंद की। हिन्दुस्तानी में पुस्तकें लिखवाई, पाठ्य-क्रम तैयार करवाये। मगर, इस सब के बावजूद आज़ादी के बाद देश में उभरी सांप्रदायिक शक्तियों ने न गांधीजी की भाषासंबंधी परिकल्पना को समझने की बुद्धिमत्ता दिखायी, न ही सत्यनारायणजी की कोशिशों को तूल देने की ज़रूरत पर गौर किया। आखिरकार हिन्दुस्तानी टूटकर हिन्दुओं की हिन्दी और मुसलमानों की उर्दूवाले खेमों में बिखर गयी। यह बिखराव सत्यनारायण जी की भाषासंबंधी सार्थक कोशिशों के लिए ही घातक नहीं था, बल्कि यह गांधीजी के बेहद खूबसूरत सपने की मौत थी। मगर यह मौत देखनी पड़ी सत्यनारायण जी जैसे हजारों लोगों को, जिन्होंने ने भाषा को छोटी-छोटी परिधियों में बांधने की नादानी न कर उसे ऐतिहासिक और सामाजिक अर्थवत्ता देने की दयानतदारी दिखाई थी। इतना ही नहीं, खासकर हिन्दी के चारों तरफ़ मंडराते हुए घिनौने

विश्व के सन्दर्भ में हिन्दी

रामेश्वर दयाल दुबे

यदि एक शब्द में भारतीय संस्कृति की मूल भावना को व्यक्त करना हो, तो ह शब्द है—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। अपनी इसी विशेषता के कारण भारतीय ंस्कृति मानवीय संस्कृति का पर्यायवाची मानी जाती है। भारतीय संस्कृति ामता और ममता के चरणों से आगे बढ़ती है। वह अपने घर, परिवार, जाति, ेश की सीमाओं को पार करती हुई वसुधा पर के प्राणियों में एक-सूत्रता तथा आत्मीयता स्थापित करती चलती है।

प्राचीन काल में एकसूत्रता निर्माण का यह कार्य संस्कृत भाषा के माध्यम से होता रहा। प्राचीन काल में श्रीलंका, जावा, सुमात्रा, बालि, कम्बोज आदि देशों तक भारतीय संस्कृति का संदेश संस्कृत भाषा के माध्यम से ही गया था। दूर देशों में संस्कृत का अध्ययन बड़ी श्रद्धा से किया जाता था। आधुनिक काल में भी यह प्रथा चालू रही और चालू है। जर्मनी, अमेरिका इंग्लैंड आदि देशों में आज भी संस्कृत का अध्ययन हो रहा है, किन्तु अब उसका अध्ययन प्राचीन भाषा के रूप में होता है।

यों तो भारत की आधुनिक भाषाओं में हिन्दी का एक विषेश स्थान था ही, किन्तु भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् हिन्दी को विशेष महत्व मिला है। संविधान सभा ने तारीख 14 सितम्बर, 1949 के दिन देवनागरी में लिखी जानेवाली हिन्दी को सर्व सम्मति से भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया, इसलिए अब हिन्दी स्वतंत्र भारत की राजभाषा है। किन्तु सदियों पहले से हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में भारत की सेवा करती रही है। सन्तों का उसे आशीर्वाद मिला और जनता का उसे समर्थन। इसलिए भारत में जहाँ उसके बोलनेवालों की संख्या लगभग 23 करोड़ है, उसको समझानेवालों की संख्या लगभग 30 करोड़ है।

विश्व के सन्दर्भ में हिन्दी पर यदि विचार किया जाय, तो हम पाते है कि विश्व में दो प्रकार के देश हैं—एक वह, जहाँ ऐसे लोग करोड़ों की संख्या में रह रहे हैं, जिनके पूर्वज भारत के मूल निवासी थे। ऐसे देशों में मोरीशस, फिजी,

सुरीनाम, दक्षिण आफ्रीका, ट्रिनीडाड आदि गिने जा सकते हैं। सदियों पहले बहुत बड़ी संख्या में भारतीय इन देशों में पहुँचे और अब वहीं के नागरिक बन गये। चूँकि इस प्रकार जानेवाले भारतीयों में अधिकांश लोग पूर्व उत्तर प्रदेश और बिहार के थे, इसलिए मातृभाषा के रूप में हिन्दी उनके साथ गयी और आज तक इन देशों में हिन्दी का दैनिक व्यवहार में व्यापक प्रचार है। मोरीशस, फिजी, सुरीनाम, ट्रिनिडाड में तो जनता के बहुत बड़े अंश के व्यवहार की भाषा हिन्दी ही है। वहाँ हिन्दी की सैकड़ों शालाएँ हैं, हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकशित होती हैं और वहाँ हिन्दी के ऐसे विद्वान ज्ञाता हैं, जो साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से अपनी साहित्य-सृजन की प्रवृति का अच्छा परिचय दे रहे हैं।

दूसरे प्रकार के देश वे हैं, जहाँ की अपनी-अपनी स्वतंत्र भाषाएँ हैं, किन्तु ज्ञानार्जन की दृटि से जहाँ हिन्दी का विधिवत् अध्ययन भारत के स्वतंत्र होने से बहुत पहले से ही चालू था, इधर हिन्दी को राजभाषा का पद मिलने के पश्चात् अधिकांश देशों में हिन्दी के प्रति विशेष रुचि दिखाई जा रही है। इस दृष्टि से रूस, अमेरिका, इग्लैंड, जापान, चेकोस्लावेकिया, इटली आदि के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। विश्व के 62 विश्व-विद्यालयों और संस्थाओं में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। विश्वविद्यालयों और संस्थाओं का ब्यौरा इस प्रकार है—

विश्व-विद्यालय तथा संस्थाएँ

संयुक्त राज्य अमेरिका	...	18
श्रीलंका	...	3
जापान	...	5
इंग्लैड	...	3
सोवियत संघ	...	4
पश्चिमी जर्मनी	...	15
विविध	...	14

इन विदेशी विश्व-विद्यालयों में उच्च स्तरीय हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था तो है ही, शोध विभाग भी है, जहाँ भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी और उसकी बोलियों का अध्ययन हो रहा है। शोध कार्य चल रहा है और साहित्य-संबंधी शोध हो रहा है। हिन्दी के मूर्धन्य लेखकों और कवियों की लोकप्रिय रचनाओं का अनुवाद उन भाषाओं में किया जा रहा है। इस दृष्टि से रूस, चेकोस्लावेकिया, जर्मनी, अमेरीका का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

विदेशों में हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति उल्लेखनीय कार्य कर रही है। यद्यपि विदेशों में हिन्दी प्रचार करना समिति की कार्य-परिधि से बाहर का काम है, फिर भी विदेशों में अपने-अपने काम से गये हुए राष्ट्रभाषा प्रचारकों ने उस-उस देश में हिन्दी का प्रचार का सूत्रपात किया है। विदेशों में समिति द्वारा संचालित परीक्षा-केंद्र इस प्रकार है—बर्मा में 4, श्रीलंका में 3, सुडान में 2, अरब में 1, इंग्लेंड में 1, दक्षिण अफ्रिका में 11, पूर्व अफ्रिका में 9, जापान में 1, तथा सुरीनाम में 1। अब तक विदेश के केंद्रों से समिति की विभिन्न परीक्षाओं में लगभग 16 हज़ार परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं।

सोवियत संघ में अन्य देशों की अपेक्षा काफी समय से हिन्दी की ओर ध्यान दिया जा रहा है। वहाँ हिन्दी पुस्तकों का भी प्रकाशन होता है। संस्करण दस हज़ार से कम नहीं होता और पुस्तकें हाथों-हाथ बिक जाती है। हिन्दी लेखकों की प्रसिद्ध रचनाओं का रूसी अनुवाद लोकप्रिय हो रहा हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास, डा० रामकुमार वर्मा के नाटक, यशपाल की कहानियाँ, पन्त और प्रसाद कीं कविताएँ रूसी भाषा में अनूदित करके छापी जाती हैं। श्री ए. ए. वारान्निकोव हिन्दी के माने हुए विद्वान हैं। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का रूसी भाषा में आपने पद्यानुवाद किया है, जो विशेष लोकप्रिय हुआ है।

अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्यापन की व्यवस्था तो है ही, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी और उसकी बोलियों पर गम्भीर शोध कार्य चल रहे हैं। हिन्दी पढ़ने की ओर यहाँ जनता में विशेष रुचि दिखाई दे रही है। यदि आधुनिक पद्धति और साधनों की सहायता से पढ़ाई की व्यवस्था हो, तो इस दिशा में वहाँ बहुत-कुछ किया जा सकता है।

चेकोस्लोवेकिया के प्राग विश्वविद्यालय में हिन्दी की पढ़ाई की विधिवत् व्यवस्था है। इस विश्व-विद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर ओडलेन स्पेकल हिन्दी के अच्छे विद्वान हैं। उनका शुद्ध उच्चाण देखकर आश्चर्य होता है। प्रो. स्पेकल भारत की कई बार यात्रा कर चुके हैं। आपने चेक भाषा में गोदान का अनुवाद किया है। इधर आपने 100 लोककथाओं और 100 लोकगीतों का भी अनुवाद किया है। अपने देशवासियों को हिन्दी सिखानेवाली कई उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। विश्वविद्यालयों में हिन्दी के विभिन्न पाठ्यक्रम हैं। उनसे और अनेक विद्यार्थी लाभ उठा रहे हैं।

भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व जापान में हिन्दी के प्रति कोई विशेष आदर-भावना न थी, किन्तु इधर हिन्दी के प्रति चाव बढ़ा है। टोकियो विश्वविद्यालय में हिन्दी का स्वतंत्र विभाग है। प्रो. दोई हिन्दी के अच्छे विद्वान हैं। हिन्दी

का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करने के लिए जापान सरकार अनेक विद्यार्थियों को प्रति-वर्ष भारत भेजती है। जापान में गाँधी इन्स्ट्यूट के द्वारा भी हिन्दी का प्रचार हो रहा है। दक्षिण अफ्रिका और पूर्व अफ्रीका में हिन्दी का काफी प्रचार है। लाखों की संख्या में वहाँ हिन्दीतर भाषी भारतीय रहते हैं। ये लोग हिन्दी के प्रति विशेष आदर भाव रखते हैं और दक्षिण अफ्रीका में तो हिन्दी की सैकड़ों शालाएँ हैं। पं. नरदेव वेदालंकार ने दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी प्रचार का बहुत स्तुत्य कार्य किया है।

श्रीलंका, बर्मा, नेपाल तो भारत के पड़ोसी राष्ट्र हैं। इन देशों में भी हिन्दी का व्यापक प्रचार है, और ऐसी हिन्दी संस्थाएँ हैं, जो हिन्दी प्रचार का अच्छा कार्य कर रही है। इंग्लैड में भी हिन्दी प्रचार का काम अच्छा हो रहा है। विश्व-विद्यालय में तो हिन्दी को स्थान दिया गया है। कई अन्य संस्थाएँ हैं जो सहित्यिक प्रवृत्तियों द्वारा हिन्दी के लिए लोकप्रिय वातावरण तैयार करती हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विश्व के अनेक देशों में हिन्दी के प्रति अनुराग पैदा हुआ है और हिन्दी सीखने के प्रति जनता में उत्साह दिखाई पड़ता है।

भारतीय संस्कृति समन्वय की ओर संकेत करती है। वह विभेद की नहीं, अभेद की उपासिका है। भारत की इस प्राचीन एवं शाश्वत मूल्यों पर आधारित संस्कृति को एक जीवन-दर्शन के रूप में अभिव्यक्त करने का काम वर्तमान समय में हिन्दी को करना है। यदि हिन्दी इस काम को कर पाती है, तो लोग श्रद्धा के साथ हिन्दी को सीखेंगे और उसके माध्यम से भारतीय संस्कृति के उपासक बनेंगे। इन्हीं दृष्टियों को ध्यान में रखकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा द्वारा विश्व हिन्दी-सम्मेलन की योजना बनायी गयी है। वह दिन दूर नहीं है, जब विश्व की सम्माननीय भाषाओं में हिन्दी को भी उच्च स्थान प्राप्त होगा, जिसकी वह सहज अधिकारिणी है।

मेरा ख्याल है कि प्रत्येक भारतीय को अपनी मातृभाषा में अथवा व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजी की बनिस्बत व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिन्दी में भाषण देना चाहिए।

—गांधीजी

आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी

डा. सी. मार्कण्डेय शास्त्री

(उप-लोकशिक्षा संचालक, प्राच्य भाषाएँ, आन्ध्र प्रदेश)

स्कूलों में हिन्दी का स्थान :

केन्द्रीय सरकार के त्रिभाषा सूत्र को प्रयोग में लानेवाला पहला राज्य आन्ध्र प्रदेश है। यहाँ के माध्यमिक पाठशालाओं में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संपूर्ण आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी का अध्ययन तथा अध्यापन द्वितीय भाषा के तौर पर किया जाता है। पाँचवीं कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य है।

हिन्दी का अध्यापन पाँचवीं कक्षा के स्तर पर प्रारंभ होता है और दसवीं कक्षा तक चलते रहता है। एस. एस. सी. सार्वजनिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए हिन्दी भाषा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। राज्य सरकार प्रतिवर्ष लगभग डेढ करोड रुपयों से अधिक हिन्दी पंडितों के वेतन के लिए व्यय कर रही है। हर पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय सरकार की सहायता से हिन्दी पंडितों के पदों का सृजन होता है और योजना के अंत में उस व्यय का भार राज्य सरकार वहन करती है। चतुर्थ पंच वर्ष योजना के अंत तक संपूर्ण व्यय केन्द्रीय सरकार उठा रही थी, किन्तु अब पाँचवीं पंचवर्ष योजना के आरंभ से संपूर्ण व्यय का भार राज्य उठा रही है। हाल में ही केन्द्रीय सरकार के नौ लाख रुपयों के अनुदान से 400 हिन्दी पंडितों के पद आये हैं। राज्य सरकार अधिक से अधिक हिन्दी पंडितों को नियुक्त करने का यथासाध्य प्रयत्न कर रही है।

हाई स्कूलों तथा अध्यापकों की संख्या :

हमारे प्रांत में 3262 माध्यमिक पाठशालायें हैं और 5764 हिन्दी अध्यापक इन शालाओं में हिन्दी अध्यापन कर रहे हैं। लगभग 10,65,092 विद्यर्थी माध्यमिक कक्षाओं में हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

हिन्दी के अध्यापन के अतिरिक्त प्रांतीय शासन हैदराबाद और नेल्लूर में प्रशिक्षण महाविद्यालयों को चला रहा है, जहाँ लगभग 200 (दो सौ) प्रशिक्षित अध्यापक तथा विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

केन्द्रीय सरकार की सहायता से वरंगल में भी इस प्रकार के प्रशिक्षण वर्ग का संचालन राज्य सरकार के विचाराधीन है। इस हेतु केन्द्र सरकार ने अर्थ की व्यवस्था भी की है।

संगोष्ठी और स्वाध्याय शिबिरों का आयोजन :

समय-समय पर हिन्दी शिक्षकों का उद्देश्य अहिन्दी भाषी आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी शिक्षकों को शैक्षणिक समस्याओं को सुलझाकर उनका साहित्यिक तथा शैक्षणिक ज्ञान बढाना ही रहा है। 1973-74 में भी नवीन मूल्यांकन योजना के अंतर्गत सभी हिन्दी शिक्षाओं को प्रशिक्षित किया गया।

हिन्दी पुस्तकों का वितरण :

समय-समय पर केन्द्रीय निदेशालय से प्राप्त लगभग 5600 पुस्तकें जिला शिक्षा अधिकारियों के द्वारा विभिन्न हाई स्कूलों में वितरित की गयीं। यह क्रम अभी भी जारी है।

आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी माध्यम के स्कूल तथा कालेज :

आन्ध्र प्रदेश मूलतः तेलुगु भाषी प्रांत होने पर भी यहाँ युगल नगरों में तथा जिलों में 30 हिन्दी माध्यम के हाई स्कूल हैं। हैदराबाद में हिन्दी माध्यम के डिग्री कालेज भी हैं। राज्य शासन उन्हें पूर्ण अनुदान देकर प्रोत्साहित कर रही है।

सरकार से अनुदान प्राप्त हिन्दी विद्यालय :

आन्ध्र प्रदेश के इक्कीस जिलों में 18 हिन्दी विद्यालय हैं, जिन्हें सरकारी मान्यता और अनुदान प्राप्त है। इन विद्यालयों में अनेक छात्र-छात्रायें हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा द्वारा संचालित परीक्षाओं में सम्मिलित हो रहे हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र तथा हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबादा दोनों संस्थायें हिन्दी परीक्षाओं का संचालन करती हैं और उपाधियाँ प्रदान करती हैं। राज्य सरकार इन दोनों संस्थाओं को अनुवान दे रही है।

हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकें :

यहाँ द्वितीय भाषा हिन्दी की तथा प्रथम भाषा हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण हुआ है। हिन्दी माध्यम कीं भाषेतर विषयों की पाठ्य पुस्तकों का भी राष्ट्रीयकरण हुआ है। राज्य सरकार ही इनका प्रकाशन कर रही है।

आज भारत के हर प्रांत में राष्ट्रवाणी की जो अनन्य आराधना हो रही है, उसीमें आन्ध्र प्रदेश की सरकार भी अपना यत्किंचित योग देकर अपने राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को निभा रही है। इस महान कार्य की सिद्धि के लिए राष्ट्रभाषा के प्रचार और प्रसार को आगे बढ़ानेवाली कई प्रणालियों को कार्यान्वित कर रही है। राज्य के शिक्षा निदेशालय में हिन्दी शिक्षाधिकारी भी हैं, जो हिन्दी के विकास और प्रचार का कार्य देखते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय भाषा के विकास के साथ-साथ राज्य सरकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में भी अपना संपूर्ण सहयोग दे रही है।

दक्षिण भारत का हिन्दी लेखन : सर्जनात्मक उपलब्धियाँ

इब्राहीम शरीफ़

जिन लोगों की मातृभाषा तथाकथित हिन्दी है, उनमें से कुछ लोग बेहद शिद्दत के साथ यह कहते हुए पाये जाते हैं कि हिन्दीतर भाषा-भाषियों को हिन्दी में लिखने की, ख़ासकर सर्जनात्मक साहित्य लिखने की ग़लती नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोगों का कहना होता है कि हिन्दीतर भाषी लोग अपनी मातृभाषा में लिखें। शायद, इसकी प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखकों में से कुछ लोग यहाँ तक कहते नज़र आते हैं कि सर्जनात्मक लेखन के लिए सीखी हुई भाषा ही ज्यादा कारगर साबित हो सकती है, मातृभाषा नहीं।

ऊपर से देखने पर ये दोनों तरह की बातें अपने-अपने हिसाब से सही लग सकतीं हैं। मगर सचाई यह है कि इन दोनों बातों का दरअसल एक ही अर्थ है और बदक़िस्मती से यह ग़लत अर्थ है। इस तरह के तर्कों से यह मतलब निकलता है कि साहित्य ले-देकर भाषा के आवरण में लिपटी हुई कोई चीज़ है जिसकी खूबसूरती पूर्णतया उसके आवरण के खूबसूरत होने पर निर्भर करती है। लेकिन इन तर्कों को सचाई के रूप में स्वीकार कर लेने का सबसे बड़ा खतरा यह होगा कि साहित्य अपने वास्तविक अर्थ को, अपनी सही शक्ति को खोकर भाषा जैसी दूसरे दर्जे का महत्व रखनेवाली चीज़ का मोहताज होकर दम तोड़ देगा। वस्तुतः भाषा साहित्य को अभिव्यक्ति देने का एक माध्यम-भर है और किसी भी लेखक द्वारा इस माध्यम को अपनाना उसके व्यक्तिगत परिवेश पर निर्भर करता है। अगर कारणवश किसी लेखक ने हिन्दी सीख ली है और वह समझता है कि हिन्दी के माध्यम से वह अपनी बात को अधिक से अधिक लोगों के पास पहुँचा सकता है तो वह हिन्दी में लिखता है या लिख सकता है। लेकिन सबसे अहम बात यह है कि साहित्य भाषा नहीं है, वह समय की सचाइयों का चित्रण है, मानव जीवन के उतार-चढ़ाव का लेखा-जोखा है, सामाजिक संगतियों-विसंगतियों का दायित्वपूर्ण अवगाहन है, समय में सांस लेते हुए लोगों की जीवन-पद्धति का प्रतिरूप है और एक शब्द में

कहना हो तो मानव का जीवन-दर्शन है। लेखन में यह सब न होकर मात्र भाषा होगी तो उसे साहित्य के रूप में स्वीकृति नहीं दी जा सकती। अगर इस तरह स्वीकृति दी जा सकती तो हमने बेहद खूबसूरत भाषा में लिखी गयी पोर्नोग्राफ़ी की ढेरों पुस्तकों को खासे ऊँचे दर्जे का साहित्य मान लिया होता।

इसलिए, अगर कोई हिन्दीतर भाषी हिन्दी के माध्यम से अपने विचारों को, अपने जीवन-दर्शन को अभिव्यक्ति देता है तो इसमें न हिकारत से देखने का कोई कारण हो सकता है और न अतिरिक्त अहं से फूलकर कुप्पा होने का।

साहित्य को भाषा के आवरण में लिपटी हल्की-फुल्की बातों-विचारों का ढेर न समझकर समय की सचाइयों की बेबाक अभिव्यक्ति मान लेने के बाद दक्षिण भारतीय हिन्दी लेखकों के लेखन को देखने में अधिक सुविधा रहेगी। सुविधा इसलिए होगी कि उन्हें हिन्दी में लिखने मात्र से दूसरे दर्जे के लेखक मान लेने की हमारे पास न कोई मजबूरी होगी और न ही व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हिन्दी में क़लम चलानेवाले हर व्यक्ति के लेखन को साहित्य मान लेने का कोई अतिरिक्त दायित्व ही होगा।

इस रोशनी में, दक्षिण भारतीय हिन्दी लेखकों पर नज़र डालने पर इनकी संख्या की बहुलता को देखकर किसी भी व्यक्ति को सुखद आश्चर्य हो सकता है। दक्षिण के चारों प्रांतों के हिन्दी लेखकों की अगर साधारण अर्थ में संख्या गिनानी हो तो कहना पड़ेगा कि यहाँ कुछ नहीं तो एक सौ ऐसे लोग हैं जो हिन्दी में लिखते रहते हैं। यह संख्या वैसे बहुत हौसला बढ़ानेवाली हो सकती है, मगर सचाई यह है कि जिस लेखन को हम वास्तविक अर्थ में साहित्य कहते हैं, उस तरह के लेखन के प्रणेता यहाँ बमुश्किल एक दर्जन होंगे। बाक़ी लोग ऐसे हैं, जिन्होंने सनदें पाने के लिए प्रबंध लिखे हों, कुछ इधर-उधर की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया हो, कुछ छिट-पुट लेख वग़ैरह लिखे हों या कोई एकाध पुस्तक संपादित करते हुए छोटी-मोटी भूमिका जैसी कोई चीज लिख दी हो। इसलिए सहज ही, दक्षिण भारत के हिन्दी साहित्य की सर्जनात्मक उपलब्धियों का लेखा-जोखा करते समय, उन्हीं लेखकों की चर्चा करनी होगी जो वास्तविक अर्थ में साहित्यकार हैं। ऐसे लेखकों का यहाँ सूबेवार परिचय देने की कोशिश की जा रही है।

केरल दक्षिण का ऐसा प्रांत है जहाँ सबसे अधिक स्वभाविकता के साथ हिन्दी भाषा स्वीकृत हुई है। यहाँ की जनता और सरकार में समान रूप से हिन्दी के प्रति सद्भावनापूर्ण जिज्ञासा दिखाई देती है। यह कहना भी ग़लत नहीं होगा कि

यहाँ अपेक्षाकृत अधिक सजीव, सहज और संपन्न हिन्दी भाषा के जानकार मिलते हैं। हालांकि ये सारी बातें किसीको लेखक बनाने का कोई कारण नहीं हो सकतीं, लेकिन सहायक ज़रूर हो सकती हैं। वैसे भी, केरल प्रांत की, अपनी भाषा के साहित्य की संपन्नता और जागृति दक्षिण के और प्रांतों की बनिस्बत ज्यादा प्रखर है और भाषा के बदलने के बावजूद यह प्रखरता वहाँ के हिन्दी लेखकों में कमोबेश उसी रूप में पायी जाती है।

केरल के हिन्दी लेखकों में सबसे पहले डा० गोविन्द शेनाय का नाम लिया जा सकता है। हालांकि इन्होंने कम लिखा है, मगर जो भी लिखा है, बहुत बढ़िया लिखा है। ये वस्तुत: व्यंग्य लेखक हैं और इनकी रचनाओं को पढ़ते समय हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई की रचनाओं की बार-बार याद आती है। डा० शेनाय में हिन्दी भाषा की अद्भुत पकड़ है और इस पैनी भाषा का इस्तेमाल करने के लिए आवश्यक जीवन-संदर्भों को ढूँढ़ने की लाजवाब ताकत है। इनकी व्यंग्य रचनाओं का एक संग्रह भी छपा है 'मिस्टिक साहब का कुत्ता' के नाम से। उनके बाद एन. चंद्रशेखरन नायर का नाम लिया जा सकता है। इनकी रचनाओं में भी सामाजिक संदर्भ अत्यंत प्रभावशाली ढंग से खुलते हैं। नायर की रचनाओं में विश्वमानव का उदात्त चित्र उभरता है जो पाठकों के आगे एक बृहत्तर आदर्श का निर्माण करता है। इन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानियाँ आदि लिखी हैं और इनका काम बहुत सराहनीय माना जा सकता है। इनके अतिरिक्त पी. एन. भट्टतिरी, भारती देवी विद्यार्थी, देव केरलीय, पी. जी. वासुदेवन आदि लोगों ने अच्छे साहित्य का निर्माण किया है। इन लोगों की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

केरल के बाद हिन्दी के मौलिक लेखन की दृष्टि से आंध्र प्रदेश का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ केरल की अपेक्षा कम संख्या में हिन्दी के सर्जनात्मक लेखक हुए हैं, मगर अपनी महत्ता को स्थापित करने के हिसाब से ये केरलीयों से आगे हैं। यहाँ के हिन्दी लेखकों में सबसे पहले रमेश चौधरी 'आरिगपूडि' का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने हिन्दी प्रदेश में रहकर हिन्दी भाषा का अध्ययन किया था, इसलिए भी इनकी भाषा में जीवंतता है। अपनी इस जानदार भाषा में इन्होंने बीस के करीब उपन्यास लिखे हैं और कई कहानियाँ भी। इनकी सारी रचनाएँ किसी न किसी सामाजिक समस्या को लेकर चलती हैं और उस समस्या के आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक कारणों की खोज की दिशा में पर्याप्त ज़िम्मेदारी के साथ पहल करती हैं। मगर कभी-कभी इस तरह की खोज इस वजह से बहुत सार्थक

नहीं हो सकती, क्योंकि इस खोज के तहत, जैसा कि किसी फ्रेंच लेखक ने कहा है, जिस जीवन-दर्शन की रोशनी की आवश्यकता होती है, वह फीकी पड़ती हुई नज़र आती है। आरिगपूड़ि की रचनाओं से किसीको कोई शिकायत हो सकती है तो सिर्फ़ इसी संदर्भ में हो सकती है कि इनकी रचनाओं में चित्रित सामाजिक जीवन के उतार-चढ़ाव को संजीदगी के साथ जिस मात्रा में तार्किक संगति—वह भी किसी बृहत्तर सामाजिक दर्शन के संदर्भ में, मिलनी चाहिए वह मिली नहीं है। इसके आम तौर पर कई कारण हो सकते हैं; मगर सबसे मुख्य कारण होता है, लेखक का अपनी सर्जनात्मकता के संदर्भ में समसामयिक सामाजिक सचाइयों से बहुत गहरा सरोकार न रख पाना। आरिगपूडि के साथ, यह बात बहुत दावे के साथ तो नहीं कही जा सकती, लेकिन इनकी सार्थक रचनाशीलता को लेकर इतनी कामना अवश्य की जा सकती है कि सामाजिक शृंखलाओं को जोड़ने की इनकी शक्ति और अधिक तल्ख हो, ताकि इनका लेखन अपने समय को पूर्णतया अर्थवत्ता दे सके।

इनके बाद बालशौरि रेड्डी का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने भी हिन्दी में छः-सात उपन्यास लिखे हैं और कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। इनकी लेखनी में सहजता है, सरलता है और बोधगम्यता है। हालांकि इन्होंने भी अब तक के अपने लेखन में किसी ठोस जीवन-दर्शन को प्रतिपादित नहीं किया है, लेकिन इनके साथ सुखद बात यह है कि इनकी रचनाओं में वर्णित जीवन-स्थितियाँ परिचित, बेहद जानी-पहचानी-सी लगती हैं जो इनके लेखन को विश्वस्त बनाती हैं। बालशौरि रेड्डी ने इधर कई दिनों से लिखना लगभग बंद कर रखा है; फिर भी आशा की जा सकती है कि इस अंतराल के बाद अगर ये लिखेंगे तो अच्छा लिखेंगे; क्योंकि इनमें अब भी ज़िन्दगी के साथ दौड़ने की ताक़त बरकरार है।

यहाँ दो नाम और लिये जा सकते हैं जिनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ नकारी नहीं जा सकतीं। ये लोग हैं वैरागी और दंडमूडि महीधर। वैरागी ने बेहद ताकतवर कविताएँ लिखी हैं और इनका एक संकलन भी छप चुका है। महीधर ने कुछ जानदार कहानियाँ लिखी हैं जो उनकी आश्चर्यजनक शक्ति और समझ का परिचय देती हैं। इनके अतिरिक्त हेमलता आंजनेयुलु का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने कुछ अच्छी कविताएँ लिखी हैं। युवा लोगों में पी. वी. विजयराघव रेड्डी, पी. वी. नरसा रेड्डी के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने कुछ बहुत जानदार कहानियाँ और कविताएँ लिखी हैं और जिनसे और भी खूबसूरत रचनाओं की आशा की जा सकती है।

तमिलनाडु की स्थिति हिन्दी के सर्जनात्मक साहित्य की दृष्टि से बहुत संतोषजनक नहीं लगती। यहाँ दो ही चार लोग ऐसे हैं जिनका नाम विशेष रूप से

लिया जा सकता है। तमिलनाडु के हिन्दी लेखकों में सबसे महत्वपूर्ण हैं र. शौरिराजन। इनके पास बहुत ही सजीव और संवेदनशील भाषा है और बहुत सजग दृष्टि। इन्होंने कुछ बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं जो खासी बेबाकी के साथ समय की सचाइयों को उद्घाटित करती हैं। ये लगातार लिखते रहेंगे तो निश्चय ही हिन्दी साहित्य को अपना महत्वपूर्ण योगदान देंगे। इन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं जो आधुनिक हिन्दी कविता का बोध कराती हैं। सुमतींद्र ने भी कुछ अच्छी कविताएँ लिखी हैं। इनके बाद रा. वीलिनाथन, उमाचंद्रन तथा सरस्वती रामनाथन के नाम लिये जा सकते हैं। इन तीनों ने भी कुछ अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

कर्नाटक के हिन्दी लेखकों की स्थिति भी बहुत सुखद नहीं लगती। हालांकि यहाँ कोई चर्चित नाम नज़र नहीं आता, फिर भी कुछ अच्छी मौलिक रचनाएँ लिखने के लिए डा० सरोजिनी महिषी, मा. भ. पेर्ला, अय्या साहब सनदी, कारंत, चंद्रकांत कुसनूरकर आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

इस तरह, दक्षिण भारत के हिन्दी सर्जनात्मक लेखन की मोटे तौर पर स्थिति यही है जो बहुत अधिक संतोषप्रद नहीं, तो बहुत निराशाजनक भी नहीं लगती। इस संदर्भ में, बहुत महत्वपूर्ण दो बातों पर ध्यान देना होगा जो दक्षिण भारत के हिन्दी लेखन की खूबी और खामी वाली बातें हैं। सबसे पहले खूबीवाली बात ली जाय। जब हम सैद्धांतिक दृष्टि से हिन्दी को संपूर्ण देश की भाषा कहते हैं, तो सहज ही इस भाषा में लिखे जानेवाले साहित्य में वही सारी विविधता होनी चाहिए, जो देश के जन जीवन में मिलती है। हिन्दी साहित्य में इस विविधता को भरकर उसे संपूर्णता और अखिल भारतीयता का रूप देनेवाला साहित्य दक्षिण भारत का हिन्दी साहित्य है। इस दृष्टि से इस साहित्य का भरपूर स्वागत होना चाहिए। यहाँ इस बात का भी खुलासा कर देना ज़रूरी लगता है कि जो लोग दक्षिण भारत के हिन्दी साहित्य की भाषा-शैली की अलहदगी और उसमें वर्णित जीवन स्थितियों की नवीनता को देखकर कुटिलता से मुस्कुराते हैं, उनकी बदनीयती की धज्जियाँ उड़ायी जाती रहनी चाहिए और ऐसे लोगों को बार-बार इस सचाई का परिचय दिया जाना चाहिए कि असल में साहित्य को समझना आलू के बोरों की तिजारत करना नहीं है जिसमें किसी खास जगह उगाये जानेवाले आलुओं की ही श्रेष्ठता का दावा करने की आज़ादी मिलती है।

अब यहाँ के हिन्दी साहित्य की एक ख़ास खामी की तरफ़ भी नज़र डालना जरूरी है। वह यह कि हिन्दी के सर्जनात्मक साहित्य की जो मुख्य धारा है

(हिन्दी प्रांतों में लिखे जानेवाले साहित्य की) उसमें, उसका एक हिस्सा बनकर दक्षिण का हिन्दी साहित्य अब तक बह नहीं सकता है। दक्षिण भारत का अब तक ऐसा कोई भी हिन्दी लेखक नहीं हुआ है जिसकी रचनाओं ने हिन्दी प्रांतों के आम पाठकों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचा हो। इस सचाई को स्वीकार कर लेने के बाद सवाल यह उठता है कि ऐसा क्यों है? इसका सबसे बड़ा कारण यह हो सकता है कि दक्षिण के प्रायः हिन्दी लेखक अपनी सहज अभिव्यक्ति की बेचैनी के तहत नहीं, बल्कि परिस्थितिवश एक नई भाषा सीख लेने के अतिरिक्त उत्साह और एक हद तक अतिरिक्त तरजीह पाने की भावना से चालित होकर हिन्दी में लिखने लगते हैं। इस तरह ख़ास मकसदों की बिनाह पर चलनेवाला लेखन अपनी सर्जनात्मक क्षिप्रता को उभार नहीं पाता है और परिणामतः दूसरे-तीसरे दर्जे का लेखन बनकर रह जाता है। अगर यह बात बहुत हद तक सही नहीं होती तो दक्षिण भारत में ही रहकर यहाँ की भाषाओं में लिखनेवाले लेखकों का साहित्य भी यहाँ के प्रायः हिन्दी लेखकों के लेखन की तरह ही दूसरे-तीसरे दर्जे का होता। मगर हक़ीक़त यह है कि दक्षिण की प्रांतीय भाषाओं में लिखा जानेवाला साहित्य देश की किसी भी अन्य भाषा के साहित्य के साथ बिठाये जाने की योग्यता रखता है। इसलिए, दक्षिण के हिन्दी साहित्य के लिए ज़रूरी है कि वह नई भाषा के पर्याप्त ज्ञान के संतोष के रूप में ईजाद न हो, बल्कि समय की सचाइयों को समझने और उन समझी हुई सचाइयों को अर्थ देने की बेचैनी के रूप में अस्तित्ववान हो। तभी यहाँ के साहित्य में वह ऊँचाई आ सकती है, जहाँ खड़े होकर अन्य प्रांतों में लिखे जानेवाले हिन्दी साहित्य से आँख मिलायी जा सकेगी।

दक्षिण भारतीय हिन्दी लेखकों के पचासों और नाम हैं जो यहाँ जान-बूझकर छोड़ दिये गये हैं; क्योंकि वे इस विषय की परिधि में नहीं आ सकते। ऐसे लेखकों में, जैसा कि बताया जा चुका है, अनुवादक, प्रबंध-लेखक वग़ैरह हैं जो हिन्दी में अपने ढंग का महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं मगर ऐसे लोग हिन्दी के सर्जनात्मक साहित्य की सेवा न करके हिन्दी भाषा की सेवा कर रहे हैं और चूँकि सर्जनात्मक साहित्य का भाषाप्रचार से कोई मतलब नहीं होता इसलिए यहाँ प्रचारकों की चर्चा नहीं की गयी है।

हिन्दी को कन्नड़ की देन

न. श्री. रामसुब्रह्मण्यम

बहता पानी निर्मला है। रमते रहने से राम है। वैसे आदान-प्रदान सजीव भाषाओं का प्रधान लक्षण है। भारत-जैसे विशाल राष्ट्र की भाषाओं में हिन्दी भी एक सजीव भाषा है। आसेतु हिमालय पर्यंत इस विशाल भारत की अखण्डता के लिए भावात्मक एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को सक्षम होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

राष्ट्रपिता महात्मागांधी ने भारत की सांस्कृतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक और मानसिक एकता को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से अहिन्दी प्रदेशों में विशेषकर दक्षिण में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ किया। 'जाओ, काम करो' के बदले 'आओ, काम करें' वाली बात को साबित करने के हेतु अपने पुत्र श्री देवदास गांधी को प्रथम हिन्दी प्रचारक बनाकर मद्रास भेजा। तब से अब तक हिन्दी के प्रचार-प्रसार में कर्नाटक की मधुर भाषा कन्नड़ का योगदान मिलता आ रहा है। तब से अब तक सारे कर्नाटक में एक नवीन भाषा चैतन्य का आगमन हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हिन्दी प्रचार की जो स्थिति थी, अब उसमें परिवर्तन गोचर हो रहे हैं। परिवर्तन तो उन्नति की ओर ही है।

हिन्दी प्रचार-प्रसार के लगभग छप्पन वर्षों के इतिहास में बहुमुखी उन्नति हुई है। इस अर्ध शताब्दि में प्रचार कार्य करनेवालों के विचारों में परिवर्तन, परिवर्धन भी हुए हैं। समझने की सुविधा के लिए इस दीर्घ समय को तीन काल-खंडों में विभाजित कर सकते हैं। वे यों हैं—(1) आरंभ, (2) मध्य (प्रचार) और (3) प्रगति।

1. आरंभ काल : आरंभ में हिन्दी प्रचार-प्रसार का काम राष्ट्र की एकता की दृष्टि से पवित्र माना जाता था। सीखनेवाले भी यही समझते थे। प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से ही सभी हिन्दी सीखने में उत्सुकता दिखाते थे।

2. मध्य (प्रचार का समय) : इस काल में आदान-प्रदान के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। परायी भाषा सीखने की इच्छा के साथ-साथ भाषा की

उत्तमोत्तम कृति या कृतियों को अपनी भाषा में लाने तथा अपनी भाषा की उत्कृष्ट कृतियों को हिन्दी में रूपांतरित करने की अभिलाषा कार्यतः परिणत होने लगी। इसलिए इस समय को प्रचार का काल अथवा आदान-प्रदान या अनुवाद का समय कहा जा सकता है।

3. **प्रगति का काल :** इस अंतिम काल में सीखी हुई भाषा में अनुभूति की अभिव्यक्ति का आरंभ हुआ। अर्थात् मौलिक साहित्य-सृजन-धारा प्रवहित होने लगी। इस काल में हीं हिन्दी को कन्नड़ की देन अधिकाधिक है।

उपर्युक्त तीनों कालों को उनके लक्षण के अनुसार आरंभ-काल, आदान-प्रदान-काल और मौलिक सृजन-काल कह सकते हैं। ये तीनों परस्पर एक दूसरे से संबद्ध हैं।

चाहे नवीन भाषा सीखने की प्रवृत्ति हो, चाहे आदान-प्रदान की प्रवृत्ति हो, चाहे मौलिक सृजन की बात, सबमें कर्नाटक का हिन्दी-प्रचार-प्रसार में योगदान कम नहीं है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्य में कर्नाटक के लेखक बंधुओं का सहयोग तद्वारा हिन्दी को कन्नड़ की देन अजर-अमर तथा अविस्मरणीय है।

हिन्दी को कन्नड़ की देन साहित्यिक विभिन्न विधाओं द्वारा लक्षित होती है —कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध तथा समीक्षात्मक एवं अनुसंधान और विविध।

1· **कविता**—साहित्यिक विधाओं में कविता का स्थान प्रभावोत्पादक है। कविता का प्रभाव पाठकों पर दीर्घकाल तक रहेगा। कविता साहित्यिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। कोई भी इसमें आसानी से सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इसमें सफलता पाने के लिए मन की एकाग्रता की, साधना की, अचल तपस्या की अतीव आवश्यकता है। किसी भी महाकाव्य के रचयिता महान तपस्वी ही थे। रामायण के रचयिता आदिकवि वाल्मीकि, महाभारत के वेदव्यास बड़े जितेन्द्रिय थे, श्रेष्ठ संन्यासी व तपस्वी ही थे। यह बात किसी भी देश के, किसी भी काल के कवियों के लिए शतःप्रतिशत लागू होती है।

कविता का आस्वादन करना और बात है, कवि होना और बात है। यह तो प्रसन्नता की बात है कि कन्नड़ के बहुत-से कवि हिन्दी में उदय होकर स्वभाषा व राष्ट्रभाषा की सेवा कर चुके हैं।

हिन्दी प्रचार के कार्य के साथ-साथ कर्नाटक में हिन्दी में काव्य-रचना के प्रति सहज आकर्षण वर्तमान है। सन् 1931-43 के बीच डॉ० हिरण्मय (अवकाश प्राप्त मैसूर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी-अध्ययन तथा अनुसंधान-विभाग के

रीडर) ने कतिपय कविताएँ लिखीं—जो 'हिन्दी-प्रचारक' (अब के प्रसिद्ध द. भा. हि. प्रचार सभा का मुखपत्र-हिन्दी प्रचार समाचार) में प्रकाशित हुई थीं। अवकाश-प्राप्ति के बाद भी डॉ० हिरण्मय हिन्दी-कविता-रचना के काम में पूर्ववत् लगे रहते तो नये कवियों को मार्गदर्शन हो जाता।

कर्नाटक विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष प्रो० आर. के. मुदलियार ने इस क्षेत्र में प्रशंसापूर्ण काम किया है। आपकी 'द्युति-श्रुति-वाहिनी' सन् 1965 में प्रकाशित हुई। इसमें अठारह भाषाओं की कविताएँ दी गयी हैं। ये सभी कविताएँ मौलिक हैं। विशेषता इस बात की है कि मुदलियार ने हिन्दी और अंग्रेज़ी में विस्तृत प्रभावशाली भूमिका लिखी है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं की जो कविताएँ विद्यमान हैं, वे हैं—संस्कृत, कन्नड़, अंग्रेज़ी, अरबी, मराठी, उर्दू, फ़ारसी, पश्तो, सिन्धी, तेलुगु, तमिळ, मलयाळम, गुजराती, असमिया, बंगला, उड़िया और पंजाबी। इन सभी भाषाओं की कविताओं का हिन्दी-पद्य-रूपान्तर भी दिया गया है। प्रत्येक भाषा की चार-चार मौलिक कविताएँ इस पुस्तक में विद्यमान हैं। हिन्दी की चार कविताओं के नाम इस प्रकार हैं—(1) व्यवस्थापन, (2) निरुपाय नरनायक, (3) आत्मा के उद्धार, (4) पंछी और रैनबसेरा।

प्रो० मुदलियार की उक्त पुस्तक की भाषा सरल व सुबोध है। यह एक कुतूहलपूर्ण प्रयोग है। साहित्यिक दृष्टि की अपेक्षा इसकी भाषा—वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक मूल्यवान है।

बेंगलूर के श्री आर. श्यामसुन्दर की चन्द कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। आपकी कविताएँ वर्तमान प्रवृत्तियों से प्रभावित हैं। आपकी 'यह दिया जलता रहेगा' जैसी कविताएँ सुन्दर बन पड़ी हैं।

बेंगलूर के ही श्री प्रताप सुधाकर जी ने चन्द कविताएँ लिखी हैं। आप एक सफल अनुवादक भी हैं।

कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़ में स्थित दा. रा. पुराणिक की भी कई कविताएँ 'भारतवाणी' जैसी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। आपकी नवीन कविताएँ हैं—'गांधी-भारत' तथा 'गोदावरी के किनारे'। आपसे हिन्दी को और भी आशाएँ हैं।

डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति (मैसूर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी-अध्ययन तथा अनुसंधान विभाग के) ने भी हिन्दी में कतिपय कविताएँ लिखी हैं।

'विवेकानन्द', 'श्रद्धांजलि' आदि प्रकाशित कविताओं के अतिरिक्त कुछ अप्रकाशित कविताएँ भी हैं।

डॉ० हिरण्मय तथा श्री ना. नागप्पा जी ने भी 'भारतीय कविता-1953, भारतीय कविता-1954 और भारतीय कविता-1955' में दस कन्नड़ कविताओं के संग्रहों को क्रमशः हिन्दी में रूपान्तरित किया है।

सर्वश्री ए. सी. श्रीनिवासमूर्ति व एस. सी. शिवानन्द शर्मा ने 'महात्मा बसवेश्वर के वचन', उमापति शास्त्री ने 'बसवण्ण के वचन', आर. सी. भूसनूरमठ ने 'बसवेश्वर वचनगळु' आदि का हिन्दी में रूपांतर कर हिन्दी के सारस्वत भण्डार को भर दिया है। इन महानुभावों के अतिरिक्त डॉ० राजेश्वरय्याजी ने (मैसूर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी-अध्ययन तथा अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफ़ेसर) बसव के चुने हुए वचनों को हिन्दी में संपादित कर स्तुत्य कार्य किया है।

इन लेखकों के अतिरिक्त और भी कई उत्साही नये लेखक इस क्षेत्र में अग्रसर हो रहे हैं। इन नये लेखकों और युवा कवियों से साहित्य लोक सदैव आलोकित रहेगा, इसमें सन्देह नहीं।

2. **कहानी**—साहित्य-विधाओं में कहानी का लोकप्रिय स्थान रहा है। कर्नाटक के कई लेखकों ने हिन्दी में मौलिक कहानियाँ लिखने में सफल प्रयत्न किया है। कविता विभाग में उल्लिखित श्री आर. श्यामसुन्दर एक सफल मौलिक कहानी लेखक हैं। 'दक्षिण-भारत' में आपकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। आपकी अन्य कहानियाँ हैं—भग्न प्रतिमा, मैं अभी ज़िन्दा हूँ आदि। 'मैं अभी ज़िन्दा हूँ' एक हास्य-कहानी है।

मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष प्रो० ना. नागप्पाजी हिन्दी में मौलिक कहानियाँ लिखने में अधिक आस्था रखनेवाले हैं। "रसवन्ती", "धर्मयुग" जैसी पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। "चलूँ कि नहीं" यह रसवंती में प्रकाशित हुई है। यह एक व्यंगचित्र है। "माली" धर्मयुग में प्रकाशित हुई है। यह एक स्मृतिरेखा है। 'मधुपर्क' एक सफल कहानी संग्रह है। इस संग्रह में "तांगा" को स्थान मिला है। यह एक स्केच है। भाषा व शैली की दृष्टि से यह एक सफल शब्दचित्र है। आरंभ से अंत तक आकर्षण व शृंखला विद्यमान है। "बुआजी" कहानी हिन्दी गद्य मंजरी (संपादक: डॉ० मे. राजेश्वरय्या, प्रो० मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग) में संकलित है।

डॉ० रामचन्द्रस्वामी जी का "त्रिवेणी संग्रह" (कहानी संग्रह) कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बेंगलूर द्वारा प्रकाशित है।

मैसूर नगर के शारदा विलास हाईस्कूल के हिन्दी अध्यापक श्री केळदि गणपति भट्टजी कन्नड़ और हिन्दी के कवि, कथाकार तथा सफल समालोचक हैं। आपकी कृति 'अमर गाथा' 1967-68 में केन्द्र सरकार से पुरस्कार प्राप्त सचमुच एक अमर गाथा ही है। श्री भट्टजी के अलावा 'रेशम की गुड़िया' के श्री चन्द्रकान्त कुसनूरकर और 'धूपछांह' के श्री केशवराव महागाँवकर को 1966-67 में, 'नवजागरण' के श्री सदाशिव हिरेमठ को 1967-68 में, 'अतिथि-सत्कार' के डॉ० (कु) सरोजिनी महिषी और 'कन्नड़ साहित्य की रूपरेखा' के श्री गुरुनाथ जोशी को, 1968-69 में, 'गल्प विहार' (अनुवाद) के एस. रामचन्द्र और 'श्रीमती कमला नेहरू" के श्रीमती पी. सीतम्मा वैली को 1969-70 में, 'मिट्टी के फूल" के प्रो० पी. वी. वज्रमट्टी, 'नील-कमल' के डॉ० के. मुद्दण्णा को 1970-71 में भारत सरकार से पुरस्कार मिले हैं। इन सभी पुरस्कार-विजेताओं से हिन्दी की श्रीवृद्धि हुई है।

'भारतवाणी' में नये लेखकों की कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। ऐसे उत्साही लेखकों में कुमारी कुमुदिनी खरे और श्री एस. रेवण्णा के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री रेवण्णाजी की कहानी 'स्मृतियों का पर्दा फटा' पुरस्कृत हुई है।

डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति की कहानी—'मैं कोल्हापुर पहुँच गया' सन् 1960 में मद्रास के युवा लेखक संघ में पढ़ी गयी थी और एरणाकुलम के 'साहित्य मण्डल' के द्वारा प्रकाशित हुई है। यह एक हास्य-कहानी है।

आजकल कर्नाटक में कहानी-लेखन का अभ्यास करनेवाले अधिक संख्या में इस क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं। आशा की जा सकती है कि कर्नाटक के कहानी-लेखक हिन्दी-कहानी साहित्य को अपनी अच्छी कहानियों के द्वारा संपन्न करेंगे।

3. **नाटक** :—कर्नाटक के लोग नाटक के क्षेत्र में भी विशेष अभिरुचि रखते हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में उतना अभिनन्दनीय कार्य नहीं हुआ है, फिर भी श्री आर. श्यामसुन्दर-जैसे प्रतिभासंपन्न नाटककार हैं। आपने कविता और कहानियों के अतिरिक्त एकाँकी भी लिखे हैं। 'उमर कैद', 'कोई आया था' जैसे पारिवारिक एकांकी 'दक्षिण भारत' में प्रकाशित हुए हैं।

डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति की 'राष्ट्र की वेदी पर' (पत्र-पुष्प, तुमकूर—चौथा अंक), 'ये विचित्र लोग', 'मैरेज इंटरव्यू', 'मित्रता का मूल्य', 'मुझे

गुस्सा नहीं आता' नामक एकांकी शाला बालकों के लिए लिखे गये हैं। इन एकांकियों का आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु के शाला-रंगमंचों पर सफल अभिनय भी हुआ है। इसके अलावा 'भास का नाट्य लोक' तीन मनोहर कृतियों का संग्रह है। इसमें क्रमशः—(1) भास का स्वप्न (वासवदत्ता)' (2) उदात्त कर्ण (कर्णा-भरणम्), (3) दूतवाक्य—तीनों सफल अनुवाद हैं। 'भास का स्वप्न' एक संपूर्ण नाटक है। यह मुक्त छन्द का सक्षम प्रयत्न है। 'उदात्त कर्ण' एकांकी है। यह एक रूपक है। 'दूत वाक्य' व्यंग्यप्रधान एकांकी है। स्वर्गीय श्री आर. जी. कुलकर्णी (वि. वि. आयोग की योजना के शोध-प्राध्यापक) के शब्दों में "डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति ने हिन्दी के रत्न-दर्पण में भास के नाट्यलोक की तीन मनोहर कृतियों को प्रतिबिंबित किया है।" आपका अनुवाद प्रौढ़ तथा सहजगम्य है।

'दक्षिण भारत' में प्रकाशित श्री के. अप्पण्णा का एकांकी 'परिवर्तन' भी पारिवारिक वस्तु के लिए प्रसिद्ध है। श्री टी. आर. प्रभाशंकर और श्री मृत्युंजय ने भी कन्नड के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। बेंगलूर, हिन्दी प्रचार परिषद के श्री मानप्पा ने 'चित्रकूट' नामक अच्छा ग्रंथ गद्य रूप में लिखा है। मूलतः श्री मानप्पाजी से कन्नड में लिखा गया था, बाद में हिन्दी में किया गया।

एकांकी के अतिरिक्त दो-ढाई घंटे में खेले जाने योग्य नाटक लिखने की ओर भी कुछ लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। पर, यह अभी प्रायोगिक रूप में ही है।

4. **उपन्यास :**—साहित्य के अंतर्गत यह महाकाव्य माना जाता है। इस साहित्य-विधा की ओर कई लेखकों का ध्यान आकर्षित हुआ है। डॉ० एम. एस. कृष्णमूर्ति (मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर) ने इस क्षेत्र में सफल प्रयास किया है। आपने 'अपराजित' नामक मौलिक उपन्यास लिखकर जिसको 1971-72 में भारत सरकार का पुरस्कार प्राप्त हुआ—हिन्दी की इस विधा को समृद्ध कर दिया है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी भाषा स्पष्ट, सरल व शृंखलाबद्ध है। यह एक सफल उपन्यास है।

इसके अलावा कई उपन्यास कन्नड़ से हिन्दी में रूपांतरित हुए हैं। बाबू राव कुमठेकर की रचना 'मिट्टी की ओर' (डॉ० शिवराम कारन्त का उपन्यास), पं० सिद्धगोपाल का 'संध्याराग' (ए. एन. कृष्णराव का उपन्यास), प्रताप सुधाकर का 'हँसगीते' (ता. रा. सु. का उपन्यास), डॉ० हिरण्मय का 'शांतला' (प्रो० के. वी. अय्यर का उपन्यास), सुब्बलक्ष्मी का 'वनशंकरी', डॉ० एन. एस.

दक्षिणामूर्ति का 'रत्नाकर' (जी. ब्रह्मय्या व श्रीनिवास मूर्ति का उपन्यास), एस. रामचन्द्र का 'महाशिल्पी' (एच. बी. ज्वालनय्या का उपन्यास), एन. के. कृष्णमूर्ति का 'उदय रवि' आदि सफल उपन्यास हैं। इस संदर्भ में श्री भारती रमणाचार का 'दान-चिंतामणि' (ब्रह्मय्या का उपन्यास) भी एक सफल अनूदित उपन्यास है।

यद्यपि अनूदित उपन्यास अधिक संख्या में हैं, मौलिक उपन्यास-रचना की ओर भी अब उपन्यासकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। निकट भविष्य में उपन्यास-कला अच्छी तरह बढ़ेगी, यह आशा निराधार नहीं होगी।

5. निबंध तथा समीक्षात्मक : इसी दिशा में पर्याप्त कार्य संपन्न हुआ है। अनेक प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में कन्नड़-भाषा-लेखकों के लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ वर्षों से अधिकाधिक प्रकाशित होते जा रहे हैं। हिरण्मय, प्रो॰ ना. नागप्पा, श्री पी. वेंकटाचलशर्मा, श्री श्रीकंठमूर्ति, श्री गुरुनाथजोशी, श्री काशीनाथस्वामी सारंगमठ, श्री टी.आर. देवगिरिकर, श्री विष्णुराजाराम देवगिरि, श्री प्रधान गुरुदत्त, डॉ. एम. एस. कृष्णमूर्ति, श्री एम. के. भारती रमणाचार, श्री एन. नारायणाचार, डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति, श्री सिद्धगोपाल आदि महानुभावों के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं।

डॉ॰ एन. एस. दक्षिणामूर्ति की कर्नाटक-संस्कृति और कन्नड़-साहित्य का परिचय करानेवाली कृति 'कर्नाटक और उसका साहित्य' सन् 1964 में मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् सन् 1964 में ही श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ की पुस्तक 'कन्नड़ साहित्य का नवीन इतिहास' प्रकाशित हुआ। कन्नड़ेतर भाषी होते हुए भी श्री सिद्धगोपालजी कन्नड़ सीखकर कन्नड़-भाषा या कन्नड़-साहित्य का इतिहास हिन्दी में प्रस्तुत करने का उनका सफल प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है।

मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित कर्नाटक-दर्शन भी कन्नड़-संस्कृति और साहित्य-संबंधी रचना है। इसमें कन्नड़ से हिन्दी में रूपांतरित लेखों के अतिरिक्त हिन्दी में लिखित मौलिक लेख भी वर्तमान हैं। इसके अलावा सर्वश्री शिवकुमार स्वामी का 'कर्मयोग', के. एन. भट्टतिरि का 'वचन शास्त्र रहस्य,' आर. आर. दिवाकर का 'अंतरात्मा को', ना. नागप्पा का 'श्रवण बेलगोला', प्रधान गुरुदत्त का 'सुबोध व्यावहारिक कन्नड़' (मूल लेखक एच. एस. कृष्णस्वामी), शंकर राव कप्पिकेरी की 'कर्नाटक शिवशरणियाँ' के. सी.

सारंगमठ की 'प्रथमाचार दीपिका', शिवकुमारस्वामी का 'बसेबश्वर पुराण' आदि इस क्षेत्र में उल्लेख करने योग्य हैं।

6. **अनुसंधान**: अनुसंधान अथवा शोध कार्य को मौलिक रचना के अंतर्गत मानने के लिए कतिपय विद्वान तैयार नहीं होते। शोध तथा समालोचनाएँ भिन्न तो हैं। फिर भी शोधविषयक चर्चा को यहाँ उठाना उचित मालूम होता है। शोध से दो विषय सामने आते हैं—

(1) लेखक का मौलिक चिंतन-धारा का ज्ञान, और

(2) लखक की आलोचना-दृष्टि का उद्घाटन।

इनके अलावा तुलनात्मक विषय पर काम करनेवाले लेखकों पर गुरुतर दायित्व रहता है। संतुलन पर लेखक का पूरा ध्यान रहना चाहिए।

कर्नाटक से हिन्दी में पी. एच. डी. करने का गौरव सर्वप्रथम डॉ. हिरण्वय को प्राप्त हुआ। आपका शोधप्रबंध है—"हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन।" यह एक पुरस्कार-प्राप्त उत्तम निबंध है।

डॉ० हिरण्मय के पश्चात साहित्य महोपाध्याय डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति को यह गौरव प्राप्त हुआ। आपकी पुस्तक-'हिन्दी और तेलुगु कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन' सन् 1966 में प्रकाशित हुई थी। यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'साहित्य महोपाध्याय' उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-ग्रंथ है। इस ग्रंथ में हिन्दी और तेलुगु कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ अन्य भाषाओं की कहावतें भी तुलना के रूप में दी गयी हैं। इसके तुरंत पश्चात् 'हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन—सूरदास और पोतना के संदर्भ में' का प्रकाशन नवंबर सन् 1967 में हुआ। इसका ग्रंथ-प्रमोचन उस समय के लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डॉ० बी. गोपाल रेड्डी के करकमलों से हुआ। डॉ० गोपाल रेड्डी ने उक्त ग्रंथ की भूमिका लिखी है।

इनके अलावा डॉ० वासु बी. पुत्रन, डॉ० गणपति भट्ट भी पी-एच-डी. प्राप्त विद्वान हैं। इन दोनों के शोध-प्रबंध भी उत्तम निबंध हैं। डॉ० वासु बी. पुत्रन ने हिन्दी और कन्नड़ के राम-काव्य—एक तुलनात्मक अध्ययन (सन् 1500 से 1700 तक) शोध-प्रबंध तैयार किया है। डॉ० गणपति भट्ट ने 'हिन्दी और कन्नड़ के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन—स्वातंत्र्य-आन्दोलन के संदर्भ में,' शोध-प्रबंध तैयार किया है। डॉ० हिरण्मय और डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति के शोध-प्रबंधों के सिवा कोई और शोध-प्रबंध प्रकाश में नहीं आया है।

मैसूर विश्वविद्यालय ने निम्न लिखित विद्वानों को पी. एच. डी (हिन्दी) उपाधि प्रदान की है। विवरण यों है—

सर्वश्री (1) डॉ० एम. एस. कृष्णमूर्ति-1966 में - "हिन्दी और कन्नड़-साहित्यों की मुख्य प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन", (2) डॉ० कृष्णस्वामी अय्यंगार-1967 में—"कन्नड़ और हिन्दी काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन", (3) डॉ० एस. एम. रामचन्द्रस्वामी—1968 में—"हिन्दी और कन्नड़ के राम-काव्यों के पात्र—एक तुलनात्मक अध्ययन", (4) डॉ० पी. सी. मानव—1970 में, (5) डॉ० वी. वेंकटेश - 1971 में (6) डा० पी. एच. सेतुमाधवराव - 1971 में. (7) डॉ. नंजराज अरसु - 1972 में, (8) डॉ० (श्रीमती) राधाकृष्णमूर्ति - 1972 में, (9) डॉ० मे. राजेश्वरय्या - 1972 में, (10) डॉ० एस. वेणुगोपालचार - 1974 में— (11) डॉ० सरसम्मा - 1974 में।

उक्त विद्वानों के शोध-ग्रंथ क्रमश: 4 से 11 तक यों हैं—डॉ० पी. सी. मानव का 'हिन्दी लावणी साहित्य', डॉ० वी. वेंकटेश का 'कबीर तथा बसव', डॉ० पी. एच. सेतुमाधवराव का 'हिन्दी और कन्नड़ के सामाजिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन', डॉ० पी. वी. नंजराज अरसु का 'हिन्दी और कन्नड़ के लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन', डॉ० (श्रीमती) राधा कृष्णभूर्ति का 'दक्षिण भारत की संतपरंपरा', डॉ० मे. राजेश्वरय्या का 'कन्नड़ शरण साहित्य एवं हिन्दी सन्त साहित्य में प्राप्त निर्गुण भक्तिधारा का तुलनात्मक अध्ययन', डॉ० एस. वेणुगोपालचार का 'हिन्दी और कन्नड़ में वैष्णव-भक्ति—एक अध्ययन', डॉ० सरसम्मा का 'हिन्दी कन्नड़ की कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन'।

डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति को कर्नाटक विश्वविद्यालय ने 'हिन्दी और तेलुगु साहित्य में मानवतावाद—तुलनात्मक अध्ययन' के लिए पी. एच.डी. उपाधि प्रदान की है। तुलनात्मक विषय पर विचार करते समय यहाँ एक और ग्रंथ का उल्लेख करना युक्तिसंगत मालूम होता है। उस ग्रंथ का नाम है—'ऊर्मिला-औत्तरेय विरहिणी और दाक्षिणात्य तपस्विनी'। यह ग्रंथ हिन्दी और कन्नड़ भाषाओं में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ के लेखक द्वय हैं—डॉ० मे. राजेश्वरय्या और प्रधान गुरुदत्त।

उपर्युक्त स्वीकृत शोध-ग्रंथों के अतिरिक्त मैसूर कर्नाटक विश्वविद्यालयों में इस समय विभिन्न विषयों पर—तुलनात्मक, आलोचनात्मक आदि पर अनुसंधान-कार्य चल रहा है। आजकल शोध-विद्वानों का प्रवाह-सा आ रहा है, जो विभिन्न साहित्यिक विषयों के संबंध में शोध-कार्य में लगे हुए हैं। उपर्युक्त दो विश्व-

विद्यालयों के अतिरिक्त उत्तर के विश्वविद्यालयों में भी शोध-कार्य बढ़ रहा है। इससे दाक्षिणात्य विश्वविद्यालयों के शोध विद्वानों को लाभान्वित सिद्ध होगा, यह कहना संदेहास्पद है। आज के, अब तक के सब शोध-विद्वानों के शोध-ग्रंथ यथासमय स्वीकृत हो जाएँ, तो (उत्तर के विश्वविद्यालयों को छोड़कर) हिन्दी-कन्नड़-साहित्यों का संबंध अधिकाधिक निकट हो जाएगा तथा कन्नड़ की देन हिन्दी के लिए अविस्मरणीय होगी।

7. **विविध :** कर्नाटक के लेखक कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध तथा समीक्षात्मक आदि साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त कोश-ग्रंथ तैयार करने में भी अग्रसर हैं। इन कोशों से मौलिक साहित्य-रचना तथा अनुवाद कार्यों में अवश्य सहायता प्राप्त होगी।

"हिन्दी-कन्नड़-कोश" के निर्माताओं में सर्वश्री जंबुनाथन, गुरुनाथ जोशी के नाम विशेष गौरव के साथ स्मरण किये जाते हैं। "कन्नड़-हिन्दी-कोश" के संपादकों में सर्वश्री गुरुनाथ जोशी, अश्वत्थ नारायण के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। इन कोशों के अलावा डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्तिजी का "कन्नड-हिन्दी-कोश" (कन्नड़ तथा नागरी लिप्यंतर के साथ) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह कोश विशेष प्रयत्न का फल है। इससे कन्नड़-हिन्दी दोनों भाषा-भाषी विद्वान अवश्य लाभ उठा सकेंगे। इस कोश से दोनों भाषाओं के भण्डार ओतप्रोत हो गये। विशेषकर कन्नड़ की देन ही हिन्दी को अधिक मिली है।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व जीवनी, गद्य कृतियों का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। डॉ. रामचन्द्र स्वामी ने "केंपेगोर" नामक जीवनी का हिन्दी में अनुवाद किया है। यह कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बेंगलूर द्वारा प्रकाशित है। डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति की दो पुस्तकें—(1) पंप रामायण (गद्य में), (2) जैमिनि भारत (गद्य में) उल्लेखनीय हैं। श्री आर. आर. दिवाकर का 'नागरिक (नाटक)' (कन्नड़ से अनुवाद), एम. राजेश्वरय्या और प्रधान गुरुदत्त से अनूदित 'अंगुलिमाल' भी हिन्दी को कन्नड़ की महान देन हैं। सर्वश्री प्रो० ना. नागप्पा, प्रो. सच्चिदानन्द, देवे गौड, मे. राजेश्वरय्या आदि विद्वानों ने शालाओं के लिए उपयोगी हिन्दी पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर हिन्दी-साहित्य भण्डार को भर दिया। पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनेवालों में सर्वश्री एस. एन. लोकनाथन, के. एस. वेंकटरामय्या चिक्क नरसिंहय्या आदि सुख्यात हुए हैं।

इस समय कर्नाटक के कई उदीयमान लेखकों की कृतियाँ हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं, जिनकी पूरी जानकारी अप्राप्त है। अर्थाभाव के कारण कई उत्कृष्ट

रचनाएँ अप्रकाशित ही रह गयी होंगी। कई ऐसे कर्नाटक के विद्वान होंगे, जिन्होंने अपनी मातृभाषा द्वारा हिन्दी-सेवा कर हिन्दी साहित्य को संपन्न कर दिया है, जो गूदडी के लाल के जैसे रह गये हों। इन गूदड़ी के लालों की कृतियों को भी प्रकाश में लाना संपन्न हिन्दी-प्रचार, हिन्दी-सेवा संस्थाओं का कर्तव्य है।

आरंभ से अब तक—स्वातंत्र्य के पूर्व से आज तक साहित्य की विभिन्न विधाओं द्वारा कर्नाटक-जैसे विशाल राज्य के विद्वानों की, उनकी मातृभाषा कन्नड़ की देन राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्रशंसनीय ही नहीं, अविस्मरणीय भी है।

हिन्दीतर भाषी का हिन्दी लेखन

⊕ रमेश चौधरी, 'आरिगपूडि'

कोई व्यक्ति क्यों लिखता है? क्यों ऐसी भाषा में लिखता है जो उसकी मातृ-भाषा नहीं है? क्या सृजनात्मक लेखन केवल मातृभाषा में ही सम्भव है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका एक उत्तर नहीं है।

सृजनात्मक लेखन एक प्रसव की प्रक्रिया है, इसलिए यह पीड़ापूर्ण है, यद्यपि इसका अपना विशेष सन्तोष भी है। यदि इसमें सृजन का माधुर्य न हो तो यह इतना आकर्षक भी न हो, सृजन के पीछे एक प्रकार की विवशता है। जो सृजनशील नहीं है, वह ठोके-पीटे जाने पर भी वह सृजनशील नहीं हो सकता और जो है वह चाहे परिस्थितियाँ कुछ भी हों, स्रष्टा बन कर ही रहता है और परिस्थितियाँ प्रायः प्रतिकूल ही होती हैं, यदि लेखक में मान्यता-प्राप्ति की बड़ी तृष्णा हो।

सृजनशील स्वभाव का अभिशाप ही इस तृष्णा का होना है, यह एक साथ प्रेरक शक्ति है, और दुर्बलता भी, मेरा अर्थ सृजनात्मक प्रवृत्ति से है, जो मनुष्य के निजी निर्माण की परिधि से बाहर है। यह स्वभाव-प्रतिभा जन्मजात है जब कि इसका विकास प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है। एक व्यक्ति लिखता है, क्योंकि वह लिखे बगैर रह नहीं पाता है। समान रूप से प्रतिभा नहीं बँटती, पर लिख-लिखकर यह आंकी जाती है। यही कारण है कि इधर-उधर का लेखन भी बहुत होता है।

मेरा मतलब शौकिया लेखन से नहीं है न ही अनुकरणात्मक लेखन से ही, न गवेषणापूर्ण लेखन से ही, पर उस लेखन से है जो एक तरह से नैसर्गिक रूप से स्वतः प्रस्फुटित होता है, या जिसका विस्फोट होता है।

प्रतिभा की भेंट जिसे मिलती है, यदि उसे साधना की प्रेरणा न मिले तो प्रतिभा भी अरण्य पुष्प-जैसी है। प्रतिभा तो बीज रूप है, इसको विशाल वृक्ष का रूप देना अपना भार है, यह एक साधना है और यह साधना ऐसी होती है कि व्यक्ति प्रतिभा के पीठ पर भी कभी भी "बलि" हो जाता है—लौकिक मापदण्डों के अनुसार।

कवि यश का प्रार्थी होता है, पर वह एकमात्र प्रेरणा ही नहीं है। फिर वह लिखना भी क्या है—"अगर अपना कहा आप ही समझे, मजा तो क्या समझे, कहने का जब है, एक कहे और दूसरा समझे"—यह शायद गालिब के ज़माने की बात है, पर अब तो मामला उलटा हो चला है; वही लेखन अच्छा "समझा" जाता है, जो और तो क्या समझेंगे, लेखक स्वयं ही न समझ पाये। ये ही साहित्य के मनोवैज्ञानिक शिल्प कहलाये जा रहे हैं !

मैं सोचता हूँ कि लेखक जन्मत: अभियन्ता होता है, वही लेखन सार्थक है जो समाज के सन्दर्भ में प्रगतिशील है और सोद्देश्य है। लेखक वह प्रबुद्ध व्यक्ति है जो मार्ग निर्णीत ही नहीं करता, उसे प्रकाशित भी करता है। लेकिन यह सब साधना करते ही उसको स्पष्ट होता है। जन्मजात प्रतिभा के विकास का भार साधना की भावना, अभियन्ता की भावना, वैयक्तिक परिपूर्ति की आकांक्षा—इन सबकी एक समन्वित प्रेरणा-शक्ति किसी व्यक्ति को लेखक बनाती है।

लेखन, लेखक के लिए अपने आप एक पुरस्कार है। लेखन ही ऐसी वृत्ति है जो लेखक एकांत में समाज की व्यापक सहायता के बगैर कर सकता है। यह कष्टप्रद है और आनन्दप्रद भी। लेखन कोई अनवरत क्रिया नहीं है, आवर्तक है, अनिश्चित है।

जब एक लेखक को आकस्मिक रूप से कभी-कभी कुछ मान्यता मिलती है तो दूसरों के लिए वह होड़ का कारण भी बन जाती है। इस मान्यता और प्रतिष्ठा का स्थान समाज में बहुत ऊँचा है। इसलिए कभी-कभी यश के पिपासी लेखन का अवलम्बन करते हैं, यद्यपि उनकी जन्मजात प्रतिभा उनकी पिपासा के अनुपात में कम होती है। यही कारण है कि लेखकों के क्षेत्र में जितनी भीड़ है, उतनी किसी और क्षेत्र में नहीं है। हर ऐरा-गैरा जो कुछ और नहीं हो सकता, लेखक बनने का हौसला रखता है। अत: एक उत्तम लेखक होना एक साथ एक बड़ी चेतावनी है, और उपलब्धि भी।

यश अभौतिक है, नितांत आकस्मिक, सुतरां अनिश्चित। यश को लेकर लेखकों की उत्कृष्टता या निकृष्टता का श्रेणीकरण होता है, जो बहुत आकर्षक और आसान तो है, कदाचित उचित और उत्तम नहीं। एक लेखक वह है जो जो कुछ लिखता है उसकी जिन्दगी में ही खतम हो जाता है, एक वह जो वह लिखता है, उसकी जिन्दगी के कुछ दिन बाद रहता है, और तीसरा वह जो सदा अमर रहता है, भले ही वह जिन्दगी-भर अप्रतिष्ठा और दारिद्रय में रहा हो।

गनीमत है यह श्रेणीकरण लेखक नहीं करता, समालोचक या 'मूल्यांकनकार' करता है। अगर यह सब मन में सोचकर कोई लिखने बैठे, तो शायद वह हाथ में लेखनी लिये बैठा रहा, और कुछ लिख नहीं पायेगा। यह गलत धारणा है कि लेखक होना बहुत आसान है, किन्तु सत्य यह है कि अस्पष्ट, गतिमान, परिवर्तनशील विचार-शृंखला को निश्चित शाब्दिक प्रतीकों में बांधना बहुत कठिन है।

जो लेखक होता है कुछ और हो नहीं पाता, और जो कुछ होकर लेखक बनता है, प्रायः लेखक बन नहीं पाता। इसके अपवाद हैं, जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। प्रसिद्ध कविता संग्रहों में उन कवियों की कृतियाँ ही अधिक हैं, जो कवि मात्र थे, पदस्थ संपन्न शौकिया कवियों की नहीं। साहित्य का इतिहास साक्षी है कि वही इतिहास में शामिल है जो जन्मतः प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार है।

सृजनशीलता जन्मजात स्वभाव हो सकती है, और इस स्वभाव के आधार पर ही कोई लेखक हो सकता है, पर लेखन भाषण की तरह सम्प्रेषण का, अभिव्यक्ति का माध्यम है, उससे अधिक सशक्त और स्थाई। सृजनशीलता भले ही कम हो, पर अभिव्यक्ति की आवश्यकता सभी में है। कलाकार जो लेखक की तरह सृजनशील है, जब अपनी कला की व्याख्या करना चाहता है तो लेखन का सहारा लेता है; इसी प्रकार एक संगीतज्ञ या कोई और कलाकार। फलतः लेखक का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है, साहित्य के प्रचलित और सम्मानित विधाओं के कारण, लेखन के आयाम भी बहुत विस्तृत हो जाते हैं। ये इतने विस्तृत हैं कि इनमें अच्छे-बुरे सभी समा जाते हैं।

लेखन अभिव्यक्ति हो सकती है, यानी बाह्य क्रिया, पर वस्तुतः यह अन्तर की यात्रा है, गहन अनुसाधन है, जो अत्यन्त कठिन कार्य है।

सृजनशील व्यक्ति वैज्ञानिक दृष्टि से क्या है, इसकी व्याख्या असम्भव है। किन्तु इस कारण उसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। वह कुछ-कुछ मनुष्य की बुद्धि की तरह ही है, जो प्रकृति के रहस्य को तो शायद सुलझा सकती है, पर अपनी सृष्टि की ग्रन्थि नहीं सुलझा सकती।

अब है भाषा का प्रश्न। कोई व्यक्ति चाहे बहुभाषाविद हो, पर वह लिखता उसी भाषा में ही है, जिसपर उसका सबसे अधिक अधिकार होता है। यह परिस्थितिवश वह भाषा भी हो सकती है, मातृभाषा नहीं है—जैसे मेरी ही।

जो अपनी मातृभाषा में लिखते हैं, उनको अवश्य कुछ अतिरिक्त लाभ प्राप्त होते हैं, परिवेश और प्रचलन के। पर साहित्य के समग्र विश्लेषण में ये सतही

लाभ उतना महत्व कदाचित नहीं रखते। क्योंकि साहित्य केवल भाषागत ही नहीं होता, यद्यपि भाषा इसका आवश्यक आधार है। अच्छे-बुरे साहित्य के तत्व कुछ और हैं, जो भाषा से भिन्न हैं। इसीलिए कोई साहित्य एक भाषा से दूसरी भाषा में अनूदित होकर भाषागत सौन्दर्य भले ही कुछ खो बैठता हो, पर उसके साहित्यिक तत्वों की प्रायः क्षति नहीं होती।

प्रचलन का लाभ यह है कि एक व्यक्ति का साहित्य तुरन्त एक ऐसे परिवेश में प्रचलित हो जाता है, जिससे वह परिचित है, और जो उसकी रचना में वर्णित है, इस तरह लेखक, पाठक की रचना के आधार पर तादात्म्य बढ़ता है, अधिक होता है, और यह संतोष भी मिलता है कि एक रचना पढ़ी और समझी जा रही है। लेखक किसी भी स्तर का हो, उसका साहित्यिक परिप्रेक्ष्य कुछ भी हो, व्यक्तिगत मूल्य कुछ हो तो किसी न किसी दशा में वह दूसरों के लिए भी मिलता है, क्योंकि वह जो लिख रहा है वह मानव समाज से सम्बन्धित है। वह अपने को उस समाज का अनिर्वाचित प्रतिनिधि समझकर उसको प्रक्षिप्त करता है।

एक साहित्य वह होता है, जो लेखक अपने सिरे से पाठक की तथाकथित अभिरुचियों को बिना पूर्ण किये लिखता है, इससे उनकी अभिरुचियों की आंशिक पूर्ति अवश्य होती है, क्योंकि लेखक भी स्वयं पाठक है। और दूसरा वह जो पाठक के सिरे से लिखा जाता है, यानी उसके मनोरंजन के लिए। बल उनकी बौद्धिक आवश्यकताओं पर न होकर भावुक अभिरुचियों पर होता है।

मातृभाषा में लिखनेवाले लेखक को उस भाषाक्षेत्र में सहसा संवेदनशील पाठक मिल जाते हैं, और यह उसकी साधना के लिए सबसे अधिक प्रोत्साहक हो सकता है। इन लाभों से, वह लेखक जो मातृभाषा में नहीं लिख रहा है, कुछ हद तक वंचित रहता है।

मानव का अन्तर, उसकी संवेदनायें, सर्वत्र एक-सी हैं, भले ही देश और भाषायें भिन्न हों। भौगोलिक और भाषासंबंधी भिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय समाज एक-सा ही है, एक-से ही इसके रस्म-रिवाज़ हैं। यह मोटे तौर पर धर्मानुशासित है। यदि साहित्य समाज का चित्र है, तो हिन्दीतर हिन्दी लेखक, और जन्मतः हिन्दी भाषा के लेखक, इस विषय में एक ही स्तर पर हैं।

अखबारी कार्य, समालोचना, निबन्ध आदि सीखी भाषा में लिखे जाते हैं और लिखे भी जाते हैं, भले ही लेखक का इस भाषा पर उस प्रकार पूर्ण अधिकार न हो, जिस प्रकार कि उसका अपनी भाषा पर है, पर ये साहित्य की उपान्त विधायें ही हैं। इनमें प्राधान्य विषय का है, परिप्रेक्ष्य का, भाषा गौण है। यह ऐसे साहित्य हैं,

जिसको "स्वाभाविकता" की उतनी अपेक्षा नहीं है जितनी की सृजनात्मक सहित्य की। सृजनात्मक साहित्यकार के लिए यह समस्या और उलझ जाती है। इस पृष्ठभूमि में यदि वह मातृभाषेतर भाषा में लिख सकता है। इसके पीछे उसकी शिक्षा के कारण हैं। वह किस माध्यम में पढ़ा-लिखा, कहाँ पाला-पोसा गया आदि यदि वह उस क्षेत्र में ही, उस क्षेत्र की भाषा के माध्यम में शिक्षित हुआ है, तो वह क्षेत्रीय भाषा ही उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए सबसे अधिक उचित साधन है; यद्यपि उसकी मातृभाषा कोई अन्य भाषा है।

मातृभाषा की कोटि में अब कुछ भाषाशास्त्रज्ञ "जन्मभाषा" को भी रखने लगे हैं, और यह वर्गीकरण ठीक ही है। यह तो कैफ़ियत भी हुई, असलियत कुछ और है, जो लेखक के सामने पाठकों की ओर से दुराग्रह और पूर्वाग्रह के रूप में आती है। पाठक कभी-कभी लेखक के नाम से जाता है, यह ऐसा नाम अगर हो, जो उनके क्षेत्र का नहीं है, तो उसकी धारणा तुरन्त बन जाती है कि वह एक ऐसे लेखक की रचना पढ़ रहा है, जो अपनी मातृभाषा में नहीं लिख रहा है। और यह दुर्धारणा निर्दोष लेखक को सदा दण्डित करती रहती है।

मेरी यह स्थापना है कि साहित्य हमेशा शिक्षित समाज के लिए शिक्षित व्यक्ति द्वारा, एक सीखी हुई भाषा में निश्चित साहित्यिक नियमों के अनुसार बनाया जाता है। यदि साहित्य की भाषा बोलचाल की भाषा के अधिक समीप है, तो इसको आवश्यकतानुसार जानबूझकर बनाया जाता है। मातृभाषा के लेखकों को भी उसका व्याकरण पढ़ाने पर ही आता है और आत्म-विश्वास उसके अध्ययन से ही पैदा होता है। उसको कहना न होगा कि कुछ अतिरिक्त सुविधाएँ अवश्य प्राप्त हैं। परन्तु व्याकरण सभी के लिए एक ही है। और एक भाषा, क्षेत्र कुछ भी हो, सबके लिए एक ही तरह, एक ही ढाँचे में पढ़ायी जाती है। उसका व्याकरणसम्मत रूप एक-सा है।

भाषा के दो रूप हैं, एक वह जो व्याकरणसम्मत है, दूसरा वह जो प्रचलित तो है, पर व्याकरणसम्मत नहीं है, किन्तु प्रचलित होने के कारण वह कालान्तर में प्राय: व्याकरणसम्मत बन जाता है। मातृभाषा के लेखक को "प्रचलित पदावली" या मुहावरे जरूर मिल जाते हैं। इन सबके होते हुए भी अगर साहित्यिक तत्व घटिया है, तो रचना घटिया है।

मैं यह कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि साहित्य सभी सीखी हुई भाषा में लिखते हैं, उस हद तक वह लेखक भी जो मातृभाषा में नहीं लिख रहा है, मातृ-भाषा के लेखकों का समकक्षी है।

मातृभाषा का लेखक अपनी रचना को पात्रोचित भाषा में लिखकर उसको अधिक स्वाभाविक बना सकता है, जो ऐसे व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है जो उस भाषा के प्रचलन के क्षेत्र में न रहता हो, न ही उसकी वह मातृभाषा हो। यह साहित्य की कमज़ोरी ही है, अगर उसमें क्षेत्रीय "स्वाभाविकता" नहीं आती है।

हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक अपने ही क्षेत्र के बारे में, एक सीखी हुई भाषा में जिसपर उसका अधिकार है, लिखता है, तो इस "स्वाभाविकता" की आवश्यकता ही नहीं है। पर इस हालत में भय यह रहता है कि लेखक की स्वतंत्र रचनाएँ अनुवाद समझी जाती हैं, और अनुवाद होने के कारण वह उस भाषा के मौलिक साहित्य में परिगणित नहीं होती। यह वास्तव में बहुत बड़ी असुविधा है। अन्यायपूर्ण। लेकिन यह ऐसी बात है, जिसका कम से कम फिलहाल कोई इलाज नहीं है। लेखक भोंपू लेकर अपनी पुस्तक की मौलिकता घोषित नहीं कर सकता।

जहाँ तक हिन्दी का सन्दर्भ है, यह भारत के बहुत कम लोगों की मातृभाषा है, परन्तु यह भारत के सबसे बड़े भाग की शिक्षा की भाषा है। इसलिए इसमें ऐसे ही अधिक लेखक हो सकते हैं, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। हो सकता है कि इसी कारण यह भाषा दूसरों को अपनाने में अधिक उदार है। किन्तु इसपर क्षेत्रीय और प्रान्तीय प्रभाव है, जो हमेशा भाषा-जन्य नहीं होते। इसके साथ राजनीति भी अटकी हो सकती है। पर सम-सामयिक साहित्य इसके सर्वथा मुक्त रह सकेगा, यह सोचना अस्वाभाविक है। जो सम्प्रति सुधारा नहीं जा सकता, उसे सह लेने में ही अक़लमन्दी है। यह निर्विकल्प विवशता है।

मातृभाषा किसीकी कोई भी भाषा हो, पर हर भारतीय की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। राष्ट्रभाषा के नाते सभी इसको अपना मान सकते हैं। कई इसको आत्मीय समझकर इसमें लिखते भी हैं। इस दृष्टि से यह और भारतीय भाषाओं से भिन्न है। किन्तु कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह राष्ट्रभाषा अपने प्रान्तीय भाषा के स्तर से ऊपर उठने में राजनैतिक कारणों से लड़खड़ा गयी हो। कई में यह धारणा भी हो सकती है कि हिन्दी जिनकी मातृभाषा मानी जाती है, वे इसपर अपना स्वत्वाधिकार समझते हैं। यह उनके लिए अधिक अपनी है, बजाय दूसरों के लिए। यह धारणा होनी तो नहीं चाहिए, पर यह कहना कि नहीं है, शायद गलत होगा।

क्योंकि समाज एक है राष्ट्रभाषा एक है और यह राष्ट्रभाषा ऐसी है, जो कई भाषाओं का सम्मिलित रूप है, इसलिए उदीयमान लेखकों के लिए यह एक अतिरिक्त

प्रलोभन भी हो सकता है। इस दृष्टिकोण से कोई भी राष्ट्रभाषा के लिए 'अहिन्दी' नहीं हो सकता। हिन्दी-अहिन्दी का वर्गीकरण, मेरी राय में, न राष्ट्रभाषा के हित में है, न अन्य भाषाओं के हित में ही। इस कारण भाषासम्बन्धी कुछ ऐसा वातावरण बन जाता है, जो स्वस्थ नहीं होता। हो सकता है कि इसके पीछे हिन्दीतर भाषियों को प्रोत्साहित करने के स्वस्थ कारण भी हों।

हिन्दीतर भाषी लेखक जब यह अनुभव करने लगते हैं कि उसको 'मान्यता' केवल इसलिए ही दी जा रही है कि वह अहिन्दी है, भले ही वह सरकारी प्रोत्साहनों से प्रोत्साहित होता हो या न हो, परन्तु कहीं उसके मन में एक हीनभावना भी बन जाती है। उसको यह भास होने लगता है कि उसकी प्रान्तीयता और उसके 'हिन्दी' होने के तथ्य को आवश्यकता से अधिक महत्ता दी जा रही है। और उसके लेखक के रूप को पहिचानना नहीं जा रहा है। इससे लेखक में एक प्रकार की कटुता आ जाती है। उसके लेखन का प्रचलन सीमित हो जाता है। उस प्रोत्साहन से लाभ ही क्या जो उसके लेखन को ही, जिसके लिए वह प्रोत्साहित किया जा रहा है, कुंठित कर दें।

मान्यता के लिए लिखना अस्वस्थ है, पर मान्यता की इच्छा स्वाभाविक है। यह सोचना और कहना गलत है कि साधनाशील लेखक सदा मान्यता-निरपेक्ष रहता है, आदर्श के स्तर पर यह अवश्य सत्य है, पर कब तक कोई आदर्श के स्तर पर रह सकता है, यदि ऐसा करना स्वभाव के प्रतिकूल हो। कभी कभी मान्यता की इच्छा प्रबल हो उठती है और लेखक चाहता है कि उसकी रचनाओं का उचित मूल्यांकन हो और तदनुसार उसको मान्यता मिले। यह मान्यता हिन्दीतर लेखकों को कम ही मिल पाती है। इनको इतना "प्रोत्साहित" किया जा रहा है कि उनकी कृतियों की महत्ता कभी-कभी अवहेलित रहती है। मान्यता की अपेक्षा भले ही कोई न करे, विरले ही ऐसे हैं, जो लाभ और अलाभ, जय और पराजय से ऊपर होकर मान्यता की प्राप्ति पर प्रसन्न हो।

लेखक को भी उसकी साधना के बावजूद, आशा-निराशा, सफलता-असफलता भले ही आदर्श के स्तर पर तंग न करें, पर वास्तविकता के स्तर पर तो करते ही हैं। हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक का इस विषय में औरों से अधिक संक्षोभ्य हो जाना स्वाभाविक है।

कभी-कभी वर्तमान परिस्थितियों में लेखक में कटुता भी आ जाती है, फिर वह अपने को समझाने की कोशिश करता है कि कटुता भी उसका मूल धन हो सकती

है—उसको अधिक परिश्रम और लम्बी साधना के लिए उत्प्रेरित कर सकती है। किन्तु यह कहना असत्य है कि कटुता होती ही नहीं है।

मान्यता भौतिक रूप से गनीमत है, मापी-तोली नहीं जा सकती। यह वायुमण्डल की तरह अनिश्चित है, आज है कल नहीं है, इसके बारे में दार्शनिक हो जाना ही अच्छा है। किसको कब मन के मुताबिक मान्यता मिली है? क्या मिल सकती है? मान्यता की आकांक्षा और मान्यता की प्राप्ति में जो भी कुछ यह है, हमेशा लम्बा-चौड़ा फासला रहा है और रहेगा।

यदि कोई किसीको 'मान्य' समझता है, तो वह उस अंश तक अपने अहं को दबा रहा होता है और यह 'दबाना' हर कोई आसानी से नहीं कर पाता। 'अमान्य' होने के भी हैं। मान्यता कभी निष्क्रियता में परिणमित हो जाती है, जो लेखक के लिए सबसे अधिक घातक है—यह लेखक के अस्तित्व को ही मिटा देती है।

भारत में ऐसा लगता है कि अंग्रेजी लेखकों को ही शायद मान्यता मिलती है, क्योंकि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग, जिनका समाज में 'ऊँचा' स्थान है, वे उनको उभारते हैं। यद्यपि उनका लेखन-स्तर अंग्रेजी भाषियों के लिए अनहोनी अद्भुत वस्तु से अधिक महत्ता नहीं रखता।

पुस्तकें खरीदकर पढ़नेवाले कम हैं और जो खरीद सकते हैं, वे अंग्रेजी की पुस्तकें अधिक खरीदते हैं और जब कोई पढ़ा ही न जाय तो मान्यता कहाँ से मिलेगी? जो कुछ मान्यता लोगों को कभी-कभी मिलती है, ऐसा लगता है, वह इसलिए कि वे पढ़ाये जाते हैं या पाठ्य-पुस्तकों में उद्धृत होते हैं। उनको भी संभवतः वह 'मान्यता' नहीं मिलती जिसके कि वे वस्तुतः अधिकारी हैं।

भारतीय भाषा के लेखक को ही मान्यता कब मिलती है? उसको तो और भी कम जो अपनी भाषा में न लिखकर दूसरी भाषा में लिखता है, भले ही वह राष्ट्र-भाषा हो। यह सत्य हर कोई जानता है। यह जानते हुए भी, मान्यता की लालसा जो स्वाभाविक है, बनी रहती है। पर वह भी जानता है कि यदि मान्यता न भी मिलती तो उसे लिखते रहना चाहिए; क्योंकि वर्तमान परिस्थितियों में वह मिल भी नहीं सकती। वह जानता है कि वह उपेक्षित होगा, इसलिए वह हताश नहीं होता। यह अच्छा ही है। पर इसका दुष्परिणाम भी है जो हिन्दीतर भाषी राष्ट्रभाषा में लिखता है, वह न पूरे तौर पर 'राष्ट्रभाषा' का ही हो पाता है, न अपनी भाषा का ही। क्या वह इसलिए अपना सृजनकार्य अनुवाद तक ही सीमित रखे? क्या वह राष्ट्रभाषा में लिखना छोड़ दें, मातृभाषा में ही लिखें? राष्ट्रभाषा

को तथाकथित हिन्दी भाषियों के लिए छोड़ दें? ये विकल्प अवश्य हैं—पर मुझ-जैसे लेखक के लिए इस समय में स्वीकार्य नहीं है।

मेरा अनुभव है कि हिन्दी भाषा-भाषी, औरों की अपेक्षा दूसरों को अपनाने में उदार हैं—इतने उदार कि उन्होंने अपने आक्रांताओं को भी अपनाया है, हिन्दीतर हिन्दी लेखक तो आत्मीय हैं। मैं यह चाहता हूँ कि यह उदारता व्यापक हो और ऐसा वातावरण बने कि कोई भी लेखक, जो राष्ट्रभाषा में लिख रहा हो, यह न अनुभव करे कि वह अरण्य रोदन कर रहा है और अधिक से अधिक लोग राष्ट्रभाषा में लिखें।

लेखन तो राष्ट्रभाषा के चलन के साथ बढ़ेगा; पर हमें यह देखना है कि कोई भी लेखक अकारण एक भाषा-भाषी की दुर्धारणाओं का शिकार न हो। राष्ट्रभाषा का साहित्य भी सच्चे अर्थों में तभी देशव्यापी राष्ट्रीय होगा, जबकि इतर भाषा-भाषी इसमें लिखेंगे और इसको अन्य भाषाक्षेत्रों के साहित्य और संस्कृति का प्रतिनिधि बनायेंगे।

[साभार: 'पूर्णकुंभ' भारती साहित्यकार प्रतिष्ठान, दिल्ली द्वारा आयोजित (27-29 दिसंबर, 1970 में हैदराबाद में सम्पन्न) प्रथम अखिल भारतीय हिन्दीतर भाषा-भाषी हिन्दी लेखक समारोह के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका।]

हुए विद्वानों में से डा. जयरामन का भाषण विषयोचित गांभीर्य के साथ मार्क्स के प्रभाव से युक्त था। सभासद मंत्रमुग्ध-से उनके गंभीर गर्जन का श्रवण कर रहे थे जिसमें हिन्दी के सरकारी काम-काजों में विकास के लिए आवश्यक गति-विधियों का परिचय दिया गया।

चौथे दिन की रात को एक विराट कविसम्मेलन हुआ जो रात-भर चलता रहा। शिवमंगलसिंह सुमन ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। प्रथमतः विदेशों से आये हुए हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाएँ सुनायीं। कविसम्मेलन अकसर मस्ती के आलम से होते हैं और इस कवि-सम्मेलन में भी हाडतोड़ सर्दी के बावजूद मस्ती का आलम छाया हुआ था। अब हम किस-किस कवि की गणना करें। काव्य-पाठ में तारतम्य होता ही रहता है; किन्तु अनुभूतियों के विस्तार में अवरोध नहीं होता। बालकवि बैरागी और काका हाथरसी की कविताएँ खासकर तृप्तिदायक और जब हम सबेरे करीब चार बजे उनींदी आँखों व डगमग पगों के सहारे सम्मेलन के जगमग मग से निकले तो बिलकुल दूसरे ही संसार में थे।

सम्मेलन के आगन्तुकों की वर्धा तक ले जाने की एक योजना भी प्रबंधकों ने कार्यान्वित की थी। लेकिन हम थके हुए थे और लौटकर आने की व्यवस्था भी करनी थी। जब नागपुर स्टेशन में हम जयन्ती जनता एक्सप्रेस में आरूढ हुए तो हमारे दिल बहुत भारी थे। चेहरे उतरे हुए थे। हम सब यही सोचते हुए वापस आये कि कोई ऐसी युक्ति हो तो कितना अच्छा होता कि जिससे इन चंद दिनों के सुखानुभव सदा के लिए व्याप्त हो जायें और हिन्दी सहस्र सहस्र कण्ठों की मणिमाला बन जाये। जी हाँ, एक कवि ने ठीक ही कहा है कि सभी सम्पदाओं से संतोष-धन ही बहुत बड़ी है, बढ़िया है जिसकी स्मृति तक बरसों तक, बरसों के बाद भी सुख देती रहती है!

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

परीक्षा-विभाग की सूचना

हिन्दी प्रचारक परीक्षाएँ दिनांक 23-3-75 से 27-3-75 तक चलेंगी। उसके लिए आवेदन-पत्र भेजने की अंतिम तारीख़ 5-3-1975 है।

दि. 18-2-1975

परीक्षा मंत्री

सुयोग्य सहयोगी श्री गोविन्द अवस्थी
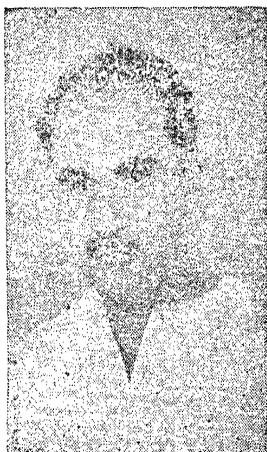
हमारी सभा के विकास में लगन के साथ सहयोग देनेवाले यह कर्मठ सेवातुर व्यक्ति अब सेवानियम की प्रतिबद्धता पर अवकाश ग्रहण कर रहे हैं।

श्री अवस्थी की दिलदार शख्सियत कभी पीढ़ियों या तबकों की हैसियतों में फ़रक महसूस करनेवाली नहीं रही। इस सर्वप्रिय सौम्य व्यक्तित्व की छाप इनकी हर बात में पायी जा सकती है।

जून 1938 को सभा की सेवा में आये और नवम्बर 1974 से अवकाश पा गये। सेवा के इस लंबे अरसे को आपने उत्साही प्रचारक, सुदक्ष प्रेस-व्यवस्थापक, फिर अर्थ-मन्त्री, व्यापार-मन्त्री, संयुक्त-मन्त्री के पदों पर काम करते हुए तय किया है। आभार-स्मृति के साथ इस बंधुवर को विदा करते हुए हम यह आशा भी रखते हैं कि आपका स्नेहशील सहयोग सभा को आगे भी मिलता रहेगा।

—सम्पादक

सभा के हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर सम्पन्न विशेष

(42-वें) पदवीदान समारंभ (26 सितंबर, '79), पर प्रस्तुत

दीक्षान्त भाषण

महामहिम श्री गोविन्द नारायण

(कर्नाटक के राज्यपाल)

मान्यवर श्री नरसिंहरावजी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अन्य पदाधिकारी गण, सज्जनो, देवियो और स्नातक भाई-बहनो !

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, के हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर दीक्षान्त भाषण देने का गौरव प्राप्त करने से मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ और इसके लिए मैं दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के उपाध्यक्ष श्री पी. वी. नरसिंहराव जी तथा अन्य कार्यकर्ताओं को हृदय से धन्यवाद देता हूँ ।

सभा की स्थापना और विकास-परम्परा

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की कार्यकुशलता और क्षमता के विषय में मैं काफ़ी पहले से परिचित हूँ। जब सन् 1964 में केरल के राज्यपाल के सलाहकार के रूप में मैं कार्य करता था उस समय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के केरल क्षेत्र के कार्यक्रम से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ था, और कई सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ था। यह बड़े गौरव की बात है कि इस संस्था का जन्म 61 वर्ष पूर्व महात्मा गांधी जी के आग्रह और सूझबूझ द्वारा हुआ था। महात्मा गान्धीजी अपने जीवनकाल तक इस संस्था के अध्यक्ष रहे और उसके बाद इस संस्था की अध्यक्षता सदैव ही देश के महान नेताओं के हाथ में चली आ रही है। यह भी बड़े हर्ष की बात है कि इस संस्था के प्रारंभ से ही सारे दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रति अद्भुत श्रद्धा और उत्साह बढ़ता ही गया। शुरू के वे कार्यकर्ता और प्रचारक हमारे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस कार्य को सही मार्ग पर आगे बढ़ाया जिसके फलस्वरूप इस कार्य में थोडे ही समय में इतनी तेजी प्राप्त हुई। सन् 1922 से परीक्षाएँ भी शुरू की गयीं और सीखनेवालों की संख्या बढ़ती ही गयी। फिर प्रेस भी खोला गया जहाँ पाठ्यपुस्तकें छपने लगीं। शिक्षकों की माँग भी बढ़ी और सन् 1921 में राजमहेन्द्रवरम, और सन् 1922 में ईरोड में (पेरियार श्री रामस्वामि नायकर के घर में) विद्यालय शुरू हुए जहाँ से काफ़ी शिक्षक तैयार हुए। सन् 1927 में सभा ने अपना स्वतंत्र रूप ग्रहण किया और उस समय की कार्यकारिणी में महात्मा गान्धी जी की अध्यक्षता में श्री एस. श्रीनिवास अय्यंगार, श्री नागेश्वरराव पंतुलु, श्री के. भाष्यम, श्री सत्यमूर्ति, श्री राजाजी, श्री जमनालाल बजाजजी, श्री रामनाथ गोयंकाजी इत्यादि विभिन्न पदों पर थे। शुरू के काम में 'हिन्दु' पत्रिका के सम्पादक श्री कस्तूरि श्रीनिवासन, श्री राजाजी, श्री जमनालाल बजाजजी आदि के सहयोग से धन संग्रह हो सका जिसके द्वारा प्रधान भवन, प्रेस और कार्यकर्ताओं के लिए निवासस्थान इत्यादि बनाये गये। सन् 1936 में जब राजाजी मद्रास

प्रदेश के कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के मुख्य मंत्री बने, तब उन्होंने सभी स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। शिक्षकों की माँग बढ़ने के कारण कोयम्बत्तूर आदि अनेक स्थानों में भी प्रशिक्षण विद्यालय चलाये गये।

सभा की महत्वपूर्ण सेवा को मान्यता देते हुए केन्द्र सरकार ने संविधान के अधिनियम 14 के द्वारा सभा को 'राष्ट्रीय महत्व की संस्था' घोषित किया। इसके अनुसार सभा की परीक्षाओं को मान्यता दी गयी और यह अधिकार भी दिया गया कि उच्चतम शिक्षा हेतु स्नातकोत्तर विभाग को खोलकर उसके द्वारा हिन्दी में 'एम. ए. (पारंगत)' की शिक्षा भी दी जाय।

सभा आज एक बड़ी संस्था बन चुकी है। उसके द्वारा लगभग एक करोड़ लोगों को हिन्दी सिखायी गयी है। प्रति वर्ष लगभग डेढ़ लाख विद्यार्थी अब सभा की विभिन्न परीक्षाएँ देते हैं। दक्षिण की संस्कृति और साहित्य सम्बन्धी पुस्तकों, सन्तों की जीवनियों, कहानियों और उपन्यास-ग्रन्थों के अनुवाद भी सभा ने प्रकाशित किये हैं।

सभा दो पत्रिकाएँ भी चलाती हैं ('हिन्दी प्रचार समाचार' और 'दक्षिण भारत')। ऐसी संस्था की हीरक जयन्ती मनाना सारे देश के लिए गौरव की बात है।

बापूजी से प्रेरणा

इस विषय में हमें याद आती है कि महात्मा गान्धीजी को तीन बातें जो उन्होंने देश की स्वतंत्रता के विषय में आवश्यक कही थीं— (1) 'स्वभाषा' (2) 'स्वदेश' (3) 'स्वपताका'। गांधीजी का यह भी कहना था कि 'राष्ट्रभाषा किसी प्रान्त विशेष की नहीं, सभी देशवासियों की है, और उसे सीखना-सिखाना सबका काम है।' आज के शुभ अवसर पर इन सब बातों की याद करना हिन्दी कार्य के लिए ही नहीं, बल्कि देशप्रेम के लिए, देश की एकता के लिए, देश के संघटन के लिए और सभी देशवासियों के लिए बन्धुत्व स्थापित करने के लिए प्रेरणा लेना है।

यह सब कहने के साथ ही साथ मैं यह भी कहना आवश्यक समझता हूँ कि भाषा पारस्परिक प्रेम स्थापित करने की कड़ी है, न कि विरोधाभास फैलाने की। भाषा थोपी नहीं जा सकती, बल्कि हृदय की सच्ची भावनाओं द्वारा उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होकर उसकी जागृति होती है ; शिक्षकों और प्रचारकों को इसीलिए बड़ी सावधानी से काम लेना है कि उनके कार्य द्वारा किसीके हृदय पर चोट न पहुँचे, बल्कि वे स्वयं अपनी निजी इच्छा द्वारा इस भाषा के प्रति आकर्षित हो और जो शिक्षण की सुविधाएँ हैं, उनसे पूरा लाभ उठायें।

स्वयंसेवी संस्था के दायित्व

इस पृष्ठभूमि में हमारे देश के अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी प्रचार कार्य में स्वयंसेवी संस्थाओं के महत्वपूर्ण स्थान पर मैं जोर देना चाहता हूं। जो लोग अपनी स्वेच्छा से हिन्दी सीखने आते हैं, उनके लिए जब ये गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करती हैं, तो ऐसी हालत में अहिन्दी लोगों पर हिन्दी लादने का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा हमारे देश के दक्षिण भाग में हिन्दी प्रचार की सबसे बड़ी स्वयंसेवी संस्था है। उसके कार्यकलापों की खूबी यह है कि वह राष्ट्रहित में जनता में इस भाषा के प्रति स्नेह पैदा करने का प्रयत्न करती है और उनको यह भाषा सीखने की पूर्ण सुविधाएँ प्रदान करती है। इस महत्वपूर्ण सेवा कार्य के लिए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं का, जो अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी प्रचार कार्य में लगी हुई हैं, मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

आप लोगों को ज्ञात होगा कि जब देवनागरी लिपि में हिन्दी को संविधान द्वारा भारतीय संघ की राजभाषा घोषित किया गया, तब साथ-साथ यह प्रावधान किया गया था कि संविधान के आरंभ से 15 वर्ष तक संघ के राजकीय कार्यकलापों के लिए अंग्रेज़ी का प्रयोग जारी रहेगा। इस कालावधि के समाप्त होते-होते राजभाषा अधिनियम में सूक्त संशोधन

गया कि पूर्व निर्धारित अवधि के बाद भी संघीय कामकाज के लिए हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी का प्रयोग भी ज़ारी रहे। आपको याद होगा कि लगभग 20 वर्ष पहले तत्कालीन प्रधान मंत्री पण्डित नेहरू ने संसद में अंग्रेज़ी के बारे में अहिन्दी क्षेत्र के लोगों को कुछ आश्वासन दिये थे और उन्हींके अनुसार राजभाषा-अधिनियम में यह संशोधन हुआ था। उनका पहला आश्वासन था, 'अनिश्चित अवधि तक अंग्रेज़ी अतिरिक्त भाषा के रूप में विकल्प राजभाषा के तौर पर रहेगी और उसका स्थान संकुचित नहीं किया जाएगा।' उनका दूसरा आश्वासन था कि उपरोक्त निर्णय में कोई परिवर्तन तब तक न होगा जब तक अहिन्दी क्षेत्रों की जनता, जिसपर इस निर्णय का प्रभाव पड़ने का डर हो, इस परिवर्तन के लिए तैयार न हो। इस प्रकार हिन्दी की तरफ़ इस परिवर्तन का निर्धार अहिन्दी क्षेत्रों की जनता पर छोड़ा जाय, और न कि हिन्दी भाषी लोगों पर। इसके पाँच वर्ष पश्चात्, तत्कालीन प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्रीजी ने भी पण्डितजी के इन आश्वासनों को दुहराकर संसद में कहा था—"पण्डितजी के आश्वासनों के बिना किसी परिवर्तन अथवा शर्त के, अक्षरशः और भावशः पालन किया जाएगा।" पण्डितजी ने बताया था कि हम कोई अमुक तारीख़ मुकर्रर करके यह नहीं कह सकते कि उस तारीख़ से अंग्रेज़ी का प्रयोग समाप्त होगा और उस दिन से हिन्दी वह पूरा स्थान लेगी। इस परिवर्तन के लिए बड़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी। इसके लिए किसी तारीख़ का कोई विशेष महत्व नहीं है, केवल इतना कि समय-समय पर स्थिति की परिशीलना हो कि हम इस विषय में सही मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं। इस प्रकार यह सर्वमान्य है कि राजभाषा के विषय में यह परिवर्तन क्रमबद्ध हो और केवल सर्वसम्मति के आधार पर ही हो। अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी का भारत संघ की राजभाषा के तौर पर विकास और प्रगति इस तरह हो कि एक तरफ़ वह प्रादेशिक भाषाओं के विकास में रोड़ा न अटकाये और दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ी के राजभाषा के तौर पर अस्थायी प्रयोग में कोई अड़चन न डाली जाय। भाषायी समस्या तो

बहुत पेचीदी और जटिल है। इसलिए इस विषय में जो भी क़दम उठाया जाय, वह प्रभावित जनता के सूक्ष्म मनोविकारों को ध्यान में रखकर बड़ी सावधानी से किया जाय, परस्पर सद्भावना के आधार पर हो, और बहुजन-सम्मति से हो।

संवैधानिक और साहित्यिक

इस सन्दर्भ में यह स्मरण रहे कि संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार भारत सरकार को हिन्दी का विकास करना अनिवार्य है जिससे वह हमारे देश की समग्र संस्कृति के भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति करने की योग्य माध्यम बने, हिन्दुस्तानी, संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं की शताब्दी तथा शैलियों की विशिष्टताओं को यथायोग्य अपने में ग्रहण कर समृद्ध और सम्पन्न बने। मैं मानता हूँ कि इस दिशा में जो कार्य अब तक होता आया है, उससे अधिक मात्रा में प्रयत्न किया जाना आवश्यक है। यथाशीघ्र बड़े पैमाने पर अनुवाद कार्यक्रम तीव्र-गति से हाथ में लेना होगा। इसके अन्तर्गत मूल हिन्दी की विशिष्ट साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद सभी प्रादेशिक भाषाओं में होना नितान्त आवश्यक है। वैसे ही संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के भी हिन्दी में भाषान्तरण करना होगा। इस दुधारी अनुवाद-कार्यक्रम से विभिन्न भाषावाले एक दूसरे की संस्कृति और साहित्यिक विकास से लाभान्वित होंगे, और हिन्दीभाषी जन प्रादेशिक भाषी जनों से आपस में विचार-विनिमय करने लगेंगे। इन सब कार्यक्रमों से हिन्दी हमारे देश की समग्र सम्पन्न संस्कृति की अभिव्यक्ति के माध्यम के तौर पर सर्वतोमुखी विकास करने में समर्थ होगी और साथ-साथ हमारे देश की प्रादेशिक भाषाओं के विभिन्न रूप, शैली और शब्दावली वगैरह का यथेष्ट मात्रा में अपने में समन्वय करके हिन्दी सुसमृद्ध और सुसम्पन्न होकर बहुत अधिक लोकप्रिय हो सकेगी।

इस सन्दर्भ में और एक बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि हिन्दी के अतिरिक्त, हमारी कई प्रादेशिक भाषायें ऐसी हैं जो बहुत प्राचीन काल से चली आ रही हैं और उनमें हमारी पुरातन संस्कृति

और सभी प्रकार के समृद्ध साहित्य का प्रमाण पाया जाता है। इनके आदान-प्रदान से हिन्दी के सर्वांगीण, विकास में मदद मिलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

हमारे देश में भाषायी राज्यों की पुनर्रचना का मूल तत्व भी यही रहा कि प्रत्येक राज्य का कार्यकलाप प्रजातंत्रवाद के आधार पर उस राज्य की आम जनता की भाषा में होना चाहिए जिससे राज्य की सरकारी संस्थायें तथा जनता एक दूसरे को भली भाँति समझ सके और राज्य और अधिक प्रगति कर सके। यह हर्ष की बात है कि उपरोक्त तत्व के आधार पर अभी राज्यों में कार्यकलाप सही मार्ग पर चलने लगे हैं। प्रत्येक भाषायी राज्य में उसकी प्रादेशिक भाषा को ही सरकारी कामकाज की भाषा का माध्यम बनाने के कदम धीरे-धीरे उठाये जा रहे हैं। साथ-साथ जब सभी राज्यों में अपनी प्रादेशिक भाषा का विकास किया जा रहा है, तब यह उचित ही है, और मैं आशा करता हूँ कि यह सर्वसम्मति से मान्य भी होगा कि राष्ट्रहित में स्वेच्छा भाव से राजभाषा के तौर पर हिन्दी का विकास किया जाय, ताकि वह क्रमशः आगे चलकर हमारे राष्ट्र की संघीय राजभाषा के रूप में सक्रिय बनी रहे।

हिन्दी का सरल स्वरूप और सांस्कृतिक माध्यम

इस सम्बन्ध में मुझे पण्डित नेहरू के दूसरे एक अभिमत की याद आती है जो उन्होंने हिन्दी के सम्पर्कभाषा की पात्रता के बारे में कही थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि सम्पर्कभाषा हिन्दी का रूप सरल और सहज ही समझी जानेवाली होना आवश्यक है। उनका कहना था, "हिन्दी का एक प्रादेशिक भाषा के तौर पर विकास किया जाय और उसको यथासम्भव समृद्ध और सम्पन्न किया जाय, साथ ही साथ अखिल भारतीय स्तर पर कामकाज के लिए हिन्दी के एक सरल रूप का विकास किया जाय जो देश की आम जनता द्वारा सहज ही समझी जा सके।" इसलिए आज के नये स्नातक भाई-

मुझे विश्वास है कि हिन्दी के बारे में जो भी विचार मैंने आपके सामने रखे हैं, उनसे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा भली-भाँति परिचित होगी, क्योंकि वह सभा सबसे बड़ी और सबसे पुरानी स्वयंसेवी संस्था है जो हिन्दी प्रचार कार्य में लगी हुई है। मुझे आशा है कि जो भी नये स्नातक, स्नातकोत्तर छात्र और प्रचारक आज उपाधि ले रहे हैं उनको सभा ने इस सेवा कार्य के महत्व और गम्भीरता को समझाया होगा और वे भी उसके आधार पर इस प्रचार कार्य में जुट जायेंगे। सभा की हीरक जयंती के अवसर पर इस चरित्रार्ह दीक्षान्त समारोह में जिन लोगों ने उपाधियाँ प्राप्त की हैं, उनको मैं हार्दिक बधाई देता हूँ। मैं फिर एक बार उनसे अनुरोध करूँगा कि वे अत्यन्त स्नेहभाव से हिन्दी प्रचार कार्य में तन-मन से लग जावें और अपनी अमूल्य सेवा से जनता की प्रीति का पात्र बनें।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा अपने सेवाकाल के 60 वर्ष पार कर चुकी है; परन्तु हिन्दी प्रचार कार्य का उसका ध्येय तब तक पूरा नहीं होगा जब तक हिन्दी इस सभा के और उसकी जैसी अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं के, तथा केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रयत्नों से एवं जनता के स्वेच्छापूर्ण सहयोग और सहकार से, हमारे देश की महान समग्र संस्कृति के सफल मध्यम के रूप में विकसित न हो और राष्ट्र की राजभाषा के स्थान पर जनता को उसको स्वेच्छा से वह स्वीकृति न हो। हिन्दी को ऐसे महान स्थान पर विराजमान कराना हम सबका कर्तव्य है।

मैं आशा करता हूँ कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा सच्चे गान्धीमार्ग पर अपना सेवाकार्य करती रहेगी और इस अमूल्य राष्ट्रसेवा में जनता का स्नेहपात्र बनकर पनपती रहेगी।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का उसकी हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर इन साठ वर्षों की अमूल्य हिन्दी सेवा के लिए मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। इस प्रकार अनेक दशाब्दियों तक हिन्दी प्रचार कार्य में उसकी सफलता और कीर्ति की शुभकामना करते हुए मैं फिर एक बार सभा को अपना हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

जय हिन्द! जय हिन्दी!
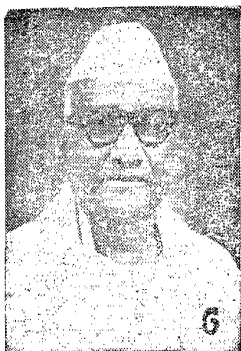
सभा के हीरक-जयंती समारोह के संदर्भ में सम्पन्न (27-9-79) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन पर प्रस्तुत

अध्यक्षीय भाषण

डॉ. मोटूरी सत्यनारायण

मेरे पुराने और नये साथियो,

ईश्वर की असीम कृपा है कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा, उसकी हीरक जयंती के अवसर पर आयोजित इस बृहत् सम्मेलन में मैं भाग ले पा रहा हूँ। यह मेरे लिए आनंद और साथ ही साथ अतीव संतोष का विषय है। आनंद इस बात का कि पराधीन भारत को निजी भाषायी तथा सांस्कृतिक अस्मिता देने के लिए जिस राष्ट्रभाषा आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके संचालन का पूरा भार अपने जीवन में महात्मा गांधी ने अपने हाथों में रखा और इस विशाल दूरगामी प्रभावकारी आंदोलन में पूरी सफलता के साथ हिन्दी प्रचारकों ने योग दिया, आज उसे संघ राज्य की प्रशासनिक भाषा के रूप में स्थान मिला है। इसका अधिकांश श्रेय दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों को है और उन्हींकी निष्ठा, त्याग, दक्षतापूर्ण सेवा का परिणाम है। अगर मुझे संतोष है तो इस बात का कि इन 60 वर्षों में मैं भी एक अकिंचन सेवक के रूप में इस आन्दोलन में भाग लेता रहा और अपनी शक्ति के अनुसार हाथ बंटाता रहा। सितंबर 1919 में मैंने इस आन्दोलन में एक विद्यार्थी के रूप में पदार्पण किया। इस तरह मेरा संबंध इस हिन्दी आन्दोलन के साथ पिछले 60 वर्षों से निरंतर जुड़ा रहा है। एक तरह से मैं भी अपनी हिन्दी सेवा की नहीं, भारतीय भाषाओं के उत्थान के क्षेत्र में अपने 60 वर्ष की पूर्ति की हीरक जयंती मना रहा हूँ। इसलिए मैं इस हीरक जयंती के संयोजकों को और सभा के कर्णधारों को हृदय से धन्दवाद देता हूँ कि मुझे इन असंख्यक साथी—पुराने और नये—हिन्दी प्रचारकों के बीच में बैठने और इन्हें विगत कार्यकलापों पर और आगामी कल्पनाओं तथा कार्यक्रमों के ऊपर उद्बोधित करने के लिए मौका दिया है।

60 साल के पहले यह एक सपना था। आज वह एक साकार, एक उच्चतम अनुभूति के चित्र के रूप में हमारे सामने है।

वे दिन, वे घटनाएँ

यह चित्र कैसे बना, इसके बनाने में क्या-क्या अड़चनें थीं, इस अनुभूति के चित्र में किसने क्या रंग भरा, इसका इस समय विचार करना आवश्यक नहीं है। पिछली निरन्तर घटित होनेवाली घटनाओं को और उनके परिणाम स्वरूप भाषाई क्षेत्र में क्या स्थिति पैदा हुई, उसकी प्रगति में इस समय क्या गतिरोध है, इसपर न चिन्तन की आवश्यकता है, न वैचारिक कथन की। क्योंकि, जो तथ्य हैं वे सभी हमारे सामने है और अपने सारे ब्यौरे को लेकर पूर्णरूप से प्रकट हैं। अगर हमें विश्लेषण करना हो तो इसी पर करना है कि जिन हिन्दी प्रचारकों तथा कार्य-कार्ताओं ने भाषाई क्षेत्र में दासता की शृंखला को तोड़ने में अथक प्रयत्न किया और सफलता पायी उनकी और उनकी संस्थाओं की आज क्या स्थिति है? जिन अनगिनत कार्यकर्ताओं ने हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने में मदद पहुँचायी, उनकी क्या स्थिति है, और उस हिन्दी की भी क्या स्थिति है, जिसे अंग्रेज़ी के प्रतिद्वंद्वी के रूप में उससे लड़ने के लिए खड़ा किया गया? जिस हिन्दी ने भावना के क्षेत्र में अंग्रेज़ी से प्रतिद्वंद्विता करने के लिए हमें मदद दी और उसके सहारे कुछ हद तक सभी प्रादेशिक भाषाएँ भिन्न-भिन्न राज्यों में प्रादेशिक भाषायी अस्मिता को उभारते हुए और अंग्रेज़ी की दासता से मुक्त होते हुए, सामाजिक चेतना को बढ़ाते हुए अग्रसर हो रही है। क्या अंग्रेज़ी से पूर्णतः उन्हें मुक्त बनने के लिए वे सक्षम बन रही हैं? महात्मा गांधी की ओजस्विनी वाणी के बल से स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा के तीन नारे बुलन्द हुए। उनमें स्वराज और स्वदेशी तो मिले। क्या हम इस बात का दावा कर सकते हैं कि स्वभाषा भी हमें उसी अनुपात में मिली जिस अनुपात में स्वराज्य और स्वदेशी प्राप्त हैं। आज भी शहरों, कस्बों, गाँवों में और दफ़्तर में और उच्च स्तरीय शासक वर्ग में स्वभाषा की नींव मजबूत नहीं है तो उनके क्या कारण हैं?

स्वराज्य की प्राप्ति के बाद हमारे विधान मंडलों में चर्चा-परिचर्चाएँ 99 प्रतिशत प्रादेशिक भाषाओं में हो रही हैं। जो अंग्रेज़ी हर शहर के हर कोने में गूंजती हुई सुनायी पड़ती थी उसका स्थान प्रादेशिक भाषाओं ने ले लिया। हमारी शाला, महाविद्यालय तथा स्नातकोत्तर शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वभाषाओं का किला मजबूत होता नज़र आ रहा है। प्रादेशिक राज्य सेवा संबंधी परीक्षाओं के भाषा-माध्यम में परिवर्तन की भी मांग ज़ोर से होती आ

रही है। प्रदेशों में 80 प्रतिशत से अधिक कार्य कुछ राज्यों में उससे भी अधिक, प्रादेशिक भाषाओं में होने के आसरे दीख रहे हैं। जनसत्ता के इस युग में यह आश्चर्य की बात नहीं समझी जायगी कि जन भाषाएँ अपना-अपना अविचल स्थान बनायेगी, लेकिन पता नहीं किस बल पर किस कारण से आज भी प्रादेशिक भाषाओं के इतने विस्तृत पैमाने पर अपने-अपने राज्यों में मान प्राप्त करने पर भी, विदेशी भाषा की आवाज़ इन तबकों से इतनी बुलन्द सुनायी दे रही है और जिस राष्ट्रीयता के बल पर हिन्दी को संविधान ने सत्तारूढ़ बनाया उसकी गद्दी हिलती क्यों नजर आ रही है? हमारे वैचारिक चिन्तन, मनन, परिकल्पनाओं के क्षेत्र में क्या खामियाँ थीं जिनकी वजह से आज चारों ओर से यह आवाज़ सुनाई दे रही है कि भाषाई संघर्ष के कारण भारत की एकता न टूट जाए। कुछ लोगों का कहना कि इस एकता को तोड़ने के जिम्मेदार अधिकतर हिन्दीवाले ही होंगे। अर्थात् हिन्दी की पैरवी करनेवाले। शैक्षिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और साथ ही राजनीतिक कार्यकलापों के लिए देश की भाषाएँ अबाध रूप से काम आ रही हैं। प्राय: देश की प्रादेशिक भाषाओं ने अपने-अपने विकास को साधते हुए अपने-अपने प्रदेशों में शक्तिशाली स्थान ही नहीं बनाया, अपने भाषाई समाज भी बनाये।

भाषावार प्रान्त और भाषाई नीति

स्पष्ट है कि इस समय सारा देश, भाषाई घटकों में बंटा है। इस समय देश की 12 भाषाओं को ऐसी प्रादेशिक इकाइयाँ मिल गयी हैं जो प्रादेशिक राज्यों के नाम से विख्यात हैं। इन 12 भाषाओं के लिए 18 राज्य प्राप्त हैं। देश की 95 प्रतिशत आबादी इन 18 राज्यों में फैली हुई है। इन 18 राज्यों में 7 राज्य हिन्दी के घटक हैं और बाकी 11 तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, मराठी, ओडिया, बंगला, असमिया, पंजाबी तथा कश्मीरी भाषाएँ हैं, जिनमें प्रत्येक को एक-एक घटक प्राप्त है। इससे स्पष्ट है कि सारा देश भाषावार प्रदेशों के निर्माण के कारण इस समय अपने-अपने चौखट में बँध गया है। सिवाय हिन्दी प्रान्तों के बाकी सभी 11 भाषाई इकाइयों में एक दूसरे के साथ कोई संपर्क नहीं है। जो कुछ भी पहले संपर्क था वह अंग्रेज़ी के ज़रिये था जिसे अंग्रेज़ी ने अंग्रेज़ी सरकार की शिक्षा नीति के ज़रिये बनाया। आज वह संपर्क प्रादेशिक भाषाओं के शिक्षा-माध्यम बनने के कारण प्रदेशों को जोड़नेवाली अंग्रेज़ी-कडी कमज़ोर हो रही है। मुमकिन है कि कुछ समय के बाद वह टूट भी जाय। इस समय सारे देश में 110 विश्वविद्यालय हैं। केन्द्र तथा राज्य सरकारों की यह नीति है कि विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा प्रादेशिक भाषा के दवारा ही दी जाय और प्राय: इने-गिने

अपवादों को छोड़कर सभी विश्वविद्यालयों ने स्नातकोत्तर स्तर तक प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा माध्यम के रूप में विकसित करने का निश्चय किया। धीरे-धीरे अंग्रेज़ी कुछ उच्च स्तरीय तबकों में व्यवहार का माध्यम है तो शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान, तकनीकी, कानून, चिकित्सा, वाणिज्य आदि क्षेत्रों सीमित रूप में काम आ रही है। इस समय देश में जो निजी भाषाई चेतना है उससे मालूम होता है कि अंग्रेज़ी जो सार्वदेशिक और अंतर्देशीय कार्यकलापों के लिए संपर्क भाषा के रूप में काम आती रही, शिक्षा माध्यम के क्षेत्र में उसका स्थान हिल जाने के कारण धीरे-धीरे संभव है कि सामाजिक संप्रेषण का स्थान भी खो जाय और उसके खो जाने से सारे देश के भिन्न-भिन्न भाषाई प्रदेशों के बीच में ऐसी रिक्तता का अनुभव किया जायगा जिससे एक गंभीर परिस्थिति पैदा होगी। देश-भर में हमारे सामाजिक और अंतर्प्रदेशिकता के क्षेत्र में बहुभाषिकता की स्थिति पैदा होगी। इस बहुभाषिकता की स्थिति से पैदा होनेवाली कठिनाइयों तथा गतिरोधों की कल्पना करके ही हिन्दी को अंग्रेज़ी के प्रतिद्वंद्वी के रूप में खड़ा किया गया। आज अंग्रेज़ी भारतीय समाज के कुछ इने-गिने तबकों में काम आ रही है। यद्यपि इन तबकों का विज्ञान, तकनीकी, प्रशासन की दृष्टि से फिलहाल बड़ा महत्व है, फिर भी इन तबकों के नित्य परिवर्तित और परिवर्धित होने के कारण बहुत ही शीघ्र इनपर भारतीय भाषाओं का आक्रमण होगा। इस समय निज़ी भाषाई चेतना के कारण भारतीय भाषाओं का जो प्रवाह है उसकी बाढ़ से कोई तबका बच नहीं सकता। अगर इन तबकों का सर्वेक्षण न किया जाय और उनके लिए भाषाई आवश्यकता की पूर्ति के लिए आयोजन न किया जाय, तदनुकूल कार्यक्रम न बनाया जाय तो बहुत मुमकिन है कि देश की एकता इस भाषाई क्षेत्र में चट्टान से टकरायेगी।

स्वराज्य-आंदोलन के दौरान

स्वराज्य के आन्दोलन के समय सार्वदेशिक पैमाने पर भारतीय समाज को आकृष्ट करने, जनमानस को स्वतंत्रता की ओर उन्मुख करने के लिए जो राजनैतिक स्वतंत्रता मिलेगी उसे संभालने के लिए स्वराज्य को जनतंत्र की संज्ञा दी गयी है। सार्वदेशिक पैमाने पर इस जनतन्त्र को आयोजित करने और संचालित करने के लिए भावना का आश्रय लेने के हेतु राष्ट्रीयता अपनायी गयी है। आज राष्ट्रीयता और जनतंत्र के पाये देश भर में मज़बूत बनाये जा रहे हैं। इन दोनों के सहारे से ही विज्ञान तथा तकनीकी के बल से, उद्योगों के विकास के द्वारा संपत्ति पैदा की जा सकती है। देश को संपत्तिवान, शक्तिवान बनाते हुए प्रगति के रास्ते पर ले जाने की ऊर्जा राष्ट्रीयता ही प्रदान कर सकती है जो हमारी सामूहिक शक्ति का ही प्रतीक है। इसलिए राष्ट्रभाषा के क्षेत्र में

काम करनेवालों को यह समझ करके चलना होगा कि उनका वास्तविक काम अभी शुरू हुआ है। उनके कार्यक्रम की पहली अवस्था थी देश को निजी भाषाई माध्यम की तरफ़ ले जाने की है। दूसरी अवस्था संप्रेषण माध्यम प्रदान करने की जो प्रादेशिक तथा सार्वदेशिक दृष्टि से सक्षम हो। तीसरी अवस्था कार्य-माध्यम को विकसित करने की है, अर्थात् कार्यकलापों के क्षेत्र में विविध प्रयोजनों के लिए भाषा-माध्यम के विकास, निर्माण तथा उपयोग की। पहली दोनों दशाओं को पार कर इस समय अपनी भाषा की तीसरी मंजिल पर हम पहुंच गये हैं। अतः आवश्यक है कि इस मंजिल पर पहुँचने के बाद भाषाई आवश्यकताओं की, जो देश के विभिन्न कार्यक्षेत्रों से संबंधित है, विश्लेषणात्मक चर्चा करें और आवश्यकता के अनुसार उनकी पूर्ति के लिए काम में जुट जायें। इस आन्दोलन की प्रारंभिक दशा में यह सुस्पष्ट था कि राष्ट्रभाषा का विकास प्रादेशिक भाषाओं के विकास के साथ जुड़ा हुआ रहना चाहिए। प्रचारक जनता के सामने विशेषकर दक्षिण की जनता के सामने यही प्रस्तुत करते रहे कि हिन्दी प्रादेशिक भाषा के स्थान में नहीं, उसके अतिरिक्त होगी। इस नीति को और सुस्पष्ट करने के लिए प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञान हिन्दी के समकक्ष स्तर पर प्राप्त करने की अपेक्षा हिन्दी विद्यार्थियों से रखी गयी। यह नीति आज तक चली आ रही है। परिणाम यह हुआ कि सभा ने इस चौभाषी दक्षिण भारत में अपने सभी विद्यार्थियों को द्वैभाषिक शक्ति प्रदान की। यह सिर्फ़ भाषा कौशल की उपलब्धि के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी हुआ। यही कारण है कि पहले ही से दक्षिण में हिन्दी को अपनी भाषाई शक्ति उभारनेवाले अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया गया। आज सारे दक्षिण भारत में हजारों ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें पर्याप्त संख्या में महिलाएँ भी शामिल हैं, हिन्दी के मार्ग से अपनी-अपनी भाषा में भी विद्वत्ता प्राप्त कर ली। रचयिता हुए, कवि हुए, उच्च कोटि के भाषाविद् भी हुए। दक्षिण भारत को हिन्दी की यह एक महान देन है जिसकी तरफ़ लोगों का समुचित ध्यान नहीं गया है। आज प्रत्येक हिन्दी प्रचारक जो सभा के शैक्षणिक यंत्र से गुजरा है, हिन्दी के साथ अपनी भाषा का भी अच्छा विद्वान समझा जाता है। यही नहीं साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यकलापों में भी काफी योगदान देता हुआ पाया जाता है।

बहुभाषा-भाषी देश में भाषाई प्रयोजन

काफी समय पहले इस बात का अनुभव किया गया था कि दक्षिण भारत में हिन्दी के पठन-पाठन का स्तर क्रमशः ऐसा ऊँचा बनाया जाय जिससे सभा के शिक्षण यंत्र से गुजरनेवाले विद्यार्थी हिन्दी माध्यम के जरिये भिन्न-भिन्न सेवा क्षेत्रों में

कार्य करने के लिए भी क्षमता प्राप्त करें। जिस उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम की कल्पना की गयी और उसे पर्याप्त महत्व देने के हेतु विश्वविद्यालय का संकेत किया गया और सभा आज संसदीय मान्यता के साथ प्राधिकृत है तो इसीलिए कि वे विश्वविद्यालय के शिक्षाक्रम बनावें और शिक्षा देने के लिए अधिकारी और सक्षम हो। लेकिन बड़े दुख की बात है कि निश्चित दिशादर्शन के अभाव में उच्च शिक्षा की यह कल्पना बिखर गयी। साधारणत: विश्वविद्यालय एक दूसरे के प्रतिरूप होते हैं। भारत में प्राय: सभी विश्वविद्यालयों की यही स्थिति है। अब तक किसी भी विश्व विद्यालय में कार्य-भाषा के रूप में भाषाई क्षमता को बढ़ाने का न पाठ्यक्रम बनाया गया, न पाठ्य सामग्री ही। जमाने से ऐतिहासिक घटनाओं के कारण भारतीय भाषाओं को साहित्य का एक अविभाज्य भाग बनाया गया। सभी पंडित यही समझते रहे हैं कि साहित्य और भाषा के बीच में कोई अंतर नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि बहुप्रयोजनीय भाषा-माध्यम सभी कार्यक्रमों के लिए इस देश में अंग्रेजी बन गया। इसलिए ऐसी भाषा की, अंग्रेजी की मौजूदगी में, जरूरत ही नहीं समझी गयी जो देश के प्रशासन, वाणिज्य, व्यापार, कानून में काम आ सके। न ऐसी भाषा की आवश्यकता समझी गयी जो विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, कृषि तथा अन्यान्य विज्ञान के ज्ञान की संप्राप्ति के लिए भाषा-माध्यम का काम आ सके। इसलिए भारतीय भाषाएँ साहित्य से अलग होकर स्वतंत्र रूप से भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए अनुकूल बनने समृद्ध नहीं हो सकीं। वास्तव में भाषा समाज का अंग है। भाषा वैयक्तिक आनंद का साधन है। यद्यपि यह भेद बहुत सूक्ष्म है और विवादास्पद भीं हैं, फिर भी यह मानकर चलना पडेगा कि भाषा का स्वतंत्र होकर समाज की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समृद्ध होती हुई अग्रसर होना आवश्यक है। यह मानना पडेगा कि अगर आज अंग्रेजी समृद्ध है तो इसी कारण से। अंग्रजी भाषा की उन्नति अंग्रेजी के पुराने और नये साहित्य से जुडी नहीं होती। अगर आज अंग्रेजी भारत में अपना साम्राज्य फैलायी हुई है तो अपने साहित्य के बल पर नहीं, अपने प्रयोजन के बल पर। विश्वविद्यालय के शिक्षाक्रम बहुत ही पुराने, ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों की अंधी नकल होने के कारण सभी विश्वविद्यालयों के भाषाविभाग कमजोर हैं। यह कमजोरी ब्रिटन में इसलिए नहीं है कि साहित्य और भाषा दोनों, उनके अपने शिक्षा-माध्यम भी उनकी अपनी भाषा में हैं। अंग्रेजी ने अपने सारे शिक्षाक्रम को देश-भर में ज्यों का त्यों रोप दिया। उसे पाला-पोसा और यह शिक्षाक्रम आज इतना मजबूत है कि उसके पर्याय में कोई दूसरा हम देख नहीं पा रहे हैं।

देश में इस समय निजी भाषाएँ इतनी बढ़ी हैं कि अब इस बहुभाषा-भाषी देश में इसके निजीकरण, प्रदेशीकरण, राष्ट्रीयकरण, समाजीकरण की दिशाओं का सुस्पष्ट विश्लेषण होना चाहिए जिससे प्रत्येक नागरिक इन चारों अवस्थाओं से गुजर सके। स्पष्ट है कि निजी भाषा प्राय: प्रादेशिक नहीं हो सकती है, न प्रादेशिक सार्वदेशिक ही हो सकती है। सार्वदेशिक समाजीय भाषा से, प्रादेशिक समाजीत्र तथा वैयक्तिक समाजीय भाषा भिन्न भी हो सकती है। यह भिन्नता व्यक्ति और समाज की दृष्टि से जितनी स्पष्ट है उतनी ही स्पष्ट व्यक्ति और स्थानीय प्रयोजनों को लेकर भी है। इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारत में हिन्दी का सार्वदेशिक रूप जब उभरेगा वह अत्यधिक व्यावहारिक भाषा के रूप में उभरेगा और अनेकों प्रयोजनों के अनुकूल समृद्ध होती हुई उभरेगा और उसी समृद्धि में राष्ट्र की सामाजिक संस्कृति भी प्रतिबिंबित होगी।

हिन्दी की स्थिति और संस्था का वर्चस्व

हिन्दी का कार्य राष्ट्रीय है। उसकी राष्ट्रीयता प्रादेशिकता के साथ उन्हीं प्रयोजनों को लेकर जुडी हुई है जो राष्ट्रीय है। हमारे सभी राष्ट्रीय साधनों का शक्ति-स्रोत अखिल भारतीय दृष्टि से, अखिल भारतीय कार्यकलापों और जमातों से फूटता है। इस तरह के कार्यकलापों को बढ़ानेवाला अभिकरण-केन्द्र सरकार है। आश्चर्य की बात है कि केन्द्र सरकार की तरफ़ से हिन्दी के लिए अब तक जो कार्य शिक्षाक्षेत्र में होता रहा है, वह अब तक प्रारंभिक भाषायी आवश्यकताओं के सवालों को लेकर ही झूल रहा है जब कि संघ राज्य की प्रशासनिक भाषा का संबंध उन सभी कार्यकलापों के साथ है जो अखिल भारतीय है, अंतर्प्रदेशीय है। हिन्दी का कार्य स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आदि शिक्षा-संस्थाओं के साथ जुड़े रहने के कारण वह शिक्षा माध्यम की समस्या के भंवर में ऐसा फँस गया कि निकलना मुशिकल हो रहा है। क्या यह समस्या एक अखिल भारतीय समानरूपी शिक्षामाध्यम के साथ जुड़ी हुई है? अगर है तो यह संभव कभी हो ही नहीं सकता कि हिन्दी का काम विविध प्रयोजनों को साधने के लिए गैर-हिन्दी प्रांतों में आगे बढ़े। यह इसलिए संभव नहीं कि राष्ट्रनीति के अनुसार देशभर सभी भाषाओं ने अपने-अपने चौखट बना रखे हैं जिनमें हिन्दी का भी एक अपना चौखट है। इसके अलावा अन्य भाषाओं के भी हैं जो भारतीय संविधान के अष्टम सूची में वितरित हैं। यह भूलना हानिकारक है कि शिक्षा ज्ञान की प्राप्ति के लिए है, और भाषा व्यवहार की दक्षता के लिए है। यद्यपि शिक्षा का माध्यम भाषा है, फिर भी भाषा का प्रयोजन महज़ शिक्षा ही नहीं फूटता, विशेषकर जब हिन्दी भाषा को भिन्न-भिन्न भाषायी चौखटों में जहाँ शिक्षामाध्यम की भिन्नता है, हिन्दी को अपना स्थान बनाना है।

हिन्दी के प्रशासनिक भाषा का स्थान मिले 30 वर्ष से अधिक हुआ है। लेकिन आज सभी गैरहिन्दी प्रदेशों में उसने स्कूली शिक्षा के द्वारा अब तक कोई स्थान नहीं बनाया, न आगे कभी बना सकेगी। इसलिए भारतीय सरकार को चाहिए कि वह प्रशासनिक भाषा के क्षेत्र में प्रगति साधने के लिए ऐसी भाषा-नीति बनाये जिससे स्कूली तथा शिक्षा-संस्थाओं के अंतर्गत प्राप्त स्थान के अलावा हिन्दी को एक सक्षम कार्य-माध्यम के रूप में विकसित कराने के लिए शिक्षा-क्रम, पाठ्य-क्रम बनावे। ऐसी सामग्री बनवावे जो इस लक्ष्य की सिद्धि में काम आवे। यह अब तक इसलिए नहीं हुआ कि भाषा के शिक्षा, साहित्य, विद्वत्ता की अन्यान्य प्रक्रियाओं में फंसे रहने के कारण उसका व्यवहार-पक्ष उभर नहीं आया। इस सारे बिखराव का एकमात्र कारण देश में विस्पष्ट भाषानीति का अभाव है जिसके लिए केन्द्र सरकार जिम्मेवार है और वे सभी संस्थाएँ भी जिम्मेवार हैं जो राष्ट्रभाषा के प्रचार-कार्य में लगी हुई हैं।

हिन्दी के एक अग्रदूत के रूप में 60 वर्ष तक काम करने पर भी, लगातार काम में लगे रहने पर भी सभा की आवाज़ में वह बुलन्दगी क्यों नहीं है? दक्षिण भारत में अनगिनत हिन्दी प्रचारक निष्ठा, त्याग तथा दक्षता के साथ हिन्दी को आगे नहीं बढ़ाते, तो न हिन्दी राजभाषा बनती, न ही प्रादेशिक भाषाओं को अपने-अपने राज्य प्राप्त होते, न वे भाषाएँ अपने प्रदेशों के प्रादेशिक माध्यम बनतीं। यह कथन बिलकुल तथ्य के बाहर नहीं समझा जाएगा कि सभा की पिछले 60 वर्षों की सेवा ने अनेकों संस्थाओं को भाषायी क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रेरित किया। लाखों लोग निजी भाषायी प्रयोजनों की तरफ़ मुखातिब हुए और अपने दिल में अपनी-अपनी भाषा के प्रति प्रेम जगाया और ज्ञान की ज्योति जगायी। इन सबके होते हुए भी केन्द्र सरकार इस संस्था को स्वैच्छिक ही मानती अवश्य है। इसका अर्थ यही है कि इस संस्था को, राजभाषा का, राष्ट्रीयता का और अखिल भारतीयता का एक अविभाज्य अंग नहीं मानती, बावजूद इसके जब यह संसद के द्वारा राष्ट्रीय महत्व की संस्था के रूप में प्राधिकृत है और इसके अध्यक्ष महात्मा गांधी के बाद लगातार भारत के राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री रहते आये हैं।

हीरक जयंती के जैसे अवसरों पर अन्य शिक्षण-संस्थाओं को उनके कार्यक्रमों को आगे बढाने के लिए लाखों रुपयों का अनुदान मिलता रहा है। लेकिन राष्ट्रीय महत्व की यह संस्था केन्द्र सरकार के अनुदान-तंत्र के क्षेत्र में अछूता है। ऐसा क्यों हो रहा है? इसपर हिन्दी प्रचारकों को गंभीरता के साथ विचार करना चाहिए।

मैं इस सम्मेलन के संयोजकों का और एक बार आभार मानता हूँ कि उन्होंने मुझे इसका अध्यक्ष बनाया और अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया।

जय हिन्द! जय हिन्दी!

दक्षिण में हिन्दी की हीरक जयंती

श्री लक्ष्मीकान्त सरस, मद्रास

दक्षिण के चारों प्रान्तों में पिछले 60 वर्षों में करोड़ों लोगों को हिन्दी सिखा-पढ़ाकर हिन्दी को जनभाषा बनाने की ओर अग्रसर दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना राष्ट्रपिता गांधीजी की प्रेरणा से 1918 में हुई थी। तब से लेकर अब तक इस सभा ने लगभग 25 हज़ार प्रचारकों की हिन्दी प्रचारक टुकड़ी तैयार की है जो दक्षिण के दस हज़ार से भी अधिक हिन्दी शिक्षण केन्द्रों के माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार करते आ रहे हैं। आज तमिलनाडु में ही नहीं, बल्कि दक्षिण के अन्य राज्यों में ऐसा कोई नगर, कस्बा या बड़ा गाँव शायद ही हो जिनमें इस सभा द्वारा सिखाये-पढ़ाये गये हिन्दी जाननेवाले लोग न रहते हों। ऐसे लोग निष्ठा और लगन के साथ अपने अन्य कार्यों के साथ-साथ हिन्दी सिखाने-पढ़ाने का काम भी करते हैं। दक्षिण में हिन्दी प्रचार-प्रसार का जो सपना गांधी जी ने देखा था, उस सपने के तहत दक्षिण में प्रतिवर्ष तीन लाख लोगों को औसतन् हिन्दी सिखाया-पढ़ाया जाता रहा है। उसी सपने का साकार रूप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की हीरक जयन्ती मद्रास महानगर में 25 सितम्बर से 27 सितम्बर तक मनायी गयी।

इस हीरक जयंती समारोह में दक्षिण के चारों राज्यों से लगभग ढाई हज़ार प्रचारक-प्रचारिकाएँ, छात्र-छात्राएँ, हिन्दी प्रेमी भाग लेने आये हुए थे। अन्य स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के प्रतिनिधि, विशिष्ट अतिथि, बुजुर्ग हिन्दी-सेवी भी आमंत्रित किये गये। अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ, नई दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (मद्रास केन्द्र) की तरफ़ से भव्य हिन्दी पुस्तक प्रदर्शिनियों का आयोजन हुआ था।

सभा की गांधीवादी परिपाटी के अनुसार 25 सितंबर सुबह झंडावंदन के साथ समारोह का शुभारंभ हुआ। कर्मठ हिन्दी प्रचारक श्री पी. नारायण इस शानदार आयोजन के संयोजक रहे और सुप्रसिद्ध समाज सेविका श्रीमती सरोजिनी वरदप्पन ने झंडा फहराया। झंडावंदन में हिन्दी प्रचारक, प्रचारिकाएँ, सभा के कार्यकर्ता और वरिष्ठ सदस्य आदि ने भाग लिया।

तदुपरांत सबेरे दस बजे हीरक जयन्ती विशेष डाक विलोपन (Special Postal Cancellation) का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। डाक-तार विभाग के क्षेत्रीय निदेशक श्री एम. एस. रामन, केन्द्रीय डाक कार्यालय के निदेशक श्री डी. पार्थसारथी और सभा के उपाध्यक्ष श्री पी. वी. नरसिंह राव इस समारंभ में भाग लिये विशिष्ट अतिथियों में थे। (इसी प्रकार का हीरक जयन्ती विशेष डाक विलोपन समारोह 3 अक्तूबर को सभा की प्रान्तीय शाखाओं की तरफ़ से भी किया गया है।)

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के हीरक जयन्ती समारोह का उद्घाटन गांधी मण्डपम् में गांधीजी की भव्य मूर्ति का अनावरण कर 25 सितम्बर को भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया। इस अवसर पर अपने उद्घाटन-भाषण में श्री मोरारजी ने कहा, "दक्षिण में हिन्दी प्रचार-प्रसार का काम हिन्दीभाषी नेताओं की प्रेरणा से ही प्रारम्भ हुआ। इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी देश के अधिकांश लोगों द्वारा बोली और पढ़ी-लिखी जाती है। अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या मुश्किल से तीन प्रतिशत ही है। ये ऐसे लोग हैं जो अंग्रेजी के चश्मे से ही सब कुछ देखते हैं, हिन्दी का ऐसे लोग ही विरोध करते हैं। स्वतंत्रता-संग्राम जब तक चलता रहा, तब तक हिन्दी का विरोध देश में नहीं था। हिन्दी का विरोध स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बढ़ा। विरोध को हवा देनेवाले वे लोग थे जो मातृभाषा में अगर कुछ लिखते हैं और गलती करते हैं तो उन्हें शर्म नहीं आती, लेकिन अंग्रेजी में गलती करते हैं तो शर्म आती है। हिन्दी इस देश की आवश्यकता है। देश के 97 प्रतिशत लोग अंग्रेजी नहीं सीख सकते, उनके लिए वह आसान भी नहीं होगा। लेकिन तीन प्रतिशत लोग आसानी से हिन्दी सीख सकते हैं। मैं हिन्दी थोपे जाने का विरोध इसलिए करता हूँ कि अन्य भाषाओं का भी विकास हो। हिन्दी का भला भी इसीमें है। हिन्दी सिखाने-पढ़ानेवाले लोगों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बोझिल हिन्दी का नहीं, बल्कि सरल हिन्दी का प्रचार करें।"

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता तमिलनाडु के राज्यपाल श्री प्रभुदास पटवारी ने की। आपने इस अवसर पर प्रकाशित 'दक्षिण-दर्शन' नामक स्मारिका-ग्रन्थ का भी विमोचन किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में आपने कहा—"भाषा राजनीति से बड़ी चीज़ है। देश में बोली और समझी जानेवाली भाषाओं में हिन्दी समझनेवालों की संख्या सर्वाधिक है। फिर भी हर आदमी को किसी भी भाषा को सीखने-पढ़ने आदि की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पिछले तीस वर्षों में हम देश में व्याप्त भाषा-समस्या को निपटा नहीं पाये हैं जो हमारे देश के लिए दुख की बात है। भारत की

विशालता और विभिन्न क्षेत्रों में बोली जानेवाली बोलियों और भाषाओं के विकास के साथ-साथ हमें पूरा विश्वास है कि हम इस समस्या का हल शीघ्र ही ढूँढ़ लेंगे। साहित्यिक आदान-प्रदान एक भाषा को दूसरी भाषा के करीब लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है बशर्ते इसपर बल दिया जाए।"

अध्यक्षीय भाषण से पूर्व आंध्र प्रदेश के शिक्षामंत्री (तकनीकी) श्री टी. हयग्रीवाचारी ने 'हिन्दी तथा मलयालम के आधुनिक खण्डकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' नामक ग्रंथ का प्रमोचन किया। इस अवसर पर आपने कहा—"हिन्दी देश की आवश्यकता है। अतः इस भाषा को सभी लोगों को तहे दिल से अपनाना चाहिए।" हीरक जयन्ती के इस उद्घाटन-समारोह में हीरक जयन्ती समारोह की संचालन-समिति के अध्यक्ष श्री पी. वी. नरसिंहराव ने अतिथियों और उपस्थित हिन्दीप्रेमी जन समुदाय का स्वागत किया। इस समारोह में भाग लेने के लिए दक्षिण के चारों प्रान्तों के साथ-साथ अन्य प्रान्तों से भी लगभग दो हज़ार प्रतिनिधियों का जत्था आया था। हिन्दी प्रचार सभा का प्रांगण हिन्दी प्रचारकों और हिन्दी प्रेमियों की चहल-पहल से गुँजार था। इस अवसर पर हिन्दी पुस्तकों की भव्य प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी।

सभा की प्रगति-रपट पर प्रकाश डालते हुए सभा की हीरक जयन्ती के संचालक श्री आंजनेय शर्मा ने बताया कि आंध्र प्रदेश सरकार ने हैदराबाद में स्नातकोत्तर अध्ययन विभाग की स्थापना करने के लिए सौ एकड़ ज़मीन देने का आश्वासन दिया है। अंत में धन्यवाद के बाद हीरक जयन्ती उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ।

हीरक जयन्ती समारोह के दूसरे दिन अर्थात् 26 सितंबर को राजभाषा संगोष्ठी, पदवीदान समारोह तथा भारतीय भाषा संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। मध्याह्न से पूर्व आयोजित राजभाषा संगोष्ठी बाबू श्री गंगाशरणसिंह की अध्यक्षता में प्रारंभ हुई जिसमें डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव (अध्यक्ष, भाषिकी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने 'भारत की द्विभाषिकता, बहुभाषिकता के संदर्भ में संप्रेषण तथा अनुवाद की मूलभूत समस्या' विषय पर अपना सारगर्भित निबन्ध पढ़ा। आपने बहुभाषिकता के प्रश्न पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहा—"बहुभाषिकता एकभाषी पाश्चात्य समाज के व्यक्तियों के लिए भले ही अप्राकृतिक और विसंगतिपूर्ण हो, लेकिन एशिया-अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के जैसे बहुभाषी देशों के लिए वह सहज और सामान्य भाषिक व्यवस्था है। 1652 मातृभाषाएँ और 67 शैक्षिक भाषाओंवाला हमारा देश निश्चित रूप से ही भाषा-वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों के लिए ही नहीं, बल्कि शिक्षानीति बनानेवाले राजनीतिज्ञों के लिए

भी एक चुनौती-भरा विभिन्न सामाजिक संदर्भ, सांस्कृतिक परिवेश और विषय-भेद के आधार पर हर भाषा की समरूप व्यवस्था भी विषमरूपी होने के लिए बाध्य है। भाषा की इस विषमरूपी प्रकृति को समझने के लिए ही विद्वानों ने कभी "रजिस्टर", "शैली", "डायग्लोसिया" कभी "उपकोण" आदि संकल्पनाओं को अपने भाषा-सिद्धांत में स्थान दिया है। भारतीय समाज की यह विशेषता रही है कि वह प्रयोजन-सिद्ध भाषा-भेद और भाषा-व्यवहार को सहज भाव से मान्यता देता आया है। भाषा दुराव को स्वीकार नहीं करती। उसकी अभिव्यक्ति और कथ्य का एकीकरण शिव-पार्वती की भांति प्रतिबद्ध होता हैं।"

दूसरे निबन्धवाचक श्री वंदेमातरम् रामचन्द्र राव, (अध्यक्ष, राजभाषा आयोग, आंध्र प्रदेश) ने 'राजभाषा तथा प्रादेशिक राज्य भाषाओं के विकास तथा प्रचलन में प्रतिबद्धता—सरकार तथा स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका'—विषय पर अपने निबन्ध का वाचन किया। अपने निबन्ध में भाषाओं के विकास में रुकावट पर विचार प्रकट करते हुए निरूपित किया कि—"अंग्रेज़ी के समर्थकों का यह भ्रम एक ओर प्रतिबद्धता है जिसके कारण हिन्दी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं का विकास और प्रसार निष्प्राण हो चुका है। भाषाई कट्टरता जिसको उभारा जाता है, राजनैतिक कारणों से एवं व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए, यह भी एक प्रकार का मानसिक रोग ही है, जिसके कारण भारतीय भाषाओं का प्रचार और विकास रुका हुआ है। भाषाई कट्टरता के आगे आत्मसमर्पण इस रोग को और बढ़ावा देता है। अपनी मातृभाषा के प्रति प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम स्वाभाविक है, लेकिन मातृभाषा-प्रेम के लिए यदि राष्ट्रीय हितों की बलि देनी पड़े तो वह अभिशाप साबित होगा।"

तीसरे विचारक श्री पी. वी. नरसिंहराव ने संविधान की धारा 351 और राजभाषा के विकास के स्वरूप की चर्चा करते हुए कहा, "यह धारा अपने आपमें एक धारा नहीं है, इससे सम्बन्धित और भी कई धाराएँ हैं जो मिलकर समग्र रूप में हिन्दी की स्थिति को ठोस आयाम प्रस्तुत नहीं करती।" संगोष्ठी के अध्यक्ष श्री गंगाशरण सिंह ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—"हमें राजभाषाओं को नकारने की साजिश कतई नहीं करनी चाहिए। क्योंकि राजभाषाओं के विकास के साथ-साथ आदान-प्रदान के दायरे में हिन्दी का विकास हो सकता है। हमें तमाम अनौचित्यपूर्ण बातों से हटकर इन बातों पर भी ध्यान देना होगा कि जनता की भाषा में जनता का न्याय हो।"

उपर्युक्त संगोष्ठी के बाद पदवीदान-समारोह प्रारंभ हुआ। पदवीदान समारोह में दक्षिण के चारों प्रान्तों से आये हिन्दी स्नातक-स्नातिकाओं को सम्बोधित करते हुए कर्नाटक के राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण ने कहा—"अहिन्दी क्षेत्रों में

हिन्दी का भारत संघ के राष्ट्रभाषा के तौर पर विकास और प्रगति इस तरह हो कि एक तरफ़ वह प्रादेशिक भाषाओं के विकास में रोड़ा न अटकाये और दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ी के तौर पर अस्थायी प्रयोग में अड़चन न डाली जाय। इस विषय में जो भी कदम उठाये जाय, वह प्रभावित जनता के सूक्ष्म मनोविचारों को ध्यान में रखकर, बड़ी सावधानी से किया जाय। परस्पर सद्भावना के आधार पर हो और बहुसम्मति से हो। अंग्रेजी का रहना मेरे विचार से आवश्यक है। क्योंकि हम विश्व में से अपने को अलग नहीं कर सकते। वैसे अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखना असंभव है।"

पदवीदान-समारोह में 661 विशारद, 338 प्रवीण तथा नौ स्नातकोत्तर स्नातक-स्नातिकाओं को पदवी प्रदान की गयी। तदुपरान्त भारतीय भाषा संगोष्ठी प्रारम्भ हुई। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता मलयालम के प्रसिद्ध कवि, समीक्षक, मलयालम 'मातृभूमि' के प्राधन सम्पादक श्री एन. वी. कृष्णवारियर ने की। श्रीमती कपिला वात्स्यायन (संयुक्त सचिव, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार) की अनुपस्थिति में उनका निबन्ध 'भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति, एकता की अन्तर्धारा' पढ़ा गया, जिसमें एशिया महाद्वीप को एक कुटुंब के रूप में निरूपित करते हुए श्रीमती कपिला ने साहित्य, कला और संस्कृति की अन्तर्धारा पर विस्तार से प्रकाश डाला। दूसरा निबन्ध था 'राष्ट्रीय एकता—साहित्यिक संगठन-सूत्र'। निबन्धकार श्री अखिलन (भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित तमिल साहित्यकार) ने हिन्दी की उपयोगिता पर विस्तार से चर्चा करते हुए तमिल के तिरुक्कुरळ को भारतीय भाषाओं की एकमात्र ऐसी कृति घोषित किया जिसकी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती। तीसरे निबन्धवाचक डॉ. रमेश चौधरी 'आरिगपूडि' ने 'साहित्यिक आदान-प्रदान' विषय पर अपने निबन्ध का पठन करते हुए बताया, "सभी भारतीय भाषाओं का साहित्य एक है। समय और स्थितियों का प्रभाव समान रूप से सभी भाषाओं के साहित्य पर पड़ता है, यह बात दीगर है कि कुछ देर से या पहले। साहित्यिक आदान-प्रदान की भूमिका बहुभाषी देश के लिए अहम् हुआ करती है।"

अंत में अध्यक्ष श्री कृष्णवारियर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "भारतीय भाषाओं से हिन्दी में और हिन्दी से अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्यक आदान-प्रदान की प्रक्रिया हमें तेज़ करनी चाहिए।"

गोष्ठी के बाद रात्रि नौ बजे से दक्षिण में पहली बार सभा द्वारा सर्वभाषा कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस कवि-सम्मेलन में सर्वश्री आर. के. पार्थसारथी (संस्कृत), डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन (हिन्दी), गुलाबचन्द जैन (गुजराती),

एम. जी. गडेकर (मराठी), पी. वी. श्रीनिवास (उर्दू), श्रीमती अमृतकौर (पंजाबी), एस. कन्दस्वामी "तुरैवन" (तमिल), आरुद्र (तेलुगु), कृष्ण वारियर (मलयालम), श्रीकान्त महापात्र (उडिया), अमलकांति घोष (बंगाली), डी. लिंगय्या (कन्नड), सदारंगाणी (सिंधी) आदि प्रतिष्ठित कवियों ने भाग लिया। तमिलनाडु के लोकप्रिय राजकवि श्री कण्णदासन ने कविता में निमंत्रित कवियों का स्वागत किया और सभा के इस उपादेय आयोजन को साधुवाद दिया। सम्मेलन की अध्यक्षता मलयालम के वरिष्ठ कवि श्री कृष्णवारियर ने की तथा संचालन डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन ने।

तीसरे दिन अर्थात् 27 सितम्बर को दक्षिण के दशकों से हिन्दी प्रचार-प्रसार कार्य में रत वरिष्ठ सेवाभावी हिन्दी प्रचारकों का सम्मान किया गया। सम्मान समारोह के अध्यक्ष थे डॉ. मोटूरि सत्यनारायण। इस समारोह में 344 हिन्दी प्रचारकों का सम्मान किया गया जो दक्षिण के चारों प्रांतों के थे। इसी दिन शाम को डॉ. हरिवंशलाल शर्मा (निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली) की अध्यक्षता में हिन्दी के पठन-पाठन पर प्रचारक-सम्मेलन तथा हिन्दी प्रचार संगोष्ठी सम्पन्न हुई। हिन्दी प्रचार संगोष्ठी में हिन्दी के पठन-पाठन को और तेज़ करने के लिए व्यावहारिक समस्याओं पर विचार किया गया तथा कई प्रस्ताव पारित किये गये। इस संगोष्ठी में मुख्य निबंधवाचक थे डॉ. एस. के. वर्मा (प्राचार्य, भाषाविज्ञान विभाग, केन्द्रीय अंग्रेज़ी तथा विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद) विषय था, 'हिन्दी भाषा शिक्षण में व्याकरण का स्थान'। इसके बाद की परिचर्चा में दक्षिण के अनुभवी प्रचारकों ने भाग लिया और अपने प्रखर विचार प्रकट किये।

सुविख्यात नृत्यांगना कुमारी शोभा नायुडु और कुमारी लक्ष्मी का कूचिपूडि नृत्य (दि. 25-9-'79) और कुमारी लक्ष्मी इन्द्रसेन का भरतनाट्यम् (दि. 27-9-'79) विशिष्ट आकर्षण साबित हुए। इस प्रकार दक्षिण में हिन्दी की हीरक जयन्ती बनाम दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की हीरक जयन्ती समारोह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

यह त्रिदिविसीय भव्य समारोह हिन्दी प्रचारकों में ही नहीं, सामान्य जनता के मानस में भी नया उत्साह और विश्वास भरने में सफल रहा। सभा के इस विराट आयोजन ने यह साबित कर दिया कि राजनीतिक गतिरोध के बावजूद हिन्दी के प्रति जनता में—विशेषकर युवा पीढ़ी में आस्था और आतुरता बढ़ती जा रही है।

यह एक शुभ लक्षण है राष्ट्रभाषा के सार्वजनीन संप्रेषण तथा राष्ट्रीयता के संपोषण के संदर्भ में।

★

स्वराज्य की कामना—बापूजी की परिकल्पना

[स्वतंत्रता-आंदोलन के ज़माने में की गयी गांधीजी की यह परिकल्पना या परिभाषा क्या आज के संदर्भ में—स्वराज्य-प्राप्ति के तीन दशकों के बाद भी—कितनी कुछ साकार होने की दिशा में है ? चिन्तन की ही नहीं, चिन्ता की दशा भी गहराती जा रही है ।—सं.]

स्वराज्य की व्याख्याओं के सम्बन्ध में मैं अपने मन में तो विचार किया ही करता हूँ। अब उन्हें पाठकों के सामने भी उपस्थित करता हूँ:—

1. स्वराज्य का अर्थ है, स्वयं अपने ऊपर प्राप्त किया हुआ राज्य। इसे जो मनुष्य प्राप्त कर चुका है, वह अपनी व्यक्तिगत प्रतिज्ञा का पालन कर चुका।

2. परन्तु हमने तो उसके कुछ लक्षणों और स्वरूप की कल्पना की है। अतएव स्वराज्य का अर्थ है, देश के आयात और निर्यात पर सेना और अदालतों पर जनता का पूरा नियंत्रण।

3. परन्तु व्यक्तिगत स्वराज्य का उपयोग तो साधु लोग आज भी करते होंगे, और हमारी पार्लिमेंट स्थापित हो जाने पर भी संभव है 'लोगों की दृष्टि में' स्वराज्य न आये। इसलिए स्वराज्य का अर्थ है, अन्न-वस्त्र की बहुतायत। परन्तु वह इतनी होनी चाहिए कि किसीको भी उसके बिना भूखा और नंगा न रहना पड़े।

4. ऐसी स्थिति हो जाने पर भी एक जाति या एक श्रेणी के लोग दूसरों को दबा सकते हैं। अतएव स्वराज्य का अर्थ है ऐसी स्थिति, जिसमें एक बालिका भी घोर अन्धकार में निर्भयता के साथ घूम-फिर सके।

5. उपर्युक्त चार व्याख्याओं में कितनी ही बातों का समावेश दिखाई देगा, तथापि राष्ट्रीय स्वराज्य में प्रत्येक अंग सजीव और उन्नत हो जाये और होना

चाहिए तो उस दशा में स्वराज्य का अर्थ होगा अन्त्यजों के प्रति अस्पृश्यता की भावना का सर्वथा लोप।

6. ब्राह्मणों और अब्राह्मणों के झगडे की समाप्ति।

7. हिन्दू-मुसलमानों के मनोमालिन्य का नाश। इसका अर्थ है कि हिन्दू मुसलमानों की भावनाओं का ध्यान रक्खें और इसके लिए जान तक दे दें। इसी तरह मुसलमान हिन्दुओं की भावनाओं का ध्यान रक्खें। मुसलमान गो-हत्या करके हिन्दुओं का दिल न दुखावें, बल्कि स्वयं ही गो-वध बन्द कर दें और हिन्दू भाई के चित्त को चोट न पहुँचने दें तथा हिन्दू, बिना किसी तरह का बदला चाहे, मसजिदों के सामने बाजे न बजावें और मुसलमानों का जी न दुखावें, बल्कि मसजिदों के पास से गुजरते हुए बाजे बन्द रखने में बड़प्पन समझें।

8. स्वराज्य का अर्थ है हिन्दू, मुसलमान, सिख. पारसी, ईसाई, यहूदी सभी धर्मों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन कर सकें और ऐसा करते हुए एक-दूसरे की रक्षा और एक दूसरे के धर्म का आदर करें।

9. स्वराज्य का अर्थ है कि प्रत्येक ग्राम चोरों और डाकुओं के भय से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाय और प्रत्येक ग्राम अपने लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र पैदा करे।

10. स्वराज्य का अर्थ है, देशी राज्यों, ज़मींदारों और प्रजा में मित्रभाव रहे, देशी राज्य अथवा जमींदार प्रजा को परेशान न करें और रियाया राजा अथवा ज़मींदार को तंग न करे।

11. स्वराज्य का अर्थ है, धनवान और श्रमजीवियों में परस्पर मित्रता। मज़दूर उचित मजदूरी लेकर धनवान के यहाँ खुशी से मजूरी करे।

12. स्वराज्य वह है, जिसमें स्त्रियाँ माता और बहनें समझी जाएँ और उनका मान-आदर हो तथा ऊँच-नीच का भेद-भाव दूर होकर सब परस्पर भाई-बहन की भावना से बरताव करें।

इन व्याख्याओं से सिद्ध होता है:—

1. स्वराज्य में राज्य-सत्ता शराब, अफ़ीम इत्यादि (मादक पदार्थों) का व्यापार न करे।

2. स्वराज्य में अनाज और रुई का सट्टा न हो।

3. स्वराज्य में कोई कानून को भंग न करे।

4. स्वराज्य में स्वेच्छाचार के लिए बिलकुल स्थान न रहे, जिससे कोई अपने ही खिलाफ़ की गयी शिकायत का फैसला खुद ही काजी बनकर न करे, बल्कि देश की बनायी अदालत में अपने खिलाफ़ की गयी फरियाद का फैसला होने दे।

★

भाग्य आज जागा

[दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की हीरक जयन्ती समारोह के समय संपन्न अखिल भारत कवि-सम्मेलन में भाग लेने पधारे कविरत्नों का स्वागत करते हुए तमिलनाडु सरकार के आस्थान कवि और लोकप्रिय गीतकार **श्री कण्णदासन** की सुमधुर स्वागत-कविता का पद्यानुवाद]

अनुवादक : **श्री वी. राजगोपाल शर्मा, तिरुच्चि**

ईशवंदना

शक्तिरूप गीताकार भगवान कृष्ण है,
शब्द वह अर्थ वह ज्योति स्वरूप है,
सचराचर-पालक औ' पितामह के बाप है,
शिला की मूर्ति बन दीखता मौन है।

अपलक नयनों से जो देखता है सदा
आँख बचाकर क्या कोई कुछ कर सका ?
अणु में महत में हर कहीं जो खडा
उसीके चरण पर सिर नवाता रहा।

देशमहिमा

प्राचीन देश बड़ा भी कम नहीं,
भलना भूल सब इसकी संतान है,

'भारती' ने कहा, पहले हम भारतीय हैं
बाद को होंगे हम तमिलन या आंध्र हैं,

कितने किस्म के पेड पौधे यहाँ!
कितनी रस्में हैं, धर्म कितने यहाँ!
भाषायें अनगिनित मंजी औ' मिठी यहाँ
भिन्नता के बीच एकता और कहाँ?

उत्तुंग हिमालय उत्तर में है खडा,
दक्षिण के कोने में कन्याकुमरी रही,
धर्म की धाग में गूंथे सब यात्री बन
देश की एकता-भाव फैलाते रहे।

कश्मीरी भाषा की रसीली कवितायें
गंगा किनारे की ललित रचनाएँ
स्वर्णिम वंग के मधुर नव गीत
वीर-मराठी की अनुपम उपमायें

उडीसा के गीतों की ऊँची कल्पनाएँ,
कन्नड-तमिल और मधुर मलयालम,
हिन्दी-सिंधी और शीरींज़बाँ उरदू,
सबके ज्ञान से भर-पूर है भारत।

सभा की प्रशंसा

भारत देश की प्रमुख भाषाओं में
भावपूर्ण कविताएँ रचकर कवि आये हैं,
भावुक कवियों को एक ही मंच पर
भाग्य से देखने व सुनने ही का समय मिला।

अभूतपूर्व यह अद्भुत दृश्य है
आज तक किसीने सोचा तक नहीं,

हिन्दी प्रचार सभा ने हिम्मत बाँधकर
आज यह कितना अच्छा काम किया!

निस्वार्थ भाव से निज को न प्रकट कर
निरुपम काम किया सभा ने साठों साल
बयान के बाहर है सेवा की प्रशंसा
प्रकट करूँ कैसे मैं अदना-सा आदमी?

जीवन का लक्ष्य ही सेवा समझकर
जीवन-भर सेवायें की हैं अनेकों ने,
उनके प्रयत्न से बढ रही यह सभा
चकाचौंध करती आप चांदिनी के समान।

तीस बरसों के पूर्व ही एक दिन
दर्शन किया यही सभा के बाप का,
आँखें भर गयीं बापू के दर्शन से
आज भी जी झूमता उसके स्मरण से।

उस समय तो यहाँ भवन इतने न थे
नीम के आम के अन्य कुछ पेड़ थे
पेड़ों के बीच में खडा था यह भवन
बेमिसाल सेवा से बढ़ रहा रात-दिन।

उस दिन से लेकर आज की रात तक
उत्तम कार्यों को देखता आ रहा,
मन ही मन खुश हुआ, ध्यान देता रहा,
मनन करता रहा बापू के प्रयत्न का।

स्वागत

कवि सम्मेलन के सभापति महोदय!
कविरत्न कोविद कल्पना के सागर

भारत की एकता बचाने कमर कस
पधारे हैं आप सब स्वीकार करें स्वागत।

आकाश बादल से अब उतर आ रहा
आपका कविता-रस चखने की चाह से,
बहती ठंडी हवा स्वागतार्थ नगरी-भर
भाग्य आज जागा है नगर-निवासियों का।

मेहमान-नवाज़ी में बेमिसाल हैं तमिल लोग
मुहब्बत से द्वार खोल दिल का खडे हैं,
असत्य यह कभी नहीं अदेय कुछ यहाँ नहीं,
अतिथि को हम ईश मान अर्पण करते यहाँ।

आपकी भाषाओं से अपरिचित हम ज़रूर,
ताल-लय-भावों के ज्ञान से हैं भरपूर,
प्याले भर प्याले कविता रस चखकर
प्रसन्न हो नाचेंगे भेद-भाव भूलकर।

प्रार्थना

आप सबका स्वागत करता हूँ दिल से,
सभा की ओर से तथा रसिकों की तरफ़ से
सर्वेश से विनती है सबको चिरायु रखें,
(आप) सुहृदों से प्रार्थी हूँ एकता को बढ़ाते रहें।

सौ-सौ सालों तक सभा का काम रहे,
दूर-दूर देशों तक इसका शुभ नाम रहे,
सेवा में स्वर्ग का दर्शन करते रहें,
सेवक इसके सब भगवान कृपा करें।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

हीरक जयंती समारोह (25, 26, 27 सितंबर, 1979) की झाँकियाँ

मुखपृष्ठ :

1. माननीय श्री मोरारजी देसाई का पूर्णकुंभ के साथ स्वागत; सामने सभा के उपाध्यक्ष श्री पी. वी. नरसिंह राव, श्री ए. पी. सी. वीरबाहु संदर्शित हैं.

2. गांधी मंडप में प्रतिष्ठित बापू की मूर्ति के अनावरण के बाद श्री देसाई के हाथों मालार्पण. मूर्ति के शिल्पी हैं स्वतंत्रता-सेनानी श्री 'आर्या'.

3. हीरक जयंती के अवसर पर प्रकाशित विशिष्ट स्मारिका-ग्रंथ 'दक्षिण दर्शन' के प्रमोचक महामहिम श्री प्रभुदास पटवारी (राज्यपाल, तमिलनाडु) के हाथों से ग्रंथ की प्रथम प्रति स्वीकारते हुए श्री पी. वी. नरसिंह राव.

दूसरा आवरण-पृष्ठ :

1. समारोह के प्रारंभ में झंडावंदन. संयोजक श्री पी. नारायण (भूतपूर्व साहित्य सचिव). मुख्य अतिथि श्रीमती सरोजिनी वरदप्पन.

2. सभा की हीरक जयंती के संदभ में प्रस्तुत विशेष डाक-मुद्रण तथा लिफ़ाफा-विलोपन समारंभ. डाक विभाग के वरिष्ठ अधिकारी श्री एस. एस. रामन, श्री पी. वी. नरसिंह राव को विशेष विलोपित डाक-लिफ़ाफ़ा भेंट करते हुए.

3. उद्घाटन-समारोह के अवसर श्री एस. धर्मराजन (कार्यवाहक प्रधान सचिव) समारोह के निमित्त प्रेषित संदेश पढ़ते हुए.

4. दि. 26-9-'79 रात को सम्पन्न सर्वभाषा कवि-सम्मेलन की एक छवि.

चौथा आवरण-पृष्ठ :

1. सम्मान्य वरिष्ठ अतिथियों के साथ सभा के प्रमुख सर्वश्री पी. के. बालसुब्रह्मण्यम् (कोषाध्यक्ष), एस. धर्मराजन, ए. पी. सी.

बारबाहु (द्वितीय उपाध्यक्ष), पी. रामचन्द्रन (भूतपूर्व केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री), प्रभुदास पटवारी (तमिलनाडु के राज्यपाल), मोरारजी देसाई, पी. वी. नरसिंह राव (प्रथम उपाध्यक्ष), बुजुर्ग हिन्दी प्रचारक, डॉ. पी. के. कुंजिरामन नायर, टी. हयग्रीवाचारी (शिक्षा-मंत्री, तकनीकी, आंध्र सरकार), शीर्ल ब्रह्मय्या (सदस्य, का. का. समिति) आदि.

2. दि. 26-9-'79 को सम्पन्न विशेष पदवीदान समारोह में 'दीक्षांत-भाषण' करने पधारे हुए कर्नाटक के राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण सभा की शिक्षा-परिषद् तथा कार्यकारिणी समिति के सदस्यों और सभा के सचिवों के साथ दर्शित हैं.

3. उद्घाटन-समारोह में प्रमोचित विशिष्ट शोधग्रंथ 'हिन्दी और मलयालम के आधुनिक खंडकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन'—(लेखक : डॉ. कुंजिरामन नायर) की प्रथम प्रति श्री हयग्रीवाचारी से स्वीकारते हुए माननीय प्रभुदास पटवारी.

4. दि. 25-9-'79 रात को आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम कूचिपूडि-नृत्य की मोहक मुद्रा में विख्यात नृत्यांगनाएँ—कुमारी शोभा नायुडु और कुमारी लक्ष्मी.

(सभी चित्र : **उत्तरा**)

बधाइयाँ
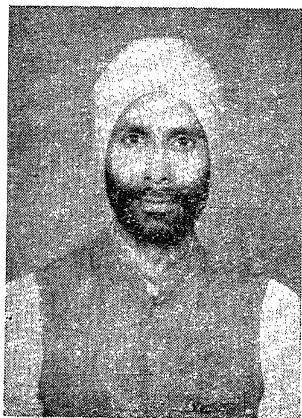
हमारे पुराने हिन्दी प्रचारक श्री रामसुब्रह्मण्यम् (प्रधानाध्यापक, राष्ट्रभाषा प्रवीण विद्यालय, गुरुनिकेतन, कूनूर-नीलगिरि) को मैसूर विश्व विद्यालय ने आपके शोधप्रबंध "प्रेमचंद की कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन" पर 'पी.एच-डी' की उपाधि प्रदान की है। डॉ. रामसुब्रह्मण्यम् को हमारी बधाइयाँ !

तेलुगु की प्रयोगवादी कविता

● वाई. वी. एस. सत्यनारायण मूर्ति, अनकापल्ली

तेलुगु में ट्रडिशन् (Tradition) का अर्थ परंपरा होता है। हमें ज्ञात है कि हर युग के सामाजिक जीवन से संबंधित सभी अंश परंपरा के अंतर्गत आते हैं। वर्तमान काल परंपरा को अतीत से मूलधन के रूप में ग्रहण कर लेता है। परंपरा स्वयं एक व्यवस्था नहीं है, परंतु कोई व्यवस्था पर विश्वास प्रकट करना ही होता है। परंपरा साहित्य-शरीर की रीढ़ होती है। कुछ परंपराओं के अनुसार चलनेवाला साहित्य हमेशा के लिए जीवित रहेगा। परंपरा को दृष्टि में रखकर डा० राधाकृष्ण ने कहा है—"A living tradition influences our inner faculties, humanizes, our nature and lifts as to a higher level" (The Hindu View of life, page 15) वेद, पुराण, इतिहास, काव्य एक-दो नहीं, सभी साहित्यिक प्रक्रियाएँ इस परंपरा के अंतर्गत आती हैं।

अपने दादा-परदादाओं की परंपरा का अनुसरण न करके नये मार्गों का अन्वेषण करना ही प्रयोग है। प्रयोग को साहित्य ने इस अर्थ में ही ग्रहण किया है। परंपरा और प्रयोग, ये दोनों शब्दों को स्थूल दृष्टि से देखने पर थोड़ा-सा भेद दिखाई पड़ता है, परंतु इनका संबंध निकट है। हर परंपरा किसी दिन का प्रयोग अवश्य रही होगी। आज का प्रयोग भविष्य में अवश्य एक परंपरा होगी, वह काल गति के अनुसार, तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के कारण क्षीण परंपरा बनेगी। तब इसके आधार पर ही प्रयोग का जन्म होता है।

तेलुगु भाषा और साहित्य का मूल है प्रयोग। यह विषय तेलुगु-भाषा का इतिहास से स्पष्ट होता है। तेलुगु-साहित्य के इतिहास का परिशीलन करें तो हम समझ सकते हैं कि किन-किन प्रयोगों को तेलुगु कवियों ने किया है। सन् 11 वीं शताब्दी में नन्नय्या ने आंध्र महाभारत की रचना की थी। उस काल में तेलुगु देश में, तेलुगु से भी संस्कृत का प्रभाव अधिक था। उस काल की परंपरा यह थी कि तेलुगु भाषी होने पर भी कवि-गण साधारणतया संस्कृत में ही कविता

रचते थे। आदि कवि नन्नय्या ने आंध्र महाभारत को तेलुगु में लिखकर एक प्रकार का प्रयोग किया था।

इस तरह नन्नय्या ने मार्ग कविता का प्रचार तेलुगु देश में किया। बाद में मार्ग-कविता को ही परंपरा के रूप में आंध्र जाति ने स्वीकृत की थी। नन्नेचोड देवुडु ने देशी कविता को जन्म देकर प्रयोग किया था। उन्होंने कन्नड, तेलुगु और संस्कृत शब्दों को मिलाकर, उनसे नये समासों का निर्माण किया था। तिक्कन्ना, सोमनाथ दोनों ने मार्ग और देशी कविताओं का समन्वय करके प्रयोग किये थे। वीर शैवों ने शैव साहित्य को द्विपदा नामक देशी छंद में लिखकर प्रचार किया था। उस समय के पंडितों ने उपर्युक्त प्रयोगों को अस्वीकार किया था, परंतु बाद में ये सभी परंपराओं के रूप ग्रहण करने लगे। प्रबंध युग के अनंतर त्यागय्या क्षेत्रय्या और अन्नमाचार्य आदि ने गीत-पद्धति को अपनाया। गीत-साहित्य भ, बाद में परंपरा के रूप में स्वीकृत किया गया। आधुनिक काल के साहित्य में तो अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं।

आधुनिक तेलुगु साहित्य की प्रयोगवादी कविता

आधुनिक तेलुगु साहित्य में भाव की दृष्टि से प्रगतिवाद, भाषा की दृष्टि से प्रयोगवाद और छंद की दृष्टि से गद्य-कविता के नाम उल्लेखनीय हैं। नयी कविता के लिए प्रयोगवाद का नाम अभिहित किया गया है। कारण यह है कि इस धारा से संबंधित कवियों ने अनेक प्रयोग किये हैं। उन्होंने प्रतिक्रियात्मक परिस्थितियों में प्रयोग किये हैं। प्रयोगवाद परंपरागत होते हुए नवीन आग्रहों से पूर्ण है। इस काव्य-धारा में व्यष्टि और समष्टि, बुद्धि और कल्पना एवं विश्व-व्यापक पथ पर विचार विश्लेषण की क्षमता दिखाई देती है। इस काव्य-धारा में व्यक्तिवाद के अतिरिक्त समष्टि की भावना का भी निरंतर ध्यान रखा गया है। इन कवियों पर फ्राइड़ के मनोविश्लेषण का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है।

तेलुगु-साहित्य में नयी कविता (प्रयोगवाद) का प्रादुर्भाव सन् 1941 के आसपास हुआ। इस काव्य-धारा ने छायावाद और प्रगतिवाद की उपेक्षा, जन-जीवन से अधिक संपर्क स्थापित करने की चेष्टा की। प्रयोगवादी कविता ने सुख-दुख, आशा-निराशा के घात-प्रतिघातों में बढ़ते हुए युगीन जीवन के आंधी-तूफानों का विरोध किया।

आधुनिक तेलुगु के काव्य-साहित्य में श्री श्री तथा श्रीरंगम् नारायण बाबू ने विभिन्न प्रकार के प्रयोग करके प्रयोगवादी कविता के जन्मदाता बन गये हैं। उन्होंने नवीन काव्य-रीतियों का अन्वेषण किया और कई प्रयोग करके कविता में

नवीनता लाने का प्रयत्न किया। श्री श्री ने मार्क्सवाद, अतियथार्थवाद और प्रतीकवादों को साहित्य में स्थान दिया। उन्होंने केवल वस्तु में ही नहीं, भाषा, छंद आदि विषयों की दृष्टि से भी अनेक प्रयोग किये। श्री श्री से ही तेलुगु-साहित्य में गद्य-कविता का प्रादुर्भाव हुआ था। उदाहरणार्थ श्री श्री कविता देखिये :—

"गदि लो एवरू लेरु
गदि निंडा निश्शब्दम्
सायंत्रम् आरुन्नर
गदि लोपल चिनुकुल वले चीकट्लु"

('आकाश दीपम् कविता से')

ऋक्कुलु (वेद की ऋचाएँ) नामक कविता में श्री श्री ने कहा—

"कुक्कपिल्ला,
अग्गिपुल्ला
सब्बुबिळ्ळा—
हीनंगा चूडकु देन्नी!
कवितामयमेनोय अन्नी।"

(कुत्ता-पिल्ला, दियासलाई और साबुन का टुकड़ा सभी भी कविता के लिए योग्य हैं। किसीको भी हीन मत समझो) भाव की दृष्टि से तेलुगु साहित्य में यह एक महान प्रयोग है। उन्होंने आगे यों कहा था :—

"कांदेदी कवित कनर्हम्
औतौनु शिल्प मनर्घम्
उंडालोय कवितावेशम्"

(सृष्टि की सभी चीजें कविता के लिए योग्य हैं। कविता के लिए आवेग और शिल्प की प्रधानता है।)

श्री श्री के बाद आरुद्रा ने ई. ई. कमिंग्स् के प्रभाव से "वेय्यि ओल्टुल कवित्वम्" नामक गीत को लिखा है। निम्न लिखित गीत में एक प्रकार का प्रयोग हमें दिखाई पड़ता है।

\+ { गारडीवाडु प्रवेशिंचि रक रकाल प्रणालिकल
कागितम् पूवुलु
वासन चूपेट्टि

— { ना बाधे ना प्रेयसि
अदि स्वर्गादपि गरियसि

पारुजात सुमालु सुमा अंटे गारिडी वाडि
कोरिक मीद
जनुलम् मनम् चप्पट्लु—

मुल्ल कंचेलु मेसि बलसिन
चित निप्पुल कंटि रेप्पलु
एप्पुडय्या कप्पुकुंटाई

कोडताम् आकलि तो होरा होरी पो
राडि कांदिशीकुलैन
प्रेगुलकु कट्लु"

उपर्युक्त कविता में '+' चिह्नांकित चरणों को पढ़ने के अनंतर, '—' चिह्नांकित चरणों को पढ़ना चाहिए। '+' चिह्न क्रांति के लिए, और '—' चिह्न रसिकता के लिए प्रतीक हैं। 'गारडीवाडु' (जादूगर) कांग्रेस सरकार के लिए, कागितम् पूवुलु (कागज का फूल) प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए प्रतीक हैं। लेनिन का एक वाक्य—"Let us electrify first" ही इस कविता का मूल होगा। आरुद्रा ने उपर्युक्त गीत में '+' '—' चिह्नों द्वारा एक प्रकार का प्रयोग किया है और साथ ही अपनी चमत्कार-प्रियता का प्रदर्शन किया उन्होंने अपनी कविता में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया है। अंग्रेजी शब्दों को तेलुगु प्रत्ययों से जोड़कर नये शब्दों का निर्माण किया है—

"ब्रेइन लो ब्रेनगन्
रेइन ला आलोचनल ट्रेइन
स्पइनल कार्ड लो स्पेइन
गूम्ली तिमिरालु चेरिषिचि
सैतान मनलुनि शेरिषिचुनपुडु"

उपर्युक्त पंक्तियों में, ब्रेइन, ब्रेनगन्, रेइन् ट्रेइन, स्पइनल्, चेरिषिचि चेरिषिचु, आदि अंग्रेजी शब्द हैं। 'चेरिष्' शब्द को इंचु, इंचि जोड़कर, चेरिषिचि बनाया गया, उसी तरह शेरिष् शब्द को इंचु जोड़कर शेरिषिचु बनाया गया है। आरुद्रा ने ई. ई. कमिंग्स् के प्रभाव से एक विचित्र प्रकार से शब्दों को तोड़कर एक प्रकार के चमत्कार का प्रदर्शन किया—

"ओगेन नी गन्
मा पेन् ओपेन्"

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने एक गंभीर विषय का उल्लेख किया है।

इलियट् और आड्सन् के प्रभाव से तेलुगु कवियों ने नगर-जीवन का चित्रण किया है। आधुनिक युग की सभ्यता से नगर-जीवन का जो नैतिक पतन हुआ है, उसका चित्रण तेलुगु कवियों ने अपने काव्यों में किया है।

आरुद्रा ने कहा:—

यांत्रिक नागरिकत कांतिवंत मैन चीकटिवले (यांत्रिक सभ्यता कांतिमय अंधेरी-सी) नगरों का आक्रमण कर रही है। उन्होंने नगर के बारे में और भी कहा है—

"आधुनिक रंगेली युवति लाग
नगरानिकि मेदडु तक्कुव
षोकुलेक्कुव आशयालु लेनि
आशलु, विलाशालु एक्कुव"

(आधुनिक नगर-जीवन आधुनिक रंगेली स्त्री ी तरह है। इसके लिए कोई दिमाग नहीं है, आशय भी नहीं है। नगर-जीवन विलासिता से भरा हुआ है।) इस तरह आरुद्रा ने भाषा और शैली की दृष्टि से भी अनेक प्रयोग किये हैं।

आरुद्रा के बाद तेलुगु साहित्य क्षेत्र में इस काव्य-धारा के अंतर्गत दिगंबरकवुलु के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'हिक्' नामक विशेष प्रकार के छंद में कविता लिखी है। उन्होंने छदं की दृष्टि से नहीं, भाव की दृष्टि से भी अनेक प्रयोग किये हैं। उदाहरणार्थ ज्वालामुखी की कविता में से कुछ पंक्तियों का परिशीलन कीजिये:—

"गोंगली पुरुगु भावालनु भस्ममु चेयाली,
निर्मल मैत भाव वीचिकलनि
हायिग प्रकटिंप जेय्यालि"

दिगंबर कवियों के अनंतर इस पीढ़ी के अंतर्गत रेंटाल गोपालकृष्णा, अद्धेपल्ली, मादिराजू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अत्याधुनिक भी भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उल्लेखनीय प्रयोग कर रहे हैं। प्रधानतः प्रयोगवादी कवियों ने जीवन के विभिन्न आयामों को काव्य-रूप देने का प्रयत्न किया है। यही प्रयोगवाद की काव्यगत सार्थकता है। यह समग्र मानवता के प्रति सजग एवं संवेदशीनल है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगवादी कविता आज युग-पट को अपने मुक्त छंदों के संकेतों के माध्यम से युग-मानव के लिए नवीन भावभूमि प्रस्तुत कर रही है।

कालिकट में अमीर खुसरो सप्तम जन्म-शताब्दी समारोह

दक्षिण-भर में सर्वप्रथम कालिकट विश्वविद्याल हिन्दी विभाग के तत्वावधान में गत अक्तूबर 16, 17 को महान कवि एवं सांस्कृतिक और भावात्मक एकता के अग्रदूत अमीर खुसरो की सप्तम जन्म शताब्दी समारोह समुचित ढंग से मनाया गया। कालिकट विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग ने इस महान साधक की सप्तम जन्म-शती मनाने की आवश्यकता महसूस की और विभागाध्यक्ष डा. मलिक मोहम्मद के नेतृत्व में यह भव्य योजना संपन्न हुई।

समारोह से संबंधित दो दिन के कार्यक्रम कालिकट टाउन हाल में आयोजित हुए। दो दिन की तीन संगोष्ठियों में बहुमुखी प्रतिभा के धनी अमीर खुसरो की साहित्यसेवा के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला गया। इन संगोष्ठियों और समापन-सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से विद्वान उपस्थित हुए और संपूर्ण कार्यक्रम व्यापक पैमाने पर चला।

16 अक्तूबर दुपहर 3 बजे समारोह का उद्घाटन और प्रथम संगोष्ठी चली। संगोष्ठी का विषय था—'हिन्दी भाषा और साहित्य को अमीर खुसरो की देन।' संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए डा. मलिक मोहम्मद ने कहा—"अमीर खुसरो भारत के उन मानवतावादी, समन्वयवादी महापुरुषों में से हैं जिन्होंने इस देश की महती सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया था। वे खड़ी बोली के प्रथम कवि, उदार सूफी साधक, हिन्दु-मुस्लिम एकता के अग्रदूत, सांस्कृतिक समन्वय के सेतुबन्ध, भारतीय संगीत के उन्नायक ही नहीं, बल्कि जन्मभूमि के प्रति अगाध प्रेम रखनेवाले पक्के राष्ट्रप्रेमी भी थे। भारत के इतिहास के गत सात सौ वर्षों में ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन अन्य किसी व्यक्ति में दुर्लभ हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में उनकी देन अप्रतिम और अद्भुत है। आज की विशिष्ट परिस्थितियों में उस महात्मा की याद करना और उनके समन्वयवादी व्यक्तित्व के सामने श्रद्धांजलि समर्पित करना हर भारतीय का कर्तव्य है।...इस प्रथम संगोष्ठी में कर्नाटक विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. आर. के. मुदलियार ने अध्यक्षता ग्रहण की और मद्रास विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. शंकरराज नायुडु, मद्रास के डा. चन्द्रकान्त मुदलियार, हिन्दीतर भाषी हिन्दी साहित्यकार प्रो. चंद्रशेखरन

नायर और कालिकट विश्वविद्यालय के डा. इकबाल अहम्मद ने हिन्दी भाषा और साहित्य को अमीर खुसरो की देन के विविध पहलुओं पर विद्वत्तापूर्ण भाषण दिये। आर. के. मुदलियार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि भाषाविरोध पैदा करने की वस्तु नहीं है, वह जनता के बीच संपर्क और मैत्री संस्थापित करने का श्रेष्ठ माध्यम है। इस तथ्य को अमीर खुसरो ने सर्वप्रथम समझ लिया था और इसी लिए उन्होंने विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषाओं में समन्वय लाने का भरसक प्रयत्न किया और इस कार्य में सफल भी निकले। खुसरो का यह सत् प्रयत्न ही वर्षों के बाद आज भी भारतीय जन-मानस में उनको जीवित रखता है। डा. शंकरराज नायडु ने अपने भाषण में खुसरो-कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए खुसरो को अतिमानव सिद्ध किया। खुसरो की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए डा. नायडू ने कहा कि खुसरो की भाषा उस ज़माने में जन-संपर्क की भाषा रही और आज भी वह उसी स्थान पर आसीन है। खुसरो ने अपनी अन्तर्दृष्टि के कारण ही 'हिन्दुवी' को जन्म दिया और वह आज विकसित होकर राष्ट्रभाषा और संपर्कभाषा बन गयी है। डा. चन्द्रकान्त मुदलियार ने अपने भाषण में यह मत प्रकट किया कि प्राचीन भारत में भावात्मक एकता का सबल माध्यम संस्कृत भाषा रही। लेकिन वह स्थान आज हिन्दी ने ग्रहण किया है। यह बहुत ही आश्चर्यजनक बात है कि खुसरो ने छे सौ वर्षों के पहले जिस भाषा स्वरूप को रच डाला था वह आज राजभाषा है और इस दृष्टि से खुसरो सच्चे अर्थों में क्रान्तदर्शी कवि थे। प्रो. चन्द्रशेखरन नायर ने खुसरो को हिन्दी के प्रथम जनकवि सिद्ध किया। खुसरो की कविताओं से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रो० नायर ने कहा कि खुसरो की कविता की आत्मा जन-जीवन है और उनकी कविता की सारी सामर्थ्य और शक्ति जन-जीवन से प्ररणा प्राप्त करने में है। डा. इकबाल अहमद ने खुसरो के काव्यशास्त्र विषयक विचारों का विश्लेषण करते हुए उनकी कविताओं में उपलब्ध काव्य-शास्त्रीय तत्वों का परिचय दिया।

17 अक्तूबर सबेरे 10 बजे दूसरी संगोष्ठी शुरू हुई। इस संगोष्ठी का विषय था—'अमीर खुसरो एक महान इतिहासकार के रूप में'। इस संगोष्ठी का संचालन कालिकट विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग ने किया। इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा. एम. जी. एस. नारायण, सर्वश्री के. के. एन. कुरुप, एस. एम. कोया, वी. कुंजाली और कमाल पाशा ने खुसरो को एक इतिहासकार के रूप में खुसरो के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। सब वक्ता इस बात से सहमत हुए कि खुसरो महान कवि के साथ-साथ श्रद्धेय इतिहासकार भी थे।

खुसरो की कृतियों में प्राप्त ऐतिहासिक तत्वों में सत्य का अंश बहुत अधिक है, क्योंकि दरबारी होने के नाते उस समय की राजनीति से उनका प्रत्यक्ष संबन्ध था।

दुपहर के दो बजे तीसरी संगोष्ठी 'अमीर खुसरो सांस्कृतिक एकता के अग्रदूत' विषय पर शुरू हुई जिसमें डा. मलिक मोहम्मद, डा. शंकरराज नायडु, डा. आर. के. मुदलियार, डा. इकबाल अहमद और प्रो. चन्द्रशेखरन नायर ने भाग लिया। सांस्कृतिक क्षेत्र में खुसरो की देन को समझाते हुए डा. मलिक मोहम्मद ने कहा कि भारतीय संस्कृति के प्रति खुसरो के मन में अटूट आस्था थी। उन्होंने भारतीय संस्कृति को जीवन से अलग किसी आदर्श-विशेष का अनुसरण करनेवाली संस्कृति न मानकर उदात्त मूल्यों को महत्व देनेवाली संस्कृति के रूप में ग्रहण किया था। हिन्दू और मुसलमान, संस्कृत और फारसी, धर्म और अध्यात्म सबके भीतर एक समन्वय और संयोजन ढूंढ़ना ही उनका परम लक्ष्य था। उनकी इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि खुसरो अपने समय में भारतीय सामाजिक संस्कृति के उदात्त आदर्शों के सशक्त व्याख्याता बन सके। डा. शंकरराज नायडु ने हिन्दी के निर्माण में तथा भारतीय संगीत के विकास में खुसरो की अनुपम देन का परामर्श लेते हुए उसके सांस्कृतिक महत्व को स्पष्ट किया। खुसरो के देशप्रेम का परिचय देते हुए प्रो. चन्द्रशेखरन नायर ने यह गौरव अनुभव किया कि अमीर खुसरो के काव्य देश प्रेम के अमर प्रमाण है। आज भी खुसरो का देशप्रेम अनोखा आदर्श प्रस्तुत करता है। डा. आर. के. मुदलियार तथा डा. इकबाल अहमद ने खुसरो की कविताओं में प्राप्त समन्वय की विराट चेष्टा पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला और उन्हें सांस्कृतिक एकता के अग्रदूत सिद्ध किया।

उसी दिन पाँच बजे शाम को समापन सम्मेलन चला। कालिकट विश्व-वि्यालय के उपकुलपति एवं मलयालम के प्रख्यात आलोचक प्रो. सुकुमार अषीकोड ने अध्यक्ष पद ग्रहण किया। केरल के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री श्री पी. पी. उम्मर कोया और श्री अलक्सान्डर सक्करिया ने भाषण दिये। उक्त अवसर पर राष्ट्रपति श्री फक्रुद्दीन अली अहमद, उड़ीसा के राज्यपाल श्री अक़बर अली खान, महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री अली यावर जंग, केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री श्री करण सिंह, केन्द्रीय उपगृह मंत्री श्री मोहसीन तथा केरल राज्य से गृहमंत्री श्री करुणाकरन से प्राप्त संदेशों को डा. मलिक मोहम्मद ने पढ़ सुनाया। उक्त अवसर पर डा. मलिक मोहम्मद द्वारा रचित अमीर खुसरो की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देनेवाले एक मलयालम ग्रन्थ का विमोचन और खुसरो के एक छायाचित्र का अनावरण भी हुआ। अध्यक्ष भाषण में श्री अषीकोड़ ने यह राय प्रकट की कि खुसरो क्रान्तदर्शी महान कवि थे और इसलिए ही उनकी कविता में देशप्रेम,

सांस्कृतिक समन्वय, भाषाई एकता की तीव्र अभिलाषा-जैसे महत्वपूर्ण तत्व मिल जाते हैं। उनके शब्दों में खुसरो एक ऐसी चिड़िया है जिसने अपनी मोहक चहक से जन-मानस को मुग्ध किया। उन्होंने यह भी कहा—'खुसरो अमीर है भारतीय जन-मानस में वे 'अमर' भी रहेंगे।' श्री पी. पी. उम्मर कोया ने अपने भाषण में खुसरो के अद्भुत व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उन्हें कवि, दार्शनिक, संत, संगीतज्ञ और क्रान्तदर्शी बताया और कहा कि खुसरो का सन्देश सात सौ वर्षों के उपरान्त आज भी और न जाने कितनी शताब्दियों तक भारत के जन-मानस में नवीन प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। उक्त अवसर पर कालिकट विश्वविद्यालय के डा. जी. गोपीनाथन ने खुसरो की कुछ सरस कविताओं का मलयालम अनुवाद प्रस्तुत किया। डा. एन. रवीन्द्रनाथ ने उपस्थित अतिथियों और सभा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

अमीर खुसरो के महान सन्देशों को भारत के इस दक्षिणी कोने में मुखरित करने के लिए इस समारोह का आयोजन कालिकट विश्वविद्यालय ने किया था। इस दिशा में, उसने बहुत अधिक सफलता प्राप्त की।

प्रचारक बन्धुओं से निवेदन

"हिन्दी प्रचार समाचार" में प्रान्तों में संपन्न हिन्दी प्रचार संबंधी कार्यकलापों का समाचार प्रकाशित करने का क्रम है। प्रचारक बन्धुओं से निवेदन है, वे अपने यहाँ के समाचार अपने प्रान्तीय सभा-कार्यालय द्वारा केन्द्र सभा में भेजा करें। सीधे केन्द्र सभा में आनेवाले पत्रों पर ध्यान नहीं दिया जा सकेगा।

कभी-कभी समाचार के साथ फ़ोटो भी भेजे जाते हैं। प्रचारक बन्धुओं को चाहिए कि फ़ोटो के साथ ब्लॉक बनाने का मूल्य भी पोस्टल आर्डर द्वारा भेज दें।

पास पोर्ट साईज फ़ोटो-ब्लॉक के लिए	रु. 15
पोस्ट कार्ड साईज फ़ोटो-ब्लॉक के लिए	रु. 20

वे. आंजनेय शर्मा
प्रधान सचिव

भारत का संविधान—7

राज्य विधान मंडल तथा कार्यपालिका (राज्य)

⊕ पा. वेंकटाचारी

पिछले अध्याय में संघीय कार्यपालिका तथा संसदीय सरकार के बारे में विचार किया गया था। इस अध्याय में राज्यों के विधान मंडल तथा राज्यों की कार्य-पालिका के बारे में विचार करेंगे।

आजकल भारत में 18 राज्य हैं और संघीय क्षेत्र 10 हैं।

राज्यों का शासन-तंत्र तथा केन्द्रीय शासन-तंत्र में कोई ज्यादा फ़रक नहीं है। राज्य की कार्यपालिका की शक्ति राज्यपाल में निहित होती है। केन्द्रीय क्षेत्रों में शासन चलाने, राष्ट्रपति के द्वारा मुख्य आयुक्त की नियुक्ति होती है। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने हस्तक्षारित तथा मुद्रित अधिपत्र द्वारा करते हैं। राज्यपाल की नियुक्ति 5 साल के लिए होती है। भारत का नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, उसीको राज्यपाल नियुक्त कर सकते हैं। नियुक्ति के बाद वह किसी दूसरे लाभ के पदों पर नहीं रह सकता है। राज्यपाल को मासिक रु. 5,550 का वेतन तथा अन्य भत्ते मिलते हैं। सरकार की तरफ़ से बिना किराये का मकान उपलब्ध होगा।

राज्यपाल की कार्यपालिक शक्तियाँ :

1. राज्यपाल मुख्य मंत्री की और उनके परामर्श से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है।

2. वह विधान-सभा तथा विधान-परिषद के सामने भाषण दे सकता है। वह दोनों सदनों की बैठक बुला सकता है, स्थगित कर सकता है तथा विधान-सभा को भंग कर सकता है।

3. प्रत्येक बिल उनकी मंजूरी से ही कानून बन सकता है।

4. विधान मंडल की बैठक न होने के दिनों से राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है।

5. वह राज्य महाधिवक्ता की नियुक्ति करता है, तथा जिला न्यायाधिपति की नियुक्ति का भी अधिकार है।

6. राज्य सरकार की कार्यवाही के लिए नियम बना सकता है। कुछ अवस्थाओं में दण्ड को क्षमा करने, परिहार करने तथा दण्डादेशों को स्थगित करने का अधिकार है।

7. वह प्रत्येक विधेयक को स्वीकृति देता है। राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक सकता है तथा विधान सभा के पुनर्विचार के लिए भेज सकता है।

8. राज्यपाल की स्वीकृति के साथ ही कोई धन-संबन्धी विधेयक तथा अनुदान की माँग विधान सभा में प्रस्तुत किया जा सकता है।

भारतीय संविधान के अनुसार, प्रत्येक राज्य के लिए मंत्रि-परिषद की व्यवस्था है। विधान सभा में बहुमत दल के नेता को मंत्रि-मंडल बनाने के लिए राज्यपाल बुलाता है। तथा उनको मुख्य मंत्री के पद पर नियुक्त करता है। उनके परामर्श के अनुसार दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति करता है। मंत्रिपरिषद, राज्यपाल और विधान परिषद के साथ घनिष्ठ संबन्ध होता है। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है। विधान सभा का मंत्रिपरिषद पर पूरा नियंत्रण है। राज्यपाल अपना दैनिक शासन, मंत्रिमंडल की इच्छा के अनुसार करता है। मुख्य मंत्री राज्यपाल को मंत्रि-मंडल के सब निर्णयों से अवगत करता है। संविधान के अनुसार उड़िसा, बिहार तथा मध्य-प्रदेश में जनजाति कल्याण के लिए मंत्रियों की नियुक्ति आवश्यक है। इसके अलावा आन्ध्र प्रदेश, गुजरात आदि के लिए भी राज्यपाल की कुछ विशेष जिम्मेदारियाँ होती हैं।

संघीय क्षेत्रों का शासन :

संसद कानून द्वारा, कोई विशेष निर्णय न होने पर राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त प्रशासक के द्वारा संघीय क्षेत्रों के प्रशासन की व्यवस्था करेगा। उस राज्य के आसन्न राज्यपाल को भी यह काम सौंपा जा सकता है। संविधान अधिनियम, 14 वाँ संशोधन के द्वारा कुछ संघीय क्षेत्रों को विधानमंडल तथा मंत्रीपरिषदों की व्यवस्था का अधिकार है। उसके अनुसार कुछ राज्यों के लिए विधान-मंडल तथा मंत्रि-मंडलों की स्थापना की गयी है।

राज्य विधान मंडल :

केन्द्र की भाँति राज्य विधान मंडल में भी एक या दो सदन होते हैं। आध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, जम्मू-काश्मीर, तमिलनाडु, बिहार, माहाराष्ट्र तथा मैसूर में दो सदनवाले विधान मंडल हैं।

(1) विधान सभा तथा (2) विधान-परिषद। शेष राज्यों में केवल विधान-सभाएँ हैं। राज्य की विधान सभा की सहमति पर, किसी राज्य के लिए विधान-परिषद की स्थापना करने या व्यवस्था समाप्त करने का अधिकार संसद को है।

विधान सभा :

संसद की तरह सामान्यतः विधान सभा का कार्यकाल भी पाँच वर्षों का होता है। आपातकालीन स्थिति में बढ़ाया जा सकता है। संसद की तरह वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन होता है। कुल सदस्यता 500 से अधिक अथवा 60 से कम नहीं रह सकती है। संसद द्वारा निर्मित कानून के अनुसार जन-संख्या के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र निर्धारित किया जाता है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के लिए स्थान सुरक्षित है। विधान सभा के सदस्य बनने अर्हताएँ निम्न-प्रकार हैं—

1. भारत का नागरिक हो
2. 25 वर्ष से कम उम्र का न हो
3. किसी लाभ के पद पर न हो
4. अन्य अर्हताएं भी हों, जो संसद द्वारा निर्धारित हो

विधान परिषद :

विधान परिषद में ज्यादा से ज्यादा 35 राज्य की विधान सभा की कुल सदस्यता के $\frac{1}{3}$ सदस्य या कम से कम 40 सदस्य होना चाहिए। इसके सदस्य विभिन्न क्षेत्रों से संबन्धित होते हैं। नगर पालिका, जिलाबोर्ड, स्थानीय प्राधिकारी संस्थाएँ, जिन्हें संसद निर्धारित करे, मिलकर बने निर्वाचन मंडल द्वारा चुने जाते हैं। अध्यापक तथा स्नातकों द्वारा निर्वाचित उनकी प्रतिनिधि सदस्य भी होते हैं। एक तिहाई सदस्य राज्य की विधान सभा के सदस्यों के द्वारा चुने जाते हैं। साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन, समाज-सेवा क्षेत्र के कुछ विशिष्ट सदस्य राज्य-पाल द्वारा नामजद किये जाते हैं।

राज्य विधान परिषद राज्य सभा की तरह स्थायी निकाई है। इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अवकाश प्राप्त करते हैं। विधान-परिषद का सदस्य बनने 30 वर्ष का होना चाहिए। इसके अलावा विधान सभा के सदस्य बनने जो अर्हताएँ हैं, वे इनके लिए भी हैं। विधान सभा की अनेक शक्तियाँ हैं, जिसमें कुछ मुख्य शक्तियों का विवरण निम्न-प्रकार है।

1. राज्य सूची तथा समवर्ती सूची पर कानून बना सकती है, पर इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं।

2. राज्य विधान सभा संविधान में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती है, क्योंकि इसके पास राजसत्ता नहीं है।

3. मंत्रिमंडल तथा राज्य सरकार का सालाना आय-व्यय पर विधान सभा का पूरा नियंत्रण है। विधान परिषद को, प्रश्न पूछने के अतिरिक्त विशेष कोई नियंत्रण नहीं होता है।

4. वित्तीय मामलों में भी विधान सभा को ही अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

5. विधान सभा को विधान परिषद् की स्थापना या समाप्ति की शिफारिश का अधिकार है।

6. विधान परिषद की शक्तियाँ बहुत सीमित हैं। पहले बताया गया है कि राज्य मंत्रिमंडल पर, विधान सभा का पूरा नियंत्रण है। राज्य का मुख्य मंत्री, मंत्रिपरिषद तथा विधान परिषद के बीच की कड़ी हैं। मुख्य मंत्री राज्यपाल से प्रार्थना करके विधान सभा को भंग कर सकता है।

राष्ट्रपति, संसदीय सरकार तथा संघ कार्यपालिका का जो संबन्ध है, वही राज्यपाल, राज्य विधान परिषद तथा राज्य मंत्रिमंडल का संबन्ध है। संघ तथा राज्यों के प्रशासन की व्यवस्था में भी समानता है तथा शासन-तंत्र बहुत मिलता-जुलता है।

आपातकाल में, संकटकालीन स्थिति की घोषणा, या राष्ट्रपति द्वारा वैधानिक संकट की घोषणा लिए पाने पर संसद को राज्य के प्रशासन संबंधी पूरा अधिकार प्राप्त होता है। राज्य सूची में भी संसद को कानून बनाने का अधिकार हो जाता है और राष्ट्रपति-शासन का अमल हो जाता है।

गबन की समस्या

गबन के हजारों मुक़द्दमे हर साल होते हैं। तहकीकात की जाय तो सबका कारण एक ही होगा—गहना।

रमानाथ के जीवन में पितृ-वात्सल्य की जो कमी थी, वह देवीदीन के आगमन से दूर हुई। देवीदीन भी जेल जाता है गहने के मामले में। शायद उनका निजी अनुभव उक्त कथन का कारण हो।

गबन कारण गहना है, या ऋण इसका निर्णय हम तभी कर सकते हैं जब रमानाथ और जालपा के चरित्रों पर गौर करें और उनके स्थायी व चलायमान स्वभावों का अध्ययन करें।

जालपा बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर गहनों की बातें सुनने लगी। इस आभूषण-मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण-प्रेम स्वाभाविक ही था।

रमानाथ को पढ़ाई में लगन न थी। जवानों के स्वभाव के अनुसार जालपा से खूब मौज उडाया था। शादी के बाद जालपा को गहनों की इच्छा से हाथ धोना पड़ा। वह संभल जाती तो यही उसकी चरित्र की दृढ़ता होती।

रमानाथ भटक जाता है। यही उसकी चरित्र की कमी है।

पति-पत्नी के एकांत संभाषण से पता चलता है कि जालपा निर्दोष है और रमानाथ अपनी भूल से खुद तड़पता है और जालपा को भी तड़पाता है। रमानाथ दूसरों को फाँसी पर लटकाता है तो जालपा फाँसी से छुड़ाती है और पीड़ितों की सेवा करती है।

जालपा : मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो गहनों पर जान देती हैं। हाँ, इस तरह किसीके घर आते-जाते शर्म आता ही है।

रमा : अगर तुम्हारी राय हो, तो किसी सराफ़ से वादे पर गहने बनवा लाऊँ। इसमें कोई हर्ज तो है नहीं?

जालपा : मैं तो गहनों के लिए इतनी उत्सुक नही हूँ।

रमा : नहीं, यह बात नहीं; इसमें क्या हर्ज है कि किसी सराफ़ से चीज़ें ले लूँ? धीरे-धीरे उसके रुपये चुका दूँगा।

जालपा : (दृढ़ता से) नहीं, मेरे लिए कर्ज लेने की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं कि तुम्हें नोच-खसोटकर अपना रास्ता लूं। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी।

रमा : ख़ैर, तुम्हारी सलाह है तो एक-आध महीने और चुप रहता हूँ। मैं सबसे पहले कंकन बनवाऊँगा।

जालपा : (गद्‌गद होकर) तुम्हारे पास अभी इतने रुपये कहाँ होंगे?

रमा : इसका उपाय तो मेरे पास है। तुम्हें कैसा कंगन पसन्द है?

दूसरे दिन सबेरे ही रमा ने रमेश बाबू के घर का रास्ता लिया।

रमा : आज आपको मेरे साथ ज़रा सराफ़े तक चलना पड़ेगा।

रमेश : इस विषय में मैं बिलकुल कोरा हूँ। न कोई चीज़ बनवायी, न खरीदी। तुम्हें कुछ लेना है?

रमा : लेना-देना क्या है, ज़रा भाव-ताव देखूंगा।

रमेश : मालूम होता है, घर में फटकार पड़ी है।

रमा : जी, बिलकुल नहीं। वह तो जेवरों का नाम तक नहीं लेती।

रमा : कितने रुपये जोड़ लिये?

रमा : रुपये किसके पास हैं, वादे पर लूंगा।

रमेश : इस खब्त में न पड़ो। कर्ज़ से बड़ा पाप दूसरा नहीं। न इससे बड़ी विपत्ति दूसरी है। भविष्य के भरोसे पर और चाहे जो काम करो, लेकिन कर्ज़ कभी मत लो।

प्रेमचंदजी गंभीर लेखक हैं जो विषम समस्याओं का हल साधारण पात्रों के ज़रिये निकालते हैं। ऊपर के उद्धरणों में पक्ष और विपक्ष का समर्थन हुआ। एक तरफ़ गहनों की लालसा तो दूसरी तरफ़ कर्ज़ से छुड़ानेवाला प्यारा दोस्त। संसार में अच्छाई से बुराई ही ज्यादा जंचती है, यह मानवीय स्वभाव है। प्रेमचन्दजी पात्रों की सृष्टि में ही हित और अहित पक्षों को बल देते जाते हैं। इस संघर्ष में जो हार जाता है, यानी बुराई के रास्ते पर चलता है, वह न केवल अपने को बिगाड़ता है, बल्कि परिवार को और समाज को भी साथ लेकर डूबता है और एक समस्या को जन्म देता।

बने-बनाये खेल को बिगाड़ने में वकील इन्द्रभूषण के परिवार का भी हाथ है। बुढ़ापे में जवान पत्नी को तृप्त करने के लिए गहनों से लदा देता है। रमा और

जालपा पर भी उसका असर पड़ा। उनके संपर्क के परिणामस्वरूप पार्टियाँ देना, सैर-सपाटा करना, दिखावा, ऐश-आराम सब दुर्गुण इनपर सवार हुए।

हम क्षणिक मोह में पड़कर अपने जीवन के सुख और शांति का कैसे होम कर देते हैं। अगर जालपा मोह के इस झोंके में अपने को स्थिर रख सकती, अगर रमा संकोच के आगे सिर न झुका देता, दोनों के हृदय में प्रेम का सच्चा प्रकाश होता, तो वे पथभ्रष्ट होकर सर्वनाश की ओर न जाते।

इसमें सन्देह नहीं कि रमा को सौ रुपये की करीब ऊपर से मिल जाते थे और वह किफ़ायत करना जानता, तो इन आठ महीनों में दोनों सराफ़ों के कम-से-कम आधे रुपये अवश्य दे देता; लेकिन किसी एकमुश्त रक़म की आशा में रुका हुआ था।

रतन के छ: सौ रुपये गंगू ने हड़प लिया था। यदि आज उसे एक हज़ार का रुक्का लिखवाकर कोई पाँच सौ रुपये भी दे देता तो वह निहाल हो जाता। रतन रुपयों के लिए तकाजा करने लगी। रमेश से उदार माँगा तो ख़त आया—मैंने अपने जीवन में दो-चार नियम बना लिये हैं, और कठोरता से उनका पालन करता हूँ। उनमें से एक नियम यह भी है कि मित्रों से लेन-देन का व्यवहार न करूँगा।

'सैकड़ों रुपये तो ताँगावाला ले गया होगा।'

'सारा बाज़ार जान जाये, कि लाला निरे लफंगे हैं; पर अपनी पत्नी न जानने पाये! वाह री बुद्धि!'

'विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी।'

प्रेमचंद मानवतावादी थे। रमानाथ के जीनन में जो तूफ़ान आया उससे दुखी है प्रेमचन्दजी का मन। रामनाथ की पराजय अन्तराल में घुसकर उसे सताता है, लेखक की अन्तरात्मा पुकार उठती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ऋण के मुख्य रूप से चार कारण बतलाये, जाते हैं। कपड़ा-लत्ता, जुआ, तडक-भडक और आमोद-प्रमोद।

रमानाथ चौथे प्रकार का आदमी है। इसका परिणाम यह होता है—झूठी गवाही दो, जाली नोट छपाओ, घर से भाग खड़े हो जाओ।

उपन्यासकार प्रेमचन्दजी रमानाथ की मानसिक दशा का क्रमिक विश्लेषण करते हैं। जालपा के गहने चुरा ले गये। वह दुखी थी। उसके दुख को दूर करने के लिए उपाय सोचता है। प्रेमचंदजी के शब्दों में देखें—

'वह कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहता था, जिससे वह जल्द-से-जल्द अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाये। कहीं उसके नाम कोई लॉटरी निकल आती। अगर इस वक्त उसे जाली नोट बनाना आ जाता, तो वह अवश्य बनाकर चला देता।'

रतन का पैसा गंगू के सुपुर्द है तो दफ़्तर का पैसा रतन के पास। बेचारा रमानाथ इधर का उधर करके मुँह पर कालिख लगाकर भाग जाता है।

रमानाथ अपने को बचाने के लिए झूठी गवाही देने पर तुला हुआ था। देवीदीन जो रमा को पुत्रवत् पाला था, वह भी निराश होकर कहता है, 'अपने मतलब के लिए जो दूसरों का गला काटे उसको जहर दे देना भी पाप नहीं हैं।'

प्रेमचंदजी उपन्यास के पहले अध्यायों में नारी और गहने को लेकर चलते हैं। वकील को रंगमंच पर लाकर समाज को समझाते हैं कि गहने किसको शोभा देते हैं। देवीदीन जो घायल योद्धा था, उसकी सृष्टि करके रमानाथ को सबक सिखाना चाहते हैं। देवीदीन जग्गो के लिए गहना बनवाते हैं, फलस्वरूप गबन के मामले में जेल जाता है, सज़ा भोगकर मर्दानी दिखाता है।

रमानाथ इस मामले में कच्चा था। उधार में गहना बनवाता है। रुपये चुरा लेता है। जब जेल जाने की नौबत आती है तो भाग जाता है। जग्गो स्त्री थी, आभूषण-प्रियता उसके लिए स्वाभाविक थी। एक संदर्भ देखिये :—

रमा : सब कुशल-मंगल है न, दादी! दादा कहाँ गये हैं?

जग्गो : कहीं गये होंगे, मैं नहीं जनती।

रमा ने सोने की चार चूड़ियाँ जेब से निकालकर जग्गो के पैरों पर रख दीं और बोला—यह तुम्हारे लिए लाया हूँ दादी, पहनो, ढीली तो नहीं है?

जग्गो ने चूड़ियाँ उठाकर ज़मीन पर पटक दीं और आँखें निकालकर बोली—जहाँ इतना पाप समा सकता है, वहाँ चार चूड़ियों की जगह नहीं है?

'गबन' शीर्षक उपन्यास में वकील अपनी पत्नी के लिए गहना बनवाता है, अतुल संपत्ति में से एक छोटे से हिस्से को ख़र्च करके। देवीदीन मनी-आर्डर के तीस रुपये ग़ायब करके जग्गो के लिए गहना बनवाता है, सज़ा पाकर संतोष की साँस लेता है।

रमानाथ अनुभवहीन था। कर्ज लेकर गहना बनवाता है। उसका परिणाम पूर्ण रूप से भोगता है। जालपा प्रशंसा का पात्र बनती है जब कि रमानाथ निन्दनीय। यदि समस्या आभूषणों की होती तो जालपा भी निंदनीय मानी जाएगी।

—श्री बी. के. रामन, मद्रास

नाटकीय तत्वों के आधार पर 'चन्द्रगुप्त' नाटक का मूल्यांकन

प्रसादजी की कृतियों में चन्द्रगुप्त नाटक का महत्व उच्च कोटि का है। प्रसादजी की कला का इस नाटक में पूर्णरूप से विकास हुआ है। अब ज़रा नाटकीय तत्वों पर विचार करेंगे।

कथावस्तु :—इस नाटक में ऐतिहासिकता का उचित निर्वाह किया गया है। मौलिकता भी नज़र आती है। इसमें तीन कथाएँ वर्णित हैं। कथा का आरंभ तक्षशिला के गुरुकुल से होता है। इधर सिंहरण, आंभीक, अलका, चाणक्य, चन्द्रगुप्त आदि एक दूसरे से मिलते हैं। नंद की राजसभा में चाणक्य का अपमान किया जाता है। चाणक्य नंद वंश को निर्मूल करने की प्रतिज्ञा करता है। आंभीक, सिकंदर का पक्ष लेते हैं। पर्वतेश्वर और सिकंदर संधि कर लेते हैं। सिंहरण और अलका का विवाह होता है। कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया तीनों चन्द्रगुप्त से प्रेम करते हैं। चाणक्य पर्वतेश्वर को अपना सहयोगी बना लेता है। राक्षस नंद को कैद करता है। शकटार के द्वारा नंद मारा जाता है। सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त में संधि होती है। तदनुसार कार्नेलिया और चन्द्रगुप्त की शादी होती है। चाणक्य, राक्षस को मंत्री बनाकर जंगल चला जाता है। मालविका का भी अंत होता है। इस लंबी कथा में नाटककार ने ऐतिहासिकता का उल्लंघन नहीं किया। कथा-सूत्र में कोई ढिलाई नज़र आने नहीं दिया।

पात्र तथा चरित्र-चित्रण :—इस नाटक में पात्रों की लंबी सूची है। फिर भी प्रसादजी की अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति के कारण नाटक के पात्रों में चमत्कार आ गया है। चन्द्रगुप्त इस नाटक का नायक है। वह चाणक्य के हाथ की कठपुतली न होकर स्वतंत्र पुरुष की तरह चमक उठता है। वह कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया से प्रेम करता है। पर कार्नेलिया ही चन्द्रगुप्त के प्रेम-साम्राज्य की एक मात्र महारानी बनती है। चाणक्य शुष्क प्रकृति का होते हुए भी इस नाटक का सर्वेसर्वा है। प्रशंसनीय कूटनीतिज्ञ के रूप में वह चित्रित किया गया है। उसका

दिल पत्थर के समान दृढ़ है तो फूल के समान कोमल है। अपने हृदय-मंदिर के किसी अज्ञात कोने में स्वासिनी की प्रतिमा का वह पूजन करता है। वह भारत को एक राष्ट्र में लाता है और इस प्रकार असाधारण सफलता पाता है।

सिंहरण के चरित्र-निर्माण में नाटककार ने अपनी कुशलता दिखायी है। इसके अलावा अन्य पात्रों के मानसिक संघर्ष का भी सुन्दर वर्णन किया गया है।

रस:—नाटक वीररस प्रधान है। शृंगार रस का भी इसमें अधिक महत्व रहा है। वीर और शृंगार रस गंगा-जमुना संगम हो गया है। भारत को विजयी बनाने में सफल निकलनेवाला चन्द्रगुप्त, कार्नेलिया के प्रेम-शृंगार-सागर में डुबकी लगाता है। इन प्रधान रसों के अलावा करुणा, भयानक, विस्मय आदि रसों का भी सुन्दर निर्वाह किया गया है।

अभिनय:—आलोचकों की राय है कि जहाँ तक अभिनय का संबंध है, प्रसादजी के नाटक असफल हैं। लेकिन प्रसादजी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं। उन्होंने आलोचकों का आक्षेप करते हुए लिखा है—"मैंने उन कंपनियों के लिए नाटक नहीं लिखे हैं, जो चार चलते अभिनेताओं को एकत्र कर कुछ पैसा लुटाकर चार पर्दे मंगनी माँग लेती है और दुअन्नी अठन्नी के टिकट पर इक्केवाले, खोंचेवाले और दूकानदारों को बटोरकर जगह-जगह प्रहसन करती फिरती है, यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरुचिसंपन्न दर्शक हों और पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जावे, तो मेरे नाटक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।"

भाषा:—प्रसादजी उच्च कोटि के कवि हैं। अतः उनका कवि-रूप हर जगह आधिक्य करता हुआ दीखता है। भाषा में भाव तथा कवित्व-शैली अधिक मात्रा में है। जन साधारण के लिए प्रसादजी की भाषा शायद सुलभ नहीं है। तो भी—'नाटकांत कवित्वम्'—वाला तत्व सार्थक हुआ है। इस नाटक के गीत अति सुन्दर बन पड़े हैं। उनका—"हिमाद्रि तुंग शृंग से"—वाला गीत बिलकुल राष्ट्रीयता व देशभक्ति से भरा है। पढ़नेवाला उसको हृदयंगम कर लेता है।

नाटकीय तत्वों के आधार पर इस नाटक की अलोचना करने पर स्पष्ट होता है कि आधुनिक रंगमंच के दृष्टिकोण से थोड़ा परिवर्तन करें तो अत्यंत सफलता के साथ इस नाट का अभिनय हो सकता है।

*

क्षेत्रीय भाषाएँ देश की निधि हैं। यह उचित है कि छात्रों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा मिले, राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाएँ साथ-साथ पनप सकती हैं। वे एकता से बंधन मजबूत करने के लिए इस्तेमाल होनी चाहिए।

राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अलीअहमद

काव्य में अलंकारों का स्थान

ललित कलाओं में काव्य कला को ही अधिक महत्व दिया गया है। कला से अलौकिक आनंद प्राप्त होता है। काव्य कला में प्रतिभा को ईश्वरदत्त शक्ति मानते हैं। काव्य कला में भाव और भाषा का विशेष स्थान है। कवि मार्मिक भावों को चमत्कारपूर्ण भाषा के द्वारा व्यक्त करने में सफल होते हैं। चमत्कारपूर्ण भाषा ही अलंकार है। सूरदास और तुलसीदास के काव्यों में भाव और भाषा का सुन्दर संगम हम देखते हैं।

अलंकारों की परिभाषा करते हुए 'काव्यादर्श' में कहा गया है कि काव्य की शोभा को बढ़ानेवाला धर्म ही अलंकार है। "काव्यशोभाकारान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते"।

हमारे यहाँ काव्य में रस को ही प्रथम स्थान दिया गया है। गुण को द्वितीय स्थान तथा अलंकार को तृतीय स्थान मिला है। भरत मुनि रस संप्रदाय के समर्थक हैं। भामह, दंडी, केशव आदि कवि अलंकार संप्रदाय को अधिक मान्यता देते हैं। वामन कवि रीति संप्रदाय के जनक रहे हैं। वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक हैं कुंतला। ध्वनि संप्रदाय को भी मान्यता दी गयी है। इन वादों से स्पष्ट है कि भाषा पक्ष या अलंकार पक्ष को प्रधानता देनेवाले कम नहीं हैं। तो भी यह माना गया है कि अलंकार अनिवार्य नहीं है; उसके अभाव में भी अच्छे काव्य का सृजन हो सकता है।

काव्य में अलंकारों का स्थान निर्धारित करते हुए पं० रामचन्द्रशुक्ल लिखते हैं कि 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव करने में कभी-कभी सहायक होनेवाली युक्ति अलंकार है।" इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि अलंकार सूक्ष्म भावों का तीव्र अनुभव कराने में अवश्य सहायक होते हैं। वास्तव में अलंकार कोई स्थूल वस्तु नहीं है। वह काव्य में भाषा और भाव को चमत्कारपूर्ण बनाता है। उदाहरण के लिए महाकवि बिहारी का एक दोहा देखिए:—

"दीठि बरत बाँधी अटनु चढ़ि धावत न डरात। इतहि उतहि चित दुहुन के नट लों आवत जात ॥" उक्त दोहे में बिहारी ने उपमा और रूपक का अत्यंत सुन्दर प्रयोग किया गया है। नायक-नायिका की एक दूसरे को देखने की तल्लीनता को आपने मूर्त रूप दिया है। अलंकार के संबंध में आधुनिक कवि पंतजी के विचार सर्वमान्य लगते हैं। उनका कहना है—"अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं; वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए, आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार-व्यवहार और रीति-नीति हैं, पृथक स्थितियों के प्रथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।"

काव्य में अलंकारों का होना भावों की तीव्रता के लिए सहायक के रूप में वांछनीय है। भाषा या काव्य में भारस्वरूप प्रतीत न हो। "वाक्यं रसात्मकं काव्यं"—वाली उक्ति के अनुसार रसपूर्ण वाक्य ही काव्य में महत् स्थान पाता है और उस रसपूर्ण वाक्य को रसोद्बोध करानेवाला सहायक अलंकार ही है। अलंकार शोभा का साधन अवश्य है, लेकिन साध्य नहीं। इसीलिए साहित्य-दर्पण के आचार्य ने अलंकारों को अस्थिर धर्म कहा है। अगर उच्चकोटि के कवि हों तो अलंकारों के बिना भी उत्तम काव्य की रचना हो सकती है। मुक्त छंद के प्रवर्तक श्रीमान् निराला जी की कृतियों में हमें ऐसा सुन्दर उदाहरण मिलता है।

— स्व० के. ए. ताणु, नागरकोविल।

केंद्रीय हिन्दी संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)

भारत सरकार के शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा स्थापित केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा गत 11 वर्षों से अहिन्दी भाषा भाषियों के लिए एक अखिल भारतीय हिन्दी निबंध प्रतियोगिता का आयोजन करता आ रहा है। इस प्रतियोगिता में हिन्दी में बी. ए. के समकक्ष कोई मान्यता प्राप्त हिन्दी परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले व्यक्ति भाग ले सकते हैं। इस वर्ष प्रतियोगिता का विषय "राष्ट्रीय एकता और बहुभाषी समाज" निश्चित किया गया है। निबंध प्राप्त करने की अंतिम तारीख 14-1-76 है। सर्वश्रेष्ठ तीन निबंधों के लिये क्रमश: 250.00, 200.00 और 150.00 रु. के तीन पुरस्कार प्रदान किए जाएँगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा वर्ग के सर्वश्रेष्ठ निबंध के लिए भी पुरस्कार दिया जायगा। विवरण निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा-282005 से प्राप्त कर सकते हैं।

आन्ध्र प्रदेश सरकार की ओर से हिन्दी समन्वय समिति की नियुक्ति

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र की ओर से ता. 27-6-1975 को हैदराबाद में आयोजित द्विदिवसीय संगोष्ठी का उद्‌घाटन करते हुए आन्ध्र प्रदेश के शिक्षामंत्री माननीय श्री मंडलि वेंकट कृष्णारावजी ने घोषणा की थी कि आन्ध्र प्रदेश सरकार की ओर से हिन्दी शिक्षण संबंधी सभी समस्याओं पर विचार कर उन्हें सुलझाने की दिशा में सहयोग देने एक हिन्दी समन्वय समिति की नियुक्ति की जाएगी। उनकी घोषणा के अनुसार समन्वय समिति की नियुक्ति की गयी है। इसके लिए आन्ध्र प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग, विशेष रूप से शिक्षामंत्री माननीय श्री कृष्णारावजी एवं आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री जलगं वेंगलरावजी के प्रति दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र की ओर से कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

वे. राधाकृष्णमूर्ति
सचिव
द. भा. हिन्दी प्रचार सभा (आन्ध्र प्रदेश)

GOVERNMENT OF ANDHRA PRADESH
ABSTRACT

HINDI—Problems relating to Hindi—Constitution of Hindi Co-ordination Committee—Orders—Issued.

EDUCATION (E) DEPARTMENT

G. O. Ms No. 1344, Edn., Dated :- 24-11-1975.

Read the following :—

1) From the Director of the School Education, Lr. No. 3967/S2/75 dt. 2-9-1975 and 3-10-'75

ORDER :—

Government after careful consideration of the proposals submitted by the Director of School Education in his letter cited constitute a Hindi Co-ordination Committee, with the following members for a period of 3 years:

1. **Sri M. V. Krishna Rao,**
   Minister for Education & Cultural Affairs. — Chairman
2. **Sri S. K. Chathurvedi,**
   Dir. (L) Ministry of Education, and Social Welfare, Govt. of India, Shastri Bhavan, New Delhi. — Member
3. **Sri M. M**
   Dir. Internal Finance, Ministry of Education, 117-C. Wing. Shastri Bhavan, New Delhi. — ,,
4. Secretary to Government, Education Department, A.P., Hyderabad. — ,,
5. **Sri V. Anjaneya Sarma,**
   Secretary, Hindi Voluntary Organisation, New Delhi & D. B. Hindi Prachar Sabha, T. Nagar, Madras-17.
6. Secretary to Govt., Finance & Planning Department, Hyderabad. — ,,
7. President, Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, A.P., Khairathabad, Hyderabad. — ,,
8. Secretary, Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, A.P., Khairathabad, Hyderabad. — ,,
9. President, Hyd. Hindi Prachar Sabha, Nampalli, Hyderabad.
10. Secretary, Hyd. Hindi Prachar Sabha, Nampalli Hyderabad. — ,,
11. Head of the Hindi Department, Andhra University, Waltair. — ,,
12. Head of the Hindi Department, Osmania University, Hyderabad. — ,,
13. Head of the Hindi Department, Sri Venkateswara University, Tirupathi. — ,,
14. **Sri Gopal Rao,** Ekbote,
    Ex-Chief Justice, A. P. High Court, Hyderabad. — ,,
15. **Sri Seerla Brahmayya,** Ex-M.L.A.,
    President, Hindi Premi Mandali, Eluru, W.G. District. — ,,
16. Director of School Education, Hyderabad. — Member-Secretary

2) The main function of the Committee shall be as follows :—

(i) Co-ordination between the activities of the two Hindi Voluntary Organisations which have their Head Quarters in this States as far as the conduct of Examinations is concerned.

(ii) Discussing the various Central and State schemes for promotion of Hindi and giving advice to the Government in the matter.

(iii) Advising the Government on such other matters relating to Hindi referred to it.

3) The above Committee shall be treated as Ist Class Committee for purpose of T. A. and D. A. to non-Official members of the above Committee and expenditure debited to Major Head "277 - Education - H. - General - (a) - Direction and Administration - (i) Headquarters - Office-3. - Travel expenses - Travelling allowance" - and the expenditure shall be adjusted within the budget provision.

4) The Director of School Education shall be countersigning authority for the T. A. bills of non-Official Members.

5) This Order issues with the concurrence of Finance & Planning (Fin. Exp. Edn/. T. A. Department vide their U. O. No. 3283/2130/Exp./Edn./75-1 dt. 27-10-1975, and 68656-B./1966/T. A./75-1 dt. 4-11'75.

(BY ORDER AND IN THE NAME OF THE GOVERNOR OF ANDHRA PRADESH)

Sd/- **C. Srinivasa Sastry,**
Secretary To Government.

(True Copy)

V. Radhakrishna Murthy
Secretary
D. B. Hindi Prachar Sabha-Andhra, Hyderabad.

'मलयालम नाटक' पर हिन्दी प्रकाशन

कोच्चिन विश्वविद्यालय का सत्प्रयास

कला देश और काल की सीमाओं से परे है। तथापि कला के छात्रों को विभिन्न देशों, प्रांतों, युगों और भाषाओं में प्रस्तुत कला-वैविध्य की सहज जिज्ञासा होती है। आदान-प्रदान की दृष्टि से नये आयामों से बहुत कुछ ग्रहण किया भी जा सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी नाटक वाङ्मय के ज्ञाता एवं अध्येता सहृदयों के लिए नाटक-वाङ्मय के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान स्पष्ट ही उपादेय है। कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने इसी ध्येय से अपनी ग्रंथ-परंपरा में 'मलयालम नाटक' का प्रकाशन किया है। यह विभाग के वार्षिक शोध प्रकाशन 'अनुशीलन' का मलयालम नाटक विशेषांक है। इसके प्रधान संपादक हैं विभागाध्यक्ष डा. विश्वनाथय्यर। इसमें केरल में लोककलाओं की परंपरा, मलयालम नाटक के मूलस्रोत, केरल का रंगमंच, नवीन दिशाएँ, मलयालम का व्यावसायिक रंगमंच आदि पर विद्वानों के विचारपूर्ण लेख हैं।

इस ग्रंथ का प्रमोचन केरल के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री सुब्रह्मण्यन पोट्टी के करों से हुआ। प्रमोचन समारोह और मलयालम नाटक पर चर्चा गोष्ठी के अध्यक्ष पद से प्रो. बेंजमीन ने कहा कि हिन्दी भाषी सहृदयों को केरलीय भाषा एवं साहित्य के विविध पक्षों पर प्रामाणिक हिन्दी ग्रंथ देने का जो सत्प्रयास कोचिन विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग कर रहा है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

चर्चा गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए जस्टीस सुब्रह्मण्यन पोट्टी ने समझाया कि नाटक का एक महत्वपूर्ण तत्व प्रेक्षक है। नाटक यदि प्रेक्षक के हृदय तक पहुँच नहीं सके तो वह नाटक कहलाने योग्य नहीं रहेगा। उन्होंने सोदाहरण दिखाया कि किस प्रकार बिना उचित ज्ञान या प्रशिक्षण के मामूली अभिनेतागण नाटककार व दिग्दर्शन बन बैठते हैं जब कि सच्चे दिग्दर्शक थोड़े से समय में मामूली लोगों को सच्चे नटी-नट बना देते हैं। उन्होंने अनुरोध किया कि नाटक शिल्प एवं प्रस्तुतीकरण पर केरल के किसी विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम प्रारंभ किया जाय।

निबन्ध प्रस्तोताओं में श्री टी. सी. गोपीनाथ ने मंच सज्जा, मेकअप, वेषभूषा, अभिनय आदि पर जो नवीनतम क्रांतिकारी विचार पश्चिमी नाटक विज्ञानियों ने प्रस्तुत किये हैं उनके अध्ययन की परम आवश्यकता पर जोर दिया। प्रो. एम. के. सानु ने भारतीय नाटक विद्यार्थियों के इस भ्रम पर प्रकाश डाला कि वे पारिवारिक या सामाजिक समस्याओं की चर्चा करनेवाले नाटकों को उसी चर्चा के पीछे समस्या नाटक मान बैठते हैं। वस्तुतः समस्या नाटक इसीलिए लोकप्रिय होते हैं कि उनमें

नाटकीय तत्व का अच्छा विकास परिलक्षित है, इसलिए नहीं कि उनमें छोटी-मोटी समस्याएँ होती हैं। श्री टाटापुरम सुकुमारन का वक्तव्य मलयालम नाटक के कथापात्रों पर था। उन्होंने कहा कि नवीनतम सूचीपत्र के अनुसार मलयालम में 700 नाटक रचे गये हैं। प्रति नाटक औसत 10 पात्रों के हिसाब से कुल 7000 पात्रों का जन्म हुआ है। इनमें सिर्फ चुने हुए पात्र ही अमर रहते हैं। वक्ता ने अनेक नाटकों के आधार पर पात्रों की विविधता आदि का अच्छा परिचय दिया। श्री थामस मैथ्यू ने मलयालम नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव पर बोलते हुए श्रोताओं को सावधान किया कि पश्चिमी शिल्पविधि के कुछ मोटे-मोटे बाहरी तत्वों का भद्दा प्रयोग या अनुकरण देखकर उसे पश्चिमी प्रभाव मान बैठना भूल है। यों मामूली रचना तक में अबसर्ड ड्रामा आदि के तत्वों को ज़बरदस्ती ढूँढ़ना हितकारी नहीं है।

आधुनिक मलयालम नाटक के विभिन्न पक्षों का विवेचन करनेवाली यह गोष्ठी अत्यंत प्रौढ़ एवं सफल रही। नाटक पर शोध करनेवाले शोधछात्र एवं उत्सुक विद्वान मानार्थ प्रति के लिए विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चिन-22 से संपर्क स्थापित कर सकते हैं।

विश्व हिन्दी सम्मेलन

सात सदस्यीय समिति

नागपुर, 8 दिसंबर (प्रेट्र)। विश्व हिन्दी सम्मेलन के महासचिव श्री अनंत-गोपाल शेवड़े के अनुसार उपराष्ट्रपति एवं विश्व हिन्दी सम्मेलन की राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष श्री बी. डी. जत्ती ने अनुवर्ती कार्य की योजना बनाने के लिए एक सात सदस्यीय समिति नामांकित की है, ताकि इस वर्ष के आरंभ में नागपुर में संपन्न विश्व हिन्दी सम्मेलन की उपलब्धियों को ठोस रूप प्रदान किया जा सके।

ये सदस्य हैं—श्री बी. डी. जत्ती, उपराष्ट्रपति, सभापति पं. कमलापति त्रिपाठी, रेल-मंत्री, डा० कर्णसिंह, स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजन मंत्री, श्री एम. डी. चौधरी, महाराष्ट्र के वित्तमंत्री, श्री अनंतगोपाल शेवड़े, श्री आर. पी. नायक, भारत सरकार के गृह मंत्रालय में सरकारी भाषाओं के सचिव, श्री आंजनेय शर्मा, महासचिव, दक्षिण भारत हिन्दी, प्रचार सभा, मद्रास। श्री शेवड़े समिति के संयोजक होंगे।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली

हिन्दी प्रचारक विद्यालय का निरीक्षण :—ता. 18-10-'75 को श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा, प्रधान सचिव, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा, ने हिन्दी प्रचारक विद्याय, तेनाली का निरीक्षण किया। प्रचारक विद्यालय की प्रधानाध्यापिका श्रीमती बोयपाटि सुभद्रादेवी ने स्वागत किया। पिछले दो दशाब्दियों के हिन्दी प्रचारक के इतिहास का विवरण देकर इस साल दस जिलों से आये हुए 15 प्रशिक्षणार्थी और 38 प्रशिक्षणार्थिनियों का परिचय कराया।

श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा जी ने प्रचारक विद्यालय की प्रगति पर अपना आनंद प्रकट करते हुए यह कहा कि परिस्थितियों के अनुसार हिन्दी प्रशिक्षण पद्धतियों को बदलने की आवश्यकता है और यह आशा प्रकट की है कि अगली योजना में आन्ध्र प्रदेश में दो हज़ार पोस्टों तक आने की संभावना है।

प्रचारक छात्राध्यापकों की तरफ़ से श्रीमती चंद्रशेखर राव ने धन्यवाद दिया।

जिला प्रचारकों का समावेश :—अपराह्न तीन बजे गुन्टूर ज़िला हिन्दी प्रचारकों की बैठक श्री बोयपाटि नागेश्वरराव की अध्यक्षता में संपन्न हुई। ज़िला प्रचारक मंडली के मंत्री श्री मक्कपाटि वेंकटरत्नम ने स्वागत किया। मुख्य अतिथि के रूप में श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा ने भाग लिया।

सर्वश्री कभंपाटि सत्यनारायण मूर्ति, वासिरेड्डि सुब्बाराव, डॉ० कोंडब्रोलु हनुमंतराव आदि हिन्दी प्रचारकों ने माध्यमिक पाठशालाओं के हिन्दी प्रचार व प्रचारकों की समस्याओं पर प्रकाश डाला।

श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा जी ने विभिन्न समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करते हुए यह बतलाया कि दसवीं कक्षा के अंकों की जोड़ में हिन्दी अंकों को भी मिलाने के लिए हिन्दी प्रचारकों को संगठित होकर प्रयत्न करना चाहिए।

श्री मक्कपाटि वेंकटरत्नम ने धन्यवाद दिया।

स्वागत-सम्मान सभा :—शामको छः बजे स्थानीय हिन्दी प्रेमी मंडली की ओर से श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा का स्वागत व सम्मान किया गया। श्री वेलुवोलु सीतारामय्या ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। मंडली के अध्यक्ष श्री गुंटूरि राजेश्वर राव ने स्वागत वचन कहा। प्रिन्सिपल श्री बोयपाटी नागेश्वराव ने श्री शर्माजी का परिचय देते हुए यह कहा कि श्री शर्माजी अपनी प्रतिभा व परिश्रम के बल पर

लगातार उन्नति करते हुए, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान सचिव बनकर, दक्षिण के हिन्दी प्रचार आंदोलन का सफ़लतापूर्वक नेतृत्व कर रहे हैं।

श्री गुंटूरि राजेश्वरराव ने चंदन, फल, पुष्प, तांबूल आदि के साथ शाल ओढ़ाकर श्री शर्माजी का सम्मान किया।

श्री शर्माजी ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए यह कहा कि यहाँ का सम्मान मेरे लिए स्वस्थान का ही सम्मान है। इस संस्था के साथ दशाब्दियों से मेरा निकट का संबंध है। इस संस्था को सब तरह से उन्नति में पहुँचाना ही हमारा लक्ष्य है। इस उद्देश्य से यहाँ प्रचारक विद्यालय को स्थायी बनाने के लिए ही सभा स्वयं चला रही है।

श्री शर्माजी ने राष्ट्रभाषा व प्रांतीय भाषाओं के महत्व पर सारगर्भित भाषण दिया। आपने कहा कि हिन्दी व प्रादेशिक भाषा संस्थाएँ एक होकर प्रयत्न करने पर भारत की सभी भाषाओं की उन्नति हो सकेगी, साथ ही साथ जनता के सहयोग से देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं की श्रीवृद्धि होगी तथा वे अपने समुचित स्थान अवश्य पा सकेंगे।

श्री वेलुवोलु सीतारामय्या ने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दी प्रचार के विकास पर अपना हार्दिक संतोष प्रकट किया।

श्री नारायणम् सत्यनारायणाचार्युलु ने धन्यवाद समर्पण किया।

प्रांतीय समाचार (केरल)

हिन्दी प्रचार मण्डल, नीलेश्वर

प्रौढ़ हिन्दी वर्ग का उद्घाटन व प्रमाण-पत्र विवरण समारोह : दिनांक 2-11-75 सायंकाल छः बजे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा संचालित हिन्दी महा विद्यालय में, नीलेश्वर हिन्दी प्रचार मण्डल के तत्वावधान में मण्डल के सदस्य, हिन्दी प्रचारक तथा छात्र-छात्राओं की एक सभा नीलेश्वर बी. डी. ओ. श्री पी. एम. राजप्पन जी की सदारत में संपन्न हुई। केरल के स्वास्थ्य मंत्री श्री एन. के. बालकृष्णनजी ने प्रौढ़ हिन्दी वर्ग का उद्घाटन किया। मंत्री महोदय ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा—"स्वतंत्रता आंन्दोलन के समय राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार व प्रसार जितने उत्साहपूर्वक चलाया करते थे, स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भी इससे कई गुणा उत्साह के साथ हमें करना चाहिए था। परन्तु खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि वह पुराना जोश आज नष्ट हो गया है और उस स्थान पर सर्वत्र

आलसीपन छा गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत की भाषा संबंधी समस्या को हल करके बहुभाषा-भाषी जनता को एक सूत्र में बांधने अथवा भारत में भावात्मक एकता पैदा करने के उद्देश्य से पूज्य बापूजी ने हिन्दी प्रचार कार्य पर जोर दिया था और दक्षिण में हिन्दी प्रचार कार्य करने के लिए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की थी। निस्सन्देह कहना पड़ता है कि सभा की सेवायें कम महत्वपूर्ण की नहीं है। नीलेश्वर हिन्दी प्रचार क्षेत्र के पुराने प्रवर्तक की हैसियत से मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि एक सार्वजनिक सेवा कार्य के रूप में हिन्दी प्रचार मण्डल कायम किया गया और बालिग लोग हिन्दी पढ़ने आगे आये हैं। मंत्री महोदय ने कालेज-हाईस्कूल के विद्यार्थियों से अपील की कि वे अपने भविष्य को सुदृढ़ बनाने के लिए अभी से हिन्दी सीखना शुरू करें।

उक्त सभा के अध्यक्ष श्री पी. एम. राजप्पन जी ने अपने भाषण में यह सुझाव दिया कि आजकल जो हिन्दी बोली जाती है उसमें विविध भाषाओं के शब्दों का समावेश करके राष्ट्र-भाषा हिन्दी को एक नया रूप देने का कार्य दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को करना चाहिए जिससे विविध भाषा-भाषी भारतीय जनता हिन्दी को स्वयमेव अपनावें और बड़े चाव से हिन्दी सीखें। इसके अतिरिक्त अध्यक्ष महोदय ने और एक सुझाव किया कि जिस प्रकार "एक भाषा" के रूप में हिन्दी अपनायी गयी उसी प्रकार सभी भारतीय भाषाओं के लिए "एक लिपि" के रूप में देवनागरी लिपि अपनायी जाय तो हम भारतवासी भारत की अनेक भाषाएँ आसानी से पढ़ सकेंगे। सर्वश्री डा० पी. के. कुंजिरामन जी (कार्य कारिणी समिति के सदस्य, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, केरल), विद्वान के. के. नायरजी आदि सज्जनों ने हिन्दी पढ़ने की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए जोरदार भाषण दिये।

स्वास्थ्य मंत्री ने पिछले फ़रवरी में चलायी गयी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की विविध परीक्षाओं में विजयी छात्र-छात्राओं में प्रमाण-पत्र वितरण किये और नीलेश्वर हिन्दी महाविद्यालय से केरल प्रांत में सर्व द्वितीय उत्तीर्ण प्राथमिक के छात्रों को पुरस्कार भी दिये। हिन्दी प्रचार मण्डल के अध्यक्ष डा० के. इब्राहिम कुंजी, बी. एस.सी., एम. बी. बी. एस. ने आगंतुकों का स्वागत किया और प्रचार मण्डल के मंत्री श्री के. सी. कुंजम्बु नायर जी ने अब तक के हिन्दी प्रचार कार्यों का एक संक्षिप्त रिपोर्ट पढ़कर सुनायी। नीलेश्वर हिन्दी महा विद्यालय का सन्दर्शन करके प्रचार कार्य में हार्दिक सहायता प्रदान करनेवाले कर्मवीर कामराजजी के निधन पर सभा ने अपना शोक प्रकट किया और उनकी आत्मशांति के लिए प्रार्थना की। उत्तर मंडल संगठक श्री एम. नारायण वारियर जी का कृतज्ञता प्रकाशन तथा राष्ट्रगान के साथ उक्त समारोह समंगल समाप्त हुआ।

बाल-दिवस

ता. 14-11-75 सबेरे, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) के सभा भवन में बाल-दिवस मनाया गया। सभा के उपाध्यक्ष श्री आर. के. राव ने सभा का अध्यक्षासन ग्रहण किया। उपक्रम भाषण में अध्यक्ष ने बाल-दिवस के महान उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए भाषण दिया। उन्होंने बालकों को स्वतंत्र भारत के शिल्पी एवं राष्ट्रनिर्माण के सच्चे कर्णधार भी बताया। पंडित जवाहरलाल के आदर्श व विचारों को भी सामने रखकर बालकों को उनके बताये मार्ग पर चलने का अह्वान भी दिया।

सभा के सचिव श्री पा. वेंकटाचारी ने बालकों को आदर्शवान बनने, कठिनाइयों में स्थिर रहने, धैर्य के साथ आगे बढ़ने का आह्वान दिया।

सभा के विशारद-प्रवीण विद्यालय के छात्र-छात्राओं ने मलयालम और हिन्दी में भाषण दिये तथा गीत का कार्यक्रम रहा।

मध्य केरल संगठक श्री एम. कृष्णन नायर ने सबका स्वागत किया। विशारद-प्रवीण विद्यालय की प्रधान अध्यापिका श्रीमती एस. रुग्मिणी ने धन्यवाद समर्पित किया। राष्ट्र-गीत के बाद सभा समाप्त हुई।

परीक्षोपयोगी भाषण माला

सभा की उच्च-परीक्षाएँ (विशारद, प्रवीण) और प्री डिग्री, बी.ए., बी.एससी. कक्षाओं में अध्ययन करनेवाले छात्र-छात्राओं के उपयोगार्थ सभा की तरफ़ से एक परीक्षोपयोगी भाषण-माला का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह कार्यक्रम फ़रवरी 76 में 15 दिन तक चलेगा। इस कार्यक्रम में केरल भर के हिन्दी के विद्वान और हिन्दी प्राध्यापकों के भाषण का प्रबन्ध किया जा रहा है। सभी हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थी इस कार्यक्रम में शरीक होकर फ़ायदा उठा सकते हैं। पूरा विवरण सभा कार्यालय से या संगठकों से प्राप्त कर सकते हैं।

प्रचारकों की बैठक (19-11-75)

सभा की तरफ़ से एस. एस. एल. सी. प्री टेस्ट, प्री डिग्री व डिग्री प्री टेस्ट चलाने के संबंध में परामर्श करने स्थानीय हिन्दी प्रचारक, हाई स्कूल के हिन्दी अध्यापक तथा कालेज के प्राध्यापकों की एक बैठक सभा उपाध्यक्ष श्री आर. के. राव की अध्यक्षता में हुई। लगभग 25 सज्जन उपस्थित थे। उपरोक्त प्री टेस्ट चलाने उपयोगी विचारविनिमय के बाद, टेस्ट के संचालन में सहायता देने दो उपसमितियाँ बनायी गयीं। उपरोक्त टेस्ट के संचालन का प्रबन्ध हो रहा है।

सभा के संदर्शक

निम्नलिखित सज्जनों ने सभा के कार्य का संदर्शन किया। अक्तूबर 29, श्री जनार्दन् कुरुप, सहायक निदेशक (योजना), केरल सरकार, 31, श्री उमामहेश्वरन, हिन्दी विशेष अधिकारी, केरल सरकार, नवंबर 24, 25, 26-श्री पी. आर. भास्करन नायर, प्रादेशिक अधिकारी, (दक्षिण) हिन्दी निदेशालय-मद्रास।

1975 अगस्त प्रारंभिक परीक्षाएँ

1975 अगस्त की प्रारंभिक परीक्षाओं के परीक्षा फल ता. 11-10-'75 को प्रकाशित हुआ। सभी केन्द्रों को अंक सूची तथा पुरस्कार-विजेताओं को पुरस्कार की किताबें भेजी गयी हैं।

नवंबर 75 के अंत तक सभी केन्द्रों के उत्तीर्ण परीक्षार्थियों के प्रमाण-पत्र भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

सभा के सदस्य

1975-76 में अब तक सभा के 23 आजीवन सदस्य तथा 127 साधारण सदस्य बने हैं। सभी संगठक सदस्यों की संख्या बढ़ाने में प्रयत्नशील हैं।

प्रांतीय समाचार (कर्नाटक)

कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड

प्रांतीय सचिव का प्रतिवेदन—1-7-'75 से 30-9-'75 तक

सभा की कार्यकारिणी की बैठक: 14-9-'75 को कार्यकारिणी की बैठक प्रांतीय सभा के भवन, धारवाड़ में हुई। सभा के कार्यकलापों को बढ़ाने और सभा की आर्थिक स्थिति को सुधारने पर विचार विनिमय हुआ।

सभा की प्रारंभिक परीक्षाएँ: 24-9-'75 को कर्नाटक राज्य के 127 केन्द्रों में सभा की प्रारंभिक परीक्षाएँ चलीं। प्राथमिक में 3559, मध्यमा में 2421 और राष्ट्रभाषा में 1309 परीक्षार्थी बैठे। कुल परीक्षार्थी-संख्या 7389 थी। गत 1974 अगस्त की अपेक्षा यह संख्या ज्यादा थी।

सभा समारोह: 15-8-'75 के स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर सभा की कार्यकारिणी के कार्याध्यक्ष श्री एस. एस. बसवनाल ने राष्ट्रीय झण्डा फहराया और कार्यकर्ताओं में मिठाई बाँटी गयी।

प्रचार और संगठन: प्रांतीय सभा के वैतनिक संगठक श्री द. रा. पुराणिक और श्री एल. ऐ. बेल्लीगट्टी ने प्रस्तावित अवधि में क्रमश: 45 और 42 दिनों में

क्रमश: 45 और 69 केन्द्रों का भ्रमण किया। गौरव संगठक श्री आर. जी. कुलकर्णी ने 31 दिनों में 68 केन्द्रों का भ्रमण किया। संगठकों ने प्रचारकों से मिलकर अपील की कि अधिक संख्या में सभा की परीक्षाओं में विद्यार्थियों को बिठा दें।

सभा द्वारा संचालित हिन्दी माध्यम स्कूल: धारवाड़ में शिशु-विहार, प्राइमरी स्कूल और हाईस्कूल; हुब्ली में कन्नड माध्यम हाईस्कूल और बेंगलूर में एक नर्सरी स्कूल, माध्यमिक स्कूल और हाईस्कूल यथावत् चल रहे हैं।

वाचनालय और पुस्तकालय: सभा के वाचनालय में 45 पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। पुस्तकालय में कुल 9187 ग्रंथ हैं। इस अवधि में पुस्तकालय में कुल 47 सदस्य थे।

प्रांतीय सचिव का भ्रमण: 14-8-'75—धारवाड़ गांधी हिन्दी हाईस्कूल में छात्र संसद का उद्घाटन किया। 24-8-'75—धारवाड़ और हुब्ली के परीक्षा केन्द्रों का संदर्शन किया। 27-9-'75 को हुब्ली में संपन्न प्रचारकों की बैठक में भाग लिया।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल), एरणाकुलम

केरल के प्रचारक बन्धुओं से प्रार्थना

केरल के सभी हिन्दी प्रचारक यह सुनकर खुश होंगे कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के निर्णय के अनुसार, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) की ओर से केरल के हिन्दी प्रारंभक विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सभा की प्राथमिक परीक्षा के पूर्व '**हिन्दी परिचय**' नामक एक छोटी-सी लिखित परीक्षा प्रतिवर्ष मई व नवंबर में चलाने का आयोजन हुआ है। दो घंटे का एक प्रश्न-पत्र होगा। परीक्षा तारीख़ के एक महीने पहले प्रचारकों के द्वारा नियत नमूने में आवेदन-पत्र भेजना है। इसके लिए प्रचारकों को सभा की तरफ़ से उनके द्वारा भेजे जानेवाले विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर पुरस्कार दिया जएगा।

इस संबंधी अन्य पूरा विवरण, पाठ्यक्रम तथा आवेदन-पत्र दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल), एरणाकुलम कार्यालय से प्राप्त कर सकते हैं।

केरल के सभी प्रचारकों से प्रार्थना है कि अपना सक्रिय सहयोग देकर ज्यादा से ज्यादा छात्र-छात्राओं को इस परीक्षा में बिठाकर उनको प्रोत्साहित करें।

आपका,

पा. वेंकटाचारी

सचिव

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में दक्षिण की देन

⊕ प्रो० जी. सुन्दर रेड्डी,
(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्टणम)

भारत के प्राचीन दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य का अध्ययन करें तो विदित होता है कि इनके दृष्टिकोण और लक्ष्य में एकरूपता एवं विश्वजनीन भावना पायी जाती है। इस विशाल देश की भौगोलिक सीमाएँ कभी भी इसकी एकता में बाधक नहीं रहीं। विशाल संस्कृत साहित्य में भी भारत की अखण्डता तथा उसकी सामासिक संस्कृति की एकता निरूपित हुई है। इस दिशा में केरल के वरदपुत्र श्री शंकराचार्य ने दार्शनिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो योगदान किया था, वह चिरंतन एवं अविस्मरणीय है। यह भी निर्विवाद तथ्य है कि सभी आधुनिक भारतीय साहित्यों के मूल में संस्कृत साहित्य की प्रेरणा एवं प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कार्यरत हैं। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के मूल में भी इसी प्रकार की प्रेरणा एवं एकता की भावना अनेक शताब्दियों से कार्य कर रही है।

हिन्दी भाषा एवं साहित्य को दक्षिण की जो देन रही, उसके सम्यक रूप को जानने के लिए उसके इतिहास को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है— (1) राष्ट्रपिता गांधीजी के द्वारा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना के पूर्व हिन्दी को देन। (2) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना के पश्चात् हिन्दी को देन। गांधीजी के पूर्व दक्षिण भारत की हिन्दी को जो देन रही, उसे पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : (1) परोक्ष योगदान, (2) प्रत्यक्ष योगदान।

परोक्ष योगदान के अंतर्गत उन महानुभावों को लिया जा सकता है जिनकी विचारधारा अथवा कृतियाँ हिन्दी भाषा एवं साहित्य के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई हों। इनमें हाल शातवाहन, शंकराचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि के नाम अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी साहित्य की सतसई परंपरा को विशेषकर बिहारी सतसई को प्रभावित करनेवाला प्राकृत भाषा में लिखित गाथा सप्तशती के रचयिता महाराजा हाल शातवाहन दाक्षिणात्य ही थे। हिन्दी साहित्य की रहस्यवादी काव्य-परंपरा को, विशेष रूप से कबीर की निर्गुण-धारा को प्रभावित करनेवाले अद्वैत

दर्शन के प्रवर्तक आदिशंकर भी दक्षिण के ही थे। हिन्दी की रामभक्ति परंपरा को विशेषकर तुलसी को प्रभावित करनेवाले श्रीरामानंद रामानुज की शिष्य-परंपरा में से थे। सूरदास तथा हिन्दी के अन्य अष्टछाप कवियों को काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त करनेवाले वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलदास भी दक्षिण भारत के थे। इसी प्रकार हिन्दी के निर्गुणियों की विचारधारा के मूल में कर्नाटक प्रांत के वीरशैवशरण कवियों का प्रभाव अन्वेषित किया जा सकता है। प्रो. नागप्पा के शब्दों में "प्रसिद्ध वीरशैवशरण अल्लम प्रभु का गोरखनाथ से मिलने की बात प्रसिद्ध है ही। नाम-महिमा, गुरु का महत्व, त्यागभाव, कर्म पर याने भीख न माँगकर के 'कायक' करने पर बल, जैसे विचार शरणों के वचन और निर्गुणियों की वाणी में प्रायः समानतया पाये जाते हैं। समस्त हिन्दी निर्गुण कवियों का समय कर्नाटक के शिवशरण कवियों के कम से कम दो-तीन सौ बरसों के बाद का है। इससे लगता यह है कि हिन्दी निर्गुणवाणी पर कर्नाटक की शरण-वाणी का काफी प्रभाव रहा है।"

अब हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव के अंतर्गत उन दाक्षिणात्य साहित्यकारों का योगदान स्मरणीय है जिन्होंने हिन्दी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इस दिशा में सर्वप्रथम रीतिकाल के आलोक स्तंभ कविवर पद्माकर का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। व्रजभाषा पर आपका अधिकार निर्विवाद है। आप आंध्र प्रांत के ही थे। हिन्दी साहित्य में पद्माकर के स्थान को निर्धारित करते हुए रीति-साहित्य के मूर्धन्य समालोचक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने जो लिखा है, वह यहाँ उल्लेखनीय है—"पद्माकर की भाषा ऐसी है, जैसी हिन्दी में किसी कवि की नहीं। भाव के विचार से पद्माकर को हम चाहे कुशल काव्यकार न माने, पर भाषा के विचार से उन्हें प्रौढ़ वाग्विदग्ध एवं कुशल कलाकार हमें अवश्य मानना पड़ेगा। घनानंद आदि पुराने कवियों में पद-लालित्य चाहे हो, पर भाषा का वैसा सद्य, सजा-सँवारा रूप उनमें भी नहीं है, जैसा कि पद्माकर की भाषा बिहारी के प्रभाव से बची है और स्थित एवं स्निग्ध है।" इस तरह दक्षिण की साहित्यिक प्रतिभा ने पद्माकर के माध्यम से हिन्दी के रीतिकाल को भाषिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में अपूर्व योग दिया था। अठारहवीं शताब्दी में ही मलयालम और हिन्दी का द्विभाषा कोष तैयार किया गया था जिसमें उस समय प्रयुक्त हिन्दुस्तानी का स्वरूप स्पष्ट हो गया। यह ग्रंथ पुराने कोश-विज्ञान तत्वों के आधार पर लिखा गया है। मलयालम द्वारा हिन्दुस्तानी (हिन्दी) सिखाने के लिए हिन्दुस्तानी मलयालम पाठमाला को 18 वीं शताब्दी में ही केरल के एक उभयभाषा विद्वान ने तैयार किया। यह पुस्तक हिन्दुस्तानी के व्याकरणिक रूपों का अध्ययन करने के लिए केरलीयों के

लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इसके पश्चात् महाराजा स्वाति तिरुनाल (1813 से 1846) का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है। उन्होंने हिन्दी में सरस गीतों की रचना की। यद्यपि इन गीतों की भाषा अधिकतर व्रजभाषा थी फिर भी उन्होंने एक सीमा तक खड़ी बोली को भी उसमें स्थान दिया और इस तरह व्रजभाषा और खड़ी बोली के समन्वय करने का प्रयत्न किया।

भारतेंदु युग में आंध्र प्रात के नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि ने सन् 1881 के आस-पास ही हिन्दी में 32 नाटक लिखे जो हिन्दी को दक्षिण की देन के इतिहास में एक अभूतपूर्व एवं आश्चर्यजनक घटना है। उस समय धारवाड़ की नाटक कंपनियों के प्रभाव से कृष्णा जिला के मछलीपट्टणम् नगर में हिन्दू थियेटर नामक संस्था की स्थापना हुई थी। इसी संख्या के लिए पुरुषोत्तम कवि ने उपर्युक्त नाटकों को तेलुगु लिपि में लिखा था। उनमें सीमंतिनी चरित्र, कीर्तिमालिनी प्रदान, अपूर्व-दांपत्य, अहल्या संक्रंदनीय, रामदास चरित्र आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इस तरह नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि ने मात्रा एवं गुण की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी में ही हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए जो योगदान दिया था, उसपर हिन्दीतर भाषा-भाषी अवश्य गर्व कर सकते हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभिक काल में भारत में महात्मा गांधी का पदार्पण कई दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। महात्माजी की दूरदर्शिता इसीमें है कि आपने भारतीय जनता में एकता एवं आत्मीयता लाने के लिए हिन्दी प्रचार एवं प्रसार को स्वतंत्रता आंदोलन के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया था। इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर आप ने सन् 1917 में दक्षिण भारत की केंद्र नगरी मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की। इसकी चार प्रमुख शाखाएँ दक्षिण के चार भाषायी राज्यों के मुख्य नगरों में अर्थात् आंध्र-प्रांत के लिए विजयवाडा (संप्रति हैदराबाद) में, तमिलनाडु के लिए तिरुच्चिरापल्ली में, कर्नाटक के लिए बेंगलूर में तथा केरल के लिए तिरुवनन्तपुरम में खोली गयी थीं। तब गांधीजी की प्रेरणा तथा राष्ट्रीय विचारधारा से प्रेरित होकर उत्तर भारत से अनेक विद्वान और प्रचारक दक्षिण में हिन्दी प्रचार के कार्य में सक्रिय योगदान देने के लिए आये थे। तब समस्त दक्षिण भारत में लाखों की संख्या में बच्चों से लेकर बूढ़ों तक ने बड़े चाव से हिन्दी सीखी। क्रमशः एक ओर विद्यालयों और महाविद्यालयों के पाठ्य-क्रमों में हिन्दी को स्थान दिया गया था तो दूसरी ओर हिन्दी भाषा एवं साहित्य की शिक्षा देने के लिए सभा की ओर से कई हिन्दी विद्यालयों की स्थापना हुई। इस प्रकार समूचे दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा एवं

साहित्य का प्रचार विस्तृत रूप से होने लगा। फलस्वरूप आज सारे दा भारत में लाखों की संख्या में लोग हिन्दी समझ सकते हैं, बोल सकते हैं और लिख भी सकते हैं।

इस प्रकार हिन्दी सीखे हुए दक्षिणात्यों में अनेकों ने हिन्दी को अपने लेखन के माध्यम के रूप में स्वीकार किया है और सैकड़ों ग्रंथों की रचना की है। उनमें कई ग्रंथ उच्च स्तरीय प्रकाशित हुए हैं। दक्षिण के इन हिन्दी लेखकों ने हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में अर्थात् कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना आदि में विशिष्ट रचनाएँ कीं।

दक्षिण के हिन्दी लेखकों की देन को दक्षिण के चार भाषायी प्रांतों को पृथक पृथक इकाई के रूप में लेकर अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया जायेगा।

आंध्र प्रांत में सर्वप्रथम कुछ विद्वानों ने हिन्दी भाषा के क्षेत्र में स्तुत्य कार्य किया है। इनमें सर्वश्री जंध्याल शिवन्नशास्त्री, वेंकटेश्वरशर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शिवन्नशास्त्रीजी महावीर प्रसाद द्विवेदीजी के समकालीन थे। खड़ीबोली के स्वरूप को संवारने में शास्त्रीजी का भी सहयोग, द्विवेदीजी को प्राप्त था। शास्त्रीजी ने ही सर्वप्रथम तेलुगु हिन्दी कोश, हिन्दी तेलुगु कोश तथा हिन्दी व्याकरण आदि की रचना की। इनके पश्चात् कोषकार के रूप में मोटूरि सत्यनारायणजी का नाम महत्वपूर्ण है। आपके संपादकत्व में हिन्दी विश्वकोश दस भागों में निकल रहा है। इतना ही नहीं, आपने अनेक वर्षों के पूर्व ही कतिपय पाठ्य-पुस्तकों की रचना भी की थी। वेंकटेश्वर शर्माजी ने 'हिन्दी तेलुगु कोश' की रचना की। उन्होंने 'अध्यात्मयोग और चित्तविकलन' नामक शोधपरक ग्रंथ की रचना की। इस दिशा में श्री कामाक्षिराव तथा अयाचितुल हनुमच्छास्त्री के नाम लिये जा सकते हैं। इन्होंने हिन्दी तेलुगु कोशों की रचना की। डा. विश्वामित्र का 'हिन्दी और तेलुगु ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन' तथा प्रो० जी. सुन्दररेड्डी, डा० पी. आदेश्वरराव और एस. एम. इकबाल का 'हिन्दी तथा द्राविड़ भाषाओं के समानरूपी भिन्नार्थी शब्द' आदि ग्रंथ इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं।

आंध्र के आधुनिक हिन्दी कवियों में लाजपति पिंगल का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। आपने 1929 में ही 'भक्त रामदास' शीर्षक प्रबंध काव्य का प्रणयन पहले व्रजभाषा में, तदुपरांत खड़ी बोली में किया था। उस काव्य का इतिवृत्त गोदावरी नदी तट पर स्थित भद्राचलम् के श्रीरामचंद्र के अनन्य भक्त

रामदास के जीवन एवं भक्ति पर आधारित है। खड़ी बोली काव्य-शैली पर कवि का पर्याप्त अधिकार है। इसके पश्चात् पंडित कर्ण वीरनागेश्वरराव की काव्य-कृति 'दलितों की विनती' है। यह दोहा छंदों में लिखी हुई सतसई है। आपने इसमें जाति-पांति का विरोध किया और समाज के स्वार्थी लोगों तथा तत्कालीन सामाजिक बिसंगतियों पर करारा व्यंग्य किया। विषय-वैविध्य, रचना-शैली तथा विचार-धारा की दृष्टि से श्री सी. बालकृष्णराव की काव्यकृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि बालकृष्णरावजी की मातृभाषा तेलुगु है फिर भी आजीवन हिन्दी प्रांत में रहने के कारण हिन्दी उनके लिए मातृभाषा सदृश है। 'कौमुदी', 'आयास', 'कवि और छवि', 'बात बीती', 'हमारी राह', 'अर्द्धशती' आपके उल्लेखनीय काव्य-संग्रह हैं। हिन्दी के नये कवियों में आपका स्थान ऊँचा है। श्री वारणासी राममूर्ति 'रेणु' इसी श्रेणी के कवि हैं, साथ ही साथ उच्चकोटि के अनुवादक भी। 'गीत-विहग' रेणु जी की मौलिक कविताओं का संकलन है जिसमें प्रकृति-सौंदर्य और राष्ट्र-प्रेम पाये जाते हैं। 'भागवत परिमल' कवि की दूसरी काव्य-कृति है। यह तेलुगु के महान भक्त कवि पोतना के श्रीमद्भागवत के चार आख्यानों का हिन्दी काव्य-रूपांतर है। कल्पना की संश्लिष्टता एवं मौलिकता तथा बौद्धिक विचारधारा की दृष्टि से आलूरि बैरागी की हिन्दी कविताओं का अत्यंत ऊँचा स्थान है। 'पलायन' उनकी प्रथम प्रकाशित काव्य-संग्रह है जिसका प्रकाशन 1951 में हुआ। इसका दूसरा संस्करण 'बदली की रात' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। श्री लक्ष्मीकांत वर्मा तथा विश्वंभर मानव जैसे हिन्दी के समीक्षकों ने बैरागी जी की प्रतिभा की प्रशंसा मुक्तकंठ से की है। उन्होंने तेलुगु की आधुनिक कविता का हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत किया है। बी. वी. सुब्बाराव 'हरिकिशोर' ने 'प्रणय', 'मृणालिनी' नामक दो खण्ड काव्यों की रचना की है। इनमें कवि ने प्रेम को अत्यंत मनोज्ञ रूप में चित्रित किया है। डा. इ. पांडुरंगरावजी ने 'कामाक्षी विलास' शीर्षक धर्म प्रधान काव्य की रचना की। काव्य भाषा एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह अत्यंत प्रौढ़ बन पड़ा है। रापर्ति सूर्यनारायण का 'योजन-गंधा' महाभारत के एक अल्प अंश पर आधारित होकर लिखा गया एक प्रौढ़ प्रबंध है। कथा-गमन और पात्र-चित्रण में कवि का काव्य-शिल्प निखर उठा है। रस और ध्वनि की दृष्टि से भी यह काव्य उच्चकोटि का है। डा. चावलि सूर्यनारायण मूर्ति ने 'सती उर्मिला' शीर्षक खण्ड काव्य की रचना की थी। 'तेलुगु की आधुनिक काव्य-धारा', 'आंध्र के लोकप्रिय कवि श्री श्री' डा. सूर्यनारायण 'भानु' के आधुनिक तेलुगु कविताओं का सफल हिन्दी अनुवाद है। डा. आदेश्वरराव कृत 'अंतराल' काव्य संग्रह में प्रेम और दर्शन

संबंधी गीतों के साथ कतिपय लंबी कविताएँ भी संकलित हैं। भाव और शिल्प की दृष्टि से ये गीत अत्यंत सफल हैं। डा. सरगु कृष्णमूर्ति के काव्य संग्रह 'मधुस्वप्न' और 'ज्वाला केतन' में प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। डा. पुल्लय्याराव का 'स्वर्णरथ' और डा. श्रीरामरेड्डी का 'सुमन-मन' आदि काव्य-संग्रह उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार हिन्दी नाटक के विकास में भी आंध्रों ने योग दिया है। उनमें चोडवरपु रामशेषय्या के ऐतिहासिक नाटक 'बोब्बिली', 'गृहिणी', 'मंत्री रामय्या', 'रानी मल्लम्मा', अत्यंत सफल एवं लोकप्रिय बन पड़े हैं। डा० चलसानि सुब्बाराव ने आंध्र के इतिहास पर आधारित 'रानी रुद्रमा' शीर्षक ऐतिहासिक नाटक की रचना की। यह अभिनेयता की दृष्टि से भी सफल है। डा० कर्ण राजशेषगिरिराव का 'भौरों का पहाड़' आंध्र के इतिहास और संस्कृति पर आधारित एकांकी संकलन है। डा० चावलि सूर्यनारायणमूर्ति ने 'महानाश की ओर', 'सत्यमेव जयते' आदि पौराणिक इतिवृत्तों पर आधारित नाटकों की रचना की, जो अभिनेयता की दृष्टि से भी सफल हैं।

हिन्दी के कथा साहित्य में आंध्र के सर्वश्री आरिगपूडि रमेश चौधरी और बालशौरिरेड्डी अत्यंत सफल एवं लोकप्रिय उपन्यासकार एवं कथाकार हैं। आरिगपूडिजी ने लगभग चालीस उपन्यासों तथा कथा-संग्रहों की रचना की है। उनके उपन्यासों में 'अपनी कहानी', 'पतित-पावनी', 'दूर के ढोल', 'उधार के पँख', 'भूले भटके', खरे-खोटे', 'धन्यभिक्षु', 'अपवाद', 'आदरणीय', 'सारा संसार मेरा', 'उल्टी गंगा', 'चरित्रवान', 'अपने पराये', 'झाड फानूस', 'निर्लज्ज' आदि उल्लेखनीय हैं। श्री बालशौरिरेड्डीजी ने भी एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे हैं। उनमें 'शबरी', 'ज़िन्दगी की राह', 'भग्न-सीमाएँ', स्वप्न और सत्य', 'प्रकाश और परछाईं', 'बैरिष्टर', 'धरती माँ', 'प्रोफेसर' आदि उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त दोनों उपन्यासकारों के उपन्यासों में दक्षिण के ऐतिहासिक एवं सामाजिक वातावरण का चित्र उभर आया है। शिल्प एवं शैली पर दोनों का पूर्ण अधिकार है। इब्राहीन शरीफ़ आंध्र के उदीयमान कथाकार हैं और उनके 'अंधेरे के साथ' उपन्यास को हिन्दी संसार में बड़ी लोकप्रियता मिली है। 'उफान' बी. वी. सुब्बारावजी का सामाजिक उपन्यास है।

आंध्र में समालोचनात्मक-ग्रंथ लिखनेवाले विद्वानों में वारणासि राममूर्ति रेणु, डा० इ. पांण्डुरंगराव, श्री कामाक्षिराव, प्रो० जी. सुंदररेड्डी, डा० नरसिंहाचारी, चावलि सूर्यनारायणमूर्ति, आयाचितुल हनुमच्छास्त्री, वेमूरि आंजनेय शर्मा, वेमूरी

राधाकृष्णमूर्ति, कर्ण राजशेषगिरि राव, डा० पी. आदेश्वर राव, डा० एस. वी. माधव राव, डा० भीमसेन निर्मल, डा० दक्षिणामूर्ति, डा० शिवसत्यनारायण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अनेक उच्च स्तरीय आलोचनात्मक ग्रंथ एवं निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुकी हैं।

कन्नड़ भाषियों का हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान दो रूपों में है— मौलिक साहित्य और अनूदित साहित्य। हिन्दी में कन्नड़ के हिन्दी लेखकों ने कई उपन्यास एवं कहानियाँ लिखी हैं। डा० एस. एम. कृष्णमूर्ति ने 'अपराजिता' शीर्षक एक मौलिक एवं सफल उपन्यास की रचना की है। कतिपय कन्नड़ उपन्यासों का हिन्दी रूपांतर भी हुआ है।

कविता के क्षेत्र में श्री सनदी चंद्रकांत कुसनूरकर का नाम लिया जा सकता है। इनके साथ-साथ डा० हिरण्मय, श्रीमती सरोजिनी महिषी, श्री उमापति शास्त्री, बाबूराव कुमटेकर आदि ने कई कन्नड़ कविताओं का सफल हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत किया है।

नाटक के क्षेत्र में भी कई सफल कन्नड़ नाटकों के सफल हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें श्री गिरीश कर्नाड का 'तुगलक्' नाटक उल्लेखनीय है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री बी. वी. कारंत ने किया है। 'कुवेंपु' के 'रक्ताक्षी' नाटक का हिन्दी अनुवाद डॉ० हिरण्मय ने किया है।

समालोचना के क्षेत्र में डॉ० हिरण्मय, प्रो० नागप्पा, डॉ० राजेश्वरय्या, डॉ० एम. एस. कृष्णमूर्ति, डॉ० दक्षिणामूर्ति, श्री एस. रामचन्द्र, श्री. दिवाकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में मैसूर विश्वविद्यालय से निकलनेवाली हिन्दी वार्षिक शोध-पत्रिका 'मानसी' भी श्रेष्ठ माध्यम रही है।

तमिल के हिन्दी लेखकों के योगदान को भी मौलिक एवं अनुवाद के दो रूपों में प्रस्तुत किया जायेगा। मौलिक साहित्य के क्षेत्र में बहुमुखी प्रतिभाशाली डॉ० रांगेय राघव के हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में शताधिक श्रेष्ठ ग्रन्थ उनके मेधावी व्यक्तित्व की उपज हैं। रांगेय राघव का लेखन अनेक अंशों में नये-नये पक्षों को एवं विलुप्त तथ्यों को उद्घाटित करनेवाला है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में भी हिन्दी साहित्य में आपका अन्यतम स्थान है। तदुपरांत वीलिनाथन् प्रख्यात तमिल भाषी हिन्दी साहित्यकार हैं। आपने लगभग दो सौ मौलिक निबन्ध हिन्दी में प्रकाशित किये हैं। प्रो० शंकरराजु नायुडु का काव्य-संग्रह 'गीतोपहार' इस दिशा में उल्लेखनीय है। इसमें नायडू जी की विश्वजनीन भावना व्यक्त हुई है। डॉ० नायडू का शोध-प्रबन्ध 'कम्बर और तुलसी' अत्यंत महत्वपूर्ण है। पद्मश्री

डॉ० मलिक मोहम्मद तमिल भाषी हिन्दी साहित्यकारों में अद्वितीय स्थान रखते हैं। 'आळ्वार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी का वैष्णव भक्ति काव्य' तथा 'वैष्णव भक्ति आंदोलन का अध्ययन' (हिन्दी तथा तमिल साहित्य के परिप्रेक्ष्य में) आपके श्रेष्ठ शोधपरक ग्रंथ हैं। 'भक्ति आंदोलन के प्रेरणास्रोत' शीर्षक कृति में आपने भक्ति आंदोलन के विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों का आंदोलन किया था। डॉ० न. वी. राजगोपालन के लगभग दस ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'आँसू की भावभूमि', 'तमिल हिन्दी काव्यशास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन', 'हिन्दी का भाषावैज्ञानिक व्याकरण' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० गणेशन के शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' को हिन्दी में अत्यंत लोकप्रियता मिली है। डॉ० पी. जयरामन के आलोचनात्मक ग्रंथ 'महाकवि सुब्रह्मण्य भारती और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला' और 'तमिल और हिन्दी के कृष्णभक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' उल्लेखनीय हैं। श्री शौरिराजन की रचनाएँ 'तमिल साहित्य' एवं 'तमिल संस्कृति' उल्लेखनीय हैं। श्री सुमतीन्द्रन जी ने कुछ मौलिक रचनाएँ की हैं जिनमें 'नानी की कहानी', 'एक स्फटिक के बीस पहलू', 'एक पल की याद में' (कविता संग्रह) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। पूर्णम् सोमसुन्दरम की 'अनामिका' काव्य-कृति इस संदर्भ में उल्लेनीय हैं।

इसी प्रकार अनुवाद की दिशा में भी तमिल के हिन्दी लेखकों ने स्तुत्य योगदान दिया है। इन लेखकों में श्रीनिवासाचार्य, वीलिनाथन्, श्री उमाचन्द्रन्, सरस्वती रामनाथन्, जमदग्नि, राजगोपालन, पी. जयरामन, श्रीमती तुलसी जयरामन, शौरिराजन आदि के नाम स्मरणीय हैं।

केरल ने भी हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गांधीजी के हिन्दी प्रचार आंदोलन के पश्चात् केरल में हिन्दी के सभी साहित्यिक विधाओं में मौलिक एवं अनूदित रचनाएँ निकलने लगीं। कविता के क्षेत्र में कई स्वतंत्र रचनाएँ रची गयी थीं जिनमें तत्कालीन राजनीतिक चेतना तथा सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इस दृष्टि से श्रीमती लक्ष्मीकुट्टि देवी, भारती देवी, टी. के. गोविन्द, टेलिच्ची, विमल केरलीय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में तो बहुत-सी रचनाएँ लिखी गयीं। कुछ कविता-संकलन भी प्रकाशित किये गये हैं। उनमें पी. नारायण, पं. नारायण देव, स्व. वासुदेव पिल्लै, एन. चंद्रशेखरन नायर तथा एम. श्रीधर मेनोन के नाम उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में डॉ. एन. रामन नायर तथा डॉ. पी. विजयन के काव्य-ग्रन्थ क्रमशः 'नोक-झोंक', तथा 'कथ्य और तथ्य' में संकलित व्यंग्य कविताएँ मार्मिक तथा सुन्दर बन पड़ी हैं। वैसे तो कई मलयालम की सुन्दर काव्य-कृतियाँ भी

हिन्दी में निकली हैं जिनमें ज्ञानपीठ विजेता श्री शंकर कुरुप की 'ओटक्कषल' विशेष उल्लेखनीय है। डॉ. जी. गोपीनाथन की 'मलयालम की नयी कविताएँ' सफल अनूदित रचना है।

गद्य की विधाओं में भी केरलीयों की देन कम नहीं है। कहानी के क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्व कहानीकारों में सर्वश्री के. केशवन नायर, माधव कुरुप, सी. जी. गोपाल कृष्णन्, माधवि कुट्टि, लिचूर, एन. वेंकटेश्वरन् का नाम आदर से लिया जा सकता है। 'हिन्दी प्रचारक' पत्रिका में अक्सर इन लेखकों की कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। स्वातंत्र्योत्तर काल के कहानीकारों में के. नारायणन, चंद्रशेखरन् नायर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री नारायणन् की करीब पचास कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। शिल्प और शैली की दृष्टि से भी आपकी कहानियों का स्तर ऊँचा है। तदुपरांत एम. चंद्रशेखरन का कहानी-संग्रह 'हार की जीत' कथ्य और शिल्प—दोनों दृष्टियों से सफल कृति हैं। इसमें चन्द्रशेखरन की शैली की सादगी एवं शब्दों का सफल प्रयोग मिलता है। मौलिक कहिनियों की अपेक्षा अनूदित कहानियों के द्वारा निम्नलिखित लेखकों ने हिन्दी कहानी साहित्य के विकास को अच्छा योगदान दिया। हिन्दी पाक्षिक 'युगप्रभात' के संपादक रविवर्मा का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। इनके उपरांत पी. जी. वासुदेव' एस. लक्ष्मण शास्त्री, एम. एन. सत्यार्थी, वी. डी. कृष्णन नंप्यार आदि की कई अनूदित कहानियाँ प्रकाशित हो गयी हैं। 'केरल भारती', 'युग प्रभात' 'साहित्य शिक्षण मंडल' पत्रिका आदि पत्र-पत्रिकाओं में मलयालम की विशिष्ट कहानियों के अनुवाद छप चुके हैं। तकषी भी एक सफल हिन्दी अनुवादक हैं। श्री नंप्यार हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ एवं सफल अध्यापक होने के नाते समय-समय पर मलयालम की प्रतिनिध कहानियों को हिन्दी में प्रकाशित किया करते हैं।

इसी प्रकार उपन्यास के क्षेत्र में भी केरलियों का योगदान अच्छा ही रहा है। श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै मलयालम के लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। उनके तीन प्रमुख उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हो चुका है—अनुवादिका हैं पं. देवदूत विद्यार्थी की पत्नी श्रीमती भारती विद्यार्थी। मलयालम के कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुवाद भी हिन्दी में किया गया था। मलयालम से हिन्दी में अनूदित सब से विशिष्ट उपन्यास 'दादा का हाथी' है, जिसका अनुवाद श्री के. रविवर्मा ने किया है। डा० जी. गोपीनाथन के शब्दों में—"प्रस्तुत उपन्यास अनुवाद की दृष्टि से भी सफल है। इस अनुवाद से यह स्थापित होता है कि श्री रविवर्मा को शब्दों की ठीक-ठीक पकड़ है।"

नाटक के क्षेत्र में भी केरलीयों का कुछ योगदान अवश्य रहा है। इस दिशा में 'युग प्रभात' पाक्षिक ने अच्छा प्रोत्साहन दिया था। अनुवादकों में श्री पुरुषोत्तम, श्री सी. एन. गोविन्दन के नाम उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में डा० एन. रामन नायर का मौलिक नाटक 'वीर दलवा वेलुत्तंपी' विशेष उल्लेखनीय है। डा० जगदीश-गुप्त के शब्दों में 'राष्ट्रीय-भावना से अनुप्रेरित यह नाटक केरल के इतिहास एवं सांस्कृतिक जीवन की पृष्ठभूमि में उस व्यापक संघर्ष की एक पार्श्व-छवि आधिकारिक रूप से प्रस्तुत करता है।" श्री पी. जी. वासुदेव तथा के. कृष्णमेनोन भी अच्छे अनुवादक हैं। इसी प्रकार एकांकी लेखन के क्षेत्र में श्री एन. चंद्रशेखरन नायर, श्रीमति लक्ष्मीकुट्टि अम्मा, श्री के. नारायणन जैसे लोगों ने मौलिक कार्य किया है।

आलोचना और निबन्ध के क्षेत्र में तो केरल के हिन्दी लेखकों का विशेष योगदान रहा है। सर्वश्री पी. के. केशवन नायर, स्व. वासुदेवन पिल्लै, चंद्रहासन, एन. वेंकटेश्वरन, डॉ. भास्करन नायर, डॉ. विश्वनाथ अय्यर, डॉ. रत्नमयी दीक्षित, रविवर्मा आदि के नाम सादर लिये जा सकते हैं। केरल हिन्दी प्रचार सभा के संस्थापक स्व. के. वासुदेवन पिल्लै भी सफल निबन्धकार हैं। श्री वेंकटेश्वरन जी की 'केरल महिमा' शीर्षक पुस्तक भी उल्लेखनीय है। डॉ. भास्करन नायर जी ने मलयालम की सभी विधाओं पर परिचयात्मक लेख लिखे। सांस्कृतिक और साहित्य जैसे गंभीर विषयों पर कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ अय्यर ने अधिक मात्रा में निबन्ध लिखे हैं, जो विषय-वैविध्य एवं शैली की दृष्टि से अत्यंत सफल बन पड़े हैं। श्री कृष्ण वारियर और रविवर्मा ने संपादकों के रूप में हिन्दी की बड़ी सेवा की है। श्री रामचन्द्र देव के 'मलयालम साहित्य', 'तुलसी और तुंचन' शीर्षक ग्रंथ भी उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार दक्षिण के चारों प्रांतों में गवेषणा के क्षेत्र में तो गुण एवं मात्रा की दृष्टि से कई ग्रन्थ हिन्दी में रचे गये हैं जिनका उल्लेख इस लघु-लेख में किया जाना असंभव है।

इस प्रकार दक्षिण के चारों प्रांतों ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया है। मध्ययुग से लेकर आज तक दक्षिण के अनेक लेखकों ने अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता एवं साधना के बल पर सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक क्षेत्रों में अनेक उच्च स्तर के ग्रंथों की रचना कर हिन्दी साहित्य की अपार सेवा की। अतः यह वांछनीय है कि हिन्दी साहित्य का पुनर्लेखन हो और उसमें इन दक्षिण के हिन्दी साहित्यकारों को भी समुचित स्थान प्रदान किया जाए। ऐसे न होगा तो हिन्दी साहित्य का अखिल भारतीय स्वरूप पूर्णतया प्रकट नहीं होगा और इससे हिन्दी साहित्य का इतिहास अधूरा रह जाएगा।

*

सास्वत तपस्वी
डा० डी॰ वी॰ गुण्डप्पा

● एस. रेवण्णा, बेंगलूर

दिनांक 7-10-1975 के दिन कर्नाटक की जनता शोक तप्त हुई, क्योंकि उसी दिन वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध डा० गुण्डप्पा ने अपनी 87 की अवस्था में इहलोक की यात्रा समाप्त की। अपने जीवन की यात्रा में उन्होंने अपने सहयात्रियों के हृदय में जो ज्ञान की ज्योति जगायी वह कभी बुझनेवाली नहीं।

डी. वी. गुण्डप्पा का जन्म कर्नाटक राज्य कोलार जिला, मुलबागिलु नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता देवनहल्ली वेंकटरामय्या स्कूल में अध्यापक थे। बाल्यकाल में गुण्डप्पा कोलार एवं मैसूर आदि नगरों के स्कूलों के छात्र रहे। किसी तरह मेट्रिक तक आये। परन्तु परीक्षा दे नहीं पाये। परिस्थिति ने उनकी इतनी छोटी उम्र में ही नौकरी करने पर विवश कर दिया। परन्तु अध्ययन के प्रति उनकी प्रवृत्ति सजग थी। 1905 में वे बेंगलोर आये और पत्रिकाओं के उद्योग में लग गये। उन्होंने अपने स्वाध्याय एवं दृढ़ संकल्प से यह सिद्ध कर दिया कि विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालयों की उपाधियों की आवश्यकता नहीं। कन्नड़, संस्कृत, तेलुगु, अंग्रेज़ी और तमिल आदि भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार हो गया। प्रथम दशक में ही लिखे अंग्रेज़ी भाषा के लेखों को पढ़कर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर दंग रह जाते थे। वे कर्नाटक के घर-घर में डी. वी. जी. नाम से प्रसिद्ध हो गये।

पत्रिकाओं का उद्योग

गुण्डप्पाजी बेंगलोर आने के बाद दो वर्षों तक 'सूर्योदय प्रकाशिका' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका में काम करते रहे। उसके उपरांत उन्होंने 1907 में स्वयं 'भारती' नामक एक दैनिक पत्रिका शुरू कर दी। कालांतर में वह पत्रिका बंद हो गयी। 'मैसूर टाइम्स' नामक एक पाक्षिक में उन्होंने तीन वर्षों तक सह-

संपादक की हैसियत से काम किया। 1920 में अंग्रेजी में 'कर्नाटक रिव्यू' नामक द्विसप्ताहिक पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन कार्य शुरू किया। संपादक की हैसियत डी. वी. जी. ने बड़ी निर्भीकता से ब्रिटिश शासन में होनेवाले अन्याय एवं भ्रष्टाचार का खण्डन किया। धन-प्रलोभन देनेवाले सैकड़ों अधिकारी उनके पास आये। परन्तु उनकी निस्वार्थ बुद्धि ने ऐसे प्रलोभनों से रक्षा ही नहीं की वरन् आजीवन दरिद्रता में जीवन व्यतीत करने पर विवश किया। इस दरिद्रता के कारण उनको किसी हालत में दुख का अनुभव नहीं हुआ। सेवा मनोभाव के कारण ही वे 1928 में बागलकोट के संवाददाताओं के सम्मेलन में और 1960 में बेंगलोर में संपन्न संवाददाताओं के सम्मेलनों में गौरवान्वित हुए।

मंकुतिम्मन कग्गा और अन्य रचनायें

'मंकुतिम्मन कग्गा' डी. वी. जी. की जनप्रिय कृति है। इस महाकाव्य में कवि ने अपने जीवन-तत्वों को बड़े मार्मिक ढंग से निरूपित किया है। इसमें उनके जीवनानुभव का रसपाक है और यह कन्नड साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। केन्द्रीय मंत्री डा० सरोजिनी महिषी ने इस महाकाव्य का हिन्दी में अत्यंत सुन्दर ढंग से अनुवाद प्रस्तुत किया है।

डी. वी. जी. की अन्य रचनाओं में 'श्रीमद्भगवद्गीता अथवा जीवन धर्मयोग' वेदांत का सार संग्रह है। इस ग्रंथ को केन्द्रीय साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ।

भोग की इच्छा पाप नहीं। जीवन में उल्लास का अपना ही एक विशिष्ट स्थान है। सौंदर्यानुभव ही आत्मा के उत्कर्ष का साधन बन सकता है, इन्हीं तत्त्वों को डी. वी. जी. ने 1970 में प्रकाशित 'शृंगार मंगलम' नामक काव्य में प्रतिपादित किया है।

'जीवन-सौंदर्य एवं साहित्य' वैचारिक प्रबंधों का एक संग्रह है। 'उमरन-ओसगे' उमर कय्याम का भावानुवाद है। परन्तु इसके अध्ययन से नूतन काव्य-सा आनंद आता है। 'अंतःपुर गीतेगलु' नामक रचना में कवि ने बेलूर के चेन्न केशव के अंतःपुर की मदनिकाओं का शृंगार एवं संगीतमय चित्रण किया है। 'गीतशाकुंतला' संगीतानुवाद है। विद्यारण्य, गोखले जैसे महापुरुषों की जीवनियाँ भी डी. वी. जी. की लेखनी से अवतरित हुई। संक्षेप में कह सकते हैं कि डी. वी. जी. की सभी कृतियाँ सारस्वत-भण्डार के लिए अमूल्य धरोहर है।

डा० डी. वी. जी. बेंगलोर नगर सभा के सदस्य रहे। मैसूर राज्य के विधान-परिषद के भी सदस्य रहे। मैसूर विश्वविद्यालय के सेनेट एवं कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं। इस अशिक्षित मेधावी विद्वान को मैसूर विश्व-विद्यालय ने 1961 में डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित किया। डी. वी. जी. गोखले की विचार-धाराओं से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने गोखले को अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया। वे बेंगलोर में स्थित 'गोखले सार्वजनिक संस्था' के संस्थापक थे और अंतिम दिनों तक वे उक्त संस्था के मंत्री थे। इसी संस्था के बीसवें वार्षिकोत्सव समारोह के उपलक्ष्य में 1965 में मैसूर के महाराजा जयचामराज वोडेयर ने पाँच हज़ार रुपये दिये थे। 1970 में केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने पाँच हज़ार रुपये प्रदान किये। उसी साल कर्नाटक की जनता ने एक लाख की निधि डी. वी. जी. को अर्पित की, उन्होंने अपनी सारी संपत्ति का उपयोग गोखले सार्वजनिक संस्था में लगा दिया।

डी. वी. जी. 1932 में मडकेरी में संपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष स्थान पर आसीन हुए। कन्नड साहित्य के उपाध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने तीन वर्षों की अवधि में वसंत साहित्योत्सव, गमक कला के वर्ग, कन्नड भाषा के शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण शिबर एवं ग्रंथों की प्रदर्शिनी आदि योजनाओं को कार्यान्वित किया।

मैसूर विश्व-विद्यालय के अंग्रेजी-कन्नड शब्द कोष की संपादक-मंडली के सदस्य के रूप में डी. वी. जी. ने करीब 13 वर्षों तक सेवा की है। और बेंगलोर में गठित रामायण-महाभारत जैसे ग्रंथों की 'प्रकाशन-समिति के सदस्य के रूप में छः वर्षों तक मार्गदर्शन किया।

डी. वी. जी. के पाण्डित्य एवं प्रतिभा के लिए कोई सीमारेखा नहीं है। स्वतंत्र विचारधारा, प्रमाणिकता, न्यायैक दृष्टि, जीवन-निष्ठा, युक्तायुक्त विवेचन जैसे विशिष्ट गुणों के लिए मूर्तिमान डा० डी. वी. जी. ने सार्वजनिक जीवन में समुन्नत आदर्शों के लिए अंतिम दिनों तक संघर्ष किया। वे प्रकांड पंडित हैं। किन्तु आकाश की ओर ताकनेवाले शुष्क वेदांती नहीं है। सम्यक् जीवन को ही वे परमात्मा की आराधना मानते थे। एक बार डी. वी. जी. ने तत्कालीन भारत की आवश्यकता के बारे में एक संवाददाता से कहा था—"सार्वजनिक जीवन

में हमें प्रामाणिकता एवं सच्चरित्रता का पोषण करना चाहिए। हम लोगों में एक बड़ा दोष यही है कि सत्य बोलने का साहस नहीं रखते।"

हिन्दी भाषा के समर्थक

डा० डी. वी. वी. जी. की रचनाओं से उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय है। वे बुद्धि एवं मस्तिष्क से राजनीतिज्ञ एवं संपादक थे, हृदय से कवि थे, मन से दार्शनिक एवं तत्त्वज्ञानी थे। उनकी निर्भीक आलोचना लोगों को मुग्ध करनेवाली थी, उनका परिश्रम सेवा-भाव से भरपूर था। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और पी. कोदण्ड राव जैसे अंग्रेज़ी भाषा के समर्थकों के गहरे मित्र थे। उच्च शिक्षा के बिना स्वाध्याय से प्राप्त अंग्रेजी भाषा की विद्वत्ता में डी. वी. जी. पाश्चात्य विद्वानों को मात कर सकते थे। इस दृष्टि से वे गोखले और राइट आनेरबल वी. एस. शास्त्री जी की परंपरा में आते हैं। उनको अंग्रेज़ी के प्रति मोह अवश्य था, परन्तु उन्होंने अपने मित्र कोदण्ड राव का नारा English ever Hindi never का खुल्लम-खुल्ला विरोध किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में राजाजी का दुरंगी व्यवहार सबको ज्ञात है। स्वतंत्रता से पहले राजाजी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था। हिन्दी प्रचार व प्रसार में योगदान भी दिया था। परन्तु स्वतंत्रता के बाद उन्होंने अपना अभिप्राय बदल दिया। वे अंग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित कराना चाहते थे। डा० डी. वी. जी. ने भी हिन्दी का विरोध अवश्य किया था परन्तु इस विरोध में अंग्रेजी का समर्थन किया नहीं था। उनका अभिप्राय था कि हिन्दी भाषा कालांनर में राष्ट्र की भाषा हो सकती है, अभी वह अविकसित भाषा है।

डा० डी. वी. जी. सरस्वतीं के वरद पुत्र थे। उनका ज्ञान असीम था। वह एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था थे। ऐसे महान व्यक्ति के निधन से कन्नड का सारस्वत लोक दरिद्र हो गया। सारस्वत तपस्वी डा० डी. वी. गुण्डप्पाजी के निधन पर शोक प्रकट करते हुए कन्नड के कवि कुवेंपु ने कहा था—"कर्नाटक के साहित्याकाश में नवोदय उषःकाल के क्षितिज में उत्पन्न एक महान् नक्षत्र अस्तंगत हो गया।

मेरे पूज्य आचार्य प्रवर

जी. आर. गोपाल राव,
(सहायक हिन्दी प्राध्यापक, सौराष्ट्र कालेज, मदुरै)

वैसे तो मेरे जीवन में बहुत बड़े उतार-चढ़ाव नहीं हो पाये हैं। समतल भूमि पर बहनेवाली नदी की धारा की भाँति वह बहती जा रही है। फिर भी हिन्दी के अध्ययन के समय जो अविस्मरणीय बातें हुईं वे मेरे स्मृति-पटल पर आज भी हरी हैं।

श्वेत खादी की पोशाक में लसनेवाले मेरे गुरुवर आचार्य श्री वै. अ. देवेन्द्र, एम.ए. (मदुरै अमेरिकन कॉलेज में लगभग 28 वर्ष तक हिन्दी अध्यापन करने के पश्चात् इस वर्ष ही अवकाश प्राप्त हुए हैं) के अधीन मैं 'राष्ट्रभाषा प्रवीण' का अध्ययन कर रहा था। मेरे साथ अन्य चार-पाँच मित्रगण भी पढ़ रहे थे। मासिक शुल्क के मद्दे हम कुछ रजत-खंडों की भेंट करते थे। उस समय कुबेर से मेरा बड़ा झगड़ा था। अतः प्रतिमास वह लघुतम भेंट देने में भी मैं असमर्थ था। ऐसा होने पर भी मुझे अच्छी तरह याद है, मेरे आचार्यप्रवर ने एक बार भी मुझसे उस भेंट की माँग नहीं की थी। मेरे सहपाठियों में से एक अनुभवी और मुझसे बड़े श्री ए. आर. सीताराम जी शुल्क का संग्रह करके आचार्य को देते थे। वे तो अपनी गुरु-भक्ति तथा कर्तव्य-निष्ठा के पालन में मुझे कभी-कभी उस भेंट की याद दिलाते थे अपनी ही सहज हँसमुख मुद्रा से। चूँकि उस समय मेरे कान बहरे हो गये थे इसलिए मैं टस से मस न हुआ। भारतीय रेलों की देरी की प्रसिद्धि की तरह मैंने किसी न किसी प्रकार अपनी बाक़ी रक़म अंत में चुका तो दी अपने वर्ग नायक द्वारा। यह हुई एक बात और दूसरी बात यह है कि मेरे आचार्य प्रतिदिन समय पर आकर वर्ग संभाला करते थे। जब उनको कहीं जाना था अथवा अन्य किसी आवश्यक कार्य में लगना था तो वे नियमानुसार ठीक समय पर वर्ग में उपस्थित होकर अपने ही ढंग की धीमी तथा सुरीली आवाज़ में अपनी विवशता बताते और दूसरे दिन पढ़ाने का वादा करके चले जाते। यह कभी नहीं कहते कि आज वर्ग नहीं होगा। अब मुझे सुनाई पड़ रहा है कि आप सब लोग मेरे आचार्य की खूब प्रशंसा कर रहे हैं। ठीक है न?

इस प्रकार मेरे आचार्य-प्रवर के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और समय-पालन का इतना गहरा प्रभाव मेरे मन पर पड़ा कि आज मैं भी भरसक उन्हीं उसूलों का पालन करने में अपने को समर्थ पा रहा हूँ। धन्य आचार्य वै. अ. देवेन्द्र जी!

हिन्दी का सम्मान

हिन्दी साहित्य के संबंध में गुजराती के विद्वान श्री दी. व. के. लाल ध्रुव ने अपनी 'जयंती व्याख्यानों' के पृष्ठ 61-62 पर लिखा है—"विक्रम की 17 वीं 18 वीं शताब्दी में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य देशी भाषाएँ बहुत पिछडी हुई थीं—उस समय हिन्दी का अक्षय वट अपने विशालकाय तने और अनेक योजन घेर लेनेवाली जटाओं के साथ ऐसा फल-फूल रहा था कि पंचवटी की याद हो उठती थी. बौद्ध धर्म के सहस्र शिखावाले दीप ने निर्वाण पाया, उसके पश्चात् के मंथन-काल में धर्म-मूर्ति रामचंद्र और प्रेममूर्ति कृष्णचंद्र की भावना ने सार्वजनिक प्रचार और प्रसार पाया। उसने सात्विक प्रेम-भक्ति में लीन और राजस प्रेम-भक्ति में मग्न तुलसीदास, सूरदास तथा अन्य कवियों को जन्म दिया, जिन्होंने हिन्दी का साहित्य-सिंधु छलका दिया, यह हिन्दी भाषा संपूर्ण आर्यावर्त में प्रसारित थी, जब कि अन्य भाषाएँ देश विदेश के नाम से प्रसिद्ध थीं तब हिन्दी विशेषकर 'भाषा' के गौरवमय नाम से विख्यता थी। प्राचीन काल में लोकभाषा कोई न कोई प्राकृत होने पर भी शिष्ट मंडल में संस्कृत की जो प्रतिष्ठा थी, वही प्रतिष्ठा अर्वाचीन काल में हिन्दी को प्राप्त थी। उसमें मात्र काव्य, आख्यान और रासो ग्रंथी की रचना ही नहीं हुई, अपितु रस, अलंकार, छंद, संगीत और नीति के शास्त्रीय विषयों की भी चर्चा हुई थी। राजदरबारों में हिन्दी कविता का पोषण तथा पूजन होता था। भारत के केन्द्र दिल्ली में ही नहीं, अपितु जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि राजस्थान के राज्यों में (पंजाब की रियासतों में भी—लेखक) गुजरात तथा सुदूर महाराष्ट्र में हिन्दी के कवि सम्मान के पात्र थे। इस प्रकार हिन्दी भाषा हिमालय से लेकर विंध्याचल और सतपुडा की पहाडी लांधकर दक्षिण में भी पगडंडी बना चुकी थी। (केरल के राजा स्वातितिनाल ने कई हिन्दी पदों की रचना की हैं—लेखक)। उस समय के राज-रानवाडों में, कवि-कोविदों में साधु-संतों में यदि कोई सम्मान प्राप्त भाषा थी तो वह हिन्दी थी।

—डा. विनय मोहनशर्मा

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

प्रेमचन्द जन्मशताब्दि समारोह

सभा के अहाते में 31 जुलाई, 1980 (गुरुवार) को
स्वनामधन्य साहित्यकार **श्री प्रेमचन्द** का स्मृति-समारोह
सायं 4 बजे प्रारंभ होगा।

हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान, विख्यात साहित्यकार, कर्मठ
हिन्दी प्रचारक-प्रचारिकाएँ, गण्य-मान्य हिन्दी प्रेमी, उत्साही
छात्र-छात्राएँ इस समारोह में भाग लेंगे।

समारोह के प्रमुख आकर्षण हैं—प्रेमचन्द की मशहूर
कहानियों पर आधारित दो रोचक लघु नाटकों की प्रस्तुति—
दक्षिण रेल्वे शाखा के केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद के मंत्री
श्री मोहम्मद हयात द्वारा मंचीकृत **'पंच-परमेश्वर'**

तथा

मइलै हिन्दी शिक्षण-केन्द्र की तरफ़ से
श्री विष्णुप्रिया द्वारा निर्देशित एवं प्रस्तुत **'नमक का दारोगा'**।

हमारा अनुरोध है, प्रचारक बन्धु छात्र-छात्राओं के साथ
इस समारोह में अवश्य पधारें।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

परीक्षा विभाग की आवश्यक सूचनाएँ

राष्ट्रभाषा प्रवीण—पूर्वार्द्ध

तृतीय-पत्र (प्रादेशिक भाषा : कन्नड)

निम्नलिखित कन्नड पुस्तकें राष्ट्रभाषा प्रवीण पूर्वार्द्ध की परीक्षा तृतीय-पत्र के लिए नियत हैं। केवल अगस्त 1980 की परीक्षा में पुरानी व नयी पुस्तकों से प्रश्न पूछे जाएंगे।

1. अरसु गाळिगिद्दु वीर ಅರಸು ಗಾಳಿಗಿದ್ದು ವೀರ

लेखक : डॉ. सुब्रह्मण्य

प्रकाशक : पद्म प्रकाशन, विजयनगर, बेंगलूर-40

दाम : रु. 4·00

2. विमर्शे दारि (गद्य) भाग—2 ವಿಮರ್ಶೆಯ ದಾರಿ

बेंगलूर विश्वविद्यालय, बेंगलूर-56

*　　*　　*

राष्ट्रभाषा प्रवीण—उत्तरार्द्ध

राष्ट्रभाषा प्रवीण उत्तरार्द्ध के तीसरे पत्र में 'आधुनिक हिन्दी निबंध' से निम्नलिखित निबंध मात्र परीक्षा के लिए नियत हैं :—

1. साहित्यिक निबंध	1	से	19	तक	19
2. शैक्षिक निबंध	41	से	50	तक	10
3. राजनैतिक निबंध	56	से	64	तक	9
4. सामाजिक निबंध	65	से	71	तक	7
5. आर्थिक एवं वैज्ञानिक निबंध	83	से	87	तक	5
				कुल	50

—परीक्षा सचिव

हिन्दी प्रचार समाचार

[राष्ट्रीय महत्व की संस्था, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, का मुखपत्र]

संपादक: वे. राधाकृष्णमूर्ति

श्रद्धांजलि

भारत के भूतपूर्व महामहिम राष्ट्रपति **श्री वी. वी. गिरि** का देहावसान दि. 24-6-'80 को मद्रास में हो गया। वे सभा की राष्ट्रीय महत्व की सेवा से सुपरिचित थे और सभा के स्वर्णजयंती-समारोह की अध्यक्षता कर हमें गौरवान्वित किया।

श्रीमती इंदिरा गांधी के होनहार सुपुत्र **श्री संजय गांधी** का आकस्मिक निधन 33 वर्ष की आयु में विमान-दुर्घटना के कारण दि. 23-6-'80 को नयी दिल्ली में हो गया। युवा पीढ़ी के सर्वाधिक प्रिय फ़ौलादी नेता के रूप में उभरे श्री संजय का हृदय-विदारक निधन इस सूक्ति का प्रतीक बन गया है—

"मुहूर्तं ज्वलितं तेजः, न तु धूमायितं चिरम्!"

सभा इन दिवंगत आत्माओं को हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करती है।

वर्ष : 42 :: अंक : 7

जुलाई, 1980

वार्षिक : रु. 7-00 :: यह अंक : रु. 0-75

यह प्रेमचंद स्मृति-अंक

दक्षिण के हिन्दी प्रचार-प्रसार में अपनी वाणी, सद्भावना और रचनाओं के माध्यम से नयी स्फूर्ति भरनेवालों में प्रेमचन्दजी अग्रणी रहे हैं। हिन्दी-प्रेमी पाठक वर्ग के दिलो-दिमाग को उनके समान प्रभावित कर पानेवाला साहित्यकार शायद ही दूसरा पाया जा सकेगा।

प्रेमचंदजी की राष्ट्रवादी युग दृष्टि, मानवतावादी सोच, जनवादी रचनाकारिता और जीवंत सुंदर भाषा-शैली हमारे हिन्दी-प्रेमी पाठक वर्ग में आत्मीयता भरने में सफल निकलीं। इस दिशा में शरत्चन्द्र के बाद सर्वाधिक प्रिय तथा प्रभावी साहित्यकार प्रेमचन्द ही हैं।

प्रेमचन्दजी हमारी सभा के सेवा-संकल्पों के पक्के हिमायती ही नहीं, मददगार भी थे। सभा का निमंत्रण पाकर पदवीदान-समारोह में दीक्षान्त भाषण करने दिसंबर, 1924 ई. में यहाँ पधारे, एक सप्ताह तक मद्रास में रहकर प्रचारक बंधुओं तथा छात्र-छात्राओं से हिल-मिलकर उनका हौसला बढ़ाया। उसके बाद भी सभा के साथ अपना बन्धुभाव निभाते रहे।

सभा प्रेमचन्दजी की जन्मशती के इस संदर्भ में यह छोटा-सा उपहार आभार-स्मृति के साथ समर्पित करती है। इस अंक की तैयारी में श्री र. शौरिराजन (नगर सचिव) का ठोस सहयोग मिला है। वे साधुवाद के पात्र हैं।

मुखपृष्ठ:—श्री प्रेमचन्द और उनकी पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी

दूसरा पृष्ठ:—खड़े हुए—श्रीनाथूरामप्रेमी (मालिक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बंबई) श्री के. भाष्यम् अय्यंगार, श्री राजाजी, श्री प्रेमचन्द-दम्पति, श्री नागेश्वरराव पंतुलु, श्री काका कालेलकर। दूसरी पंक्ति में—सर्वश्री रामनाथ गोयंका (मालिक, इण्डियन एक्सप्रेस आदि पत्रिकाएँ), पी. राममूर्ति (प्रसिद्ध साम्यवादी नेता), रघुवर दयालु मिश्र, हरिहर शर्मा (पीछे—नागेश्वर मिश्र), संजीव कामत (पीछे—अवधनन्दन), मोटूरि सत्यनारायण, (पीछे—ए. आर. वी. आचार)।

[दोनों चित्र: श्री बी. एम. कृष्णस्वामी के सौजन्य से]

हार्दिक शुभ कामनाएँ

बधुवर,

आपका 6-6-'80 का कृपापत्र मिला, जिससे यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि आपके शैक्षिक मुखपत्र 'हिन्दी प्रचार समाचार' का आगामी जुलाई-अंक '**प्रेमचंद-स्मृति-अंक**' के रूप में निकालने का निर्णय हुआ है और साथ ही 31 जुलाई को प्रेमचन्द जन्मशती समारोह का भी आयोजन हो रहा है।

प्रेमचंद हिन्दी के कदाचित् पहले आदमी थे जो दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार के सदर्भ में पहुँचे थे और जिन्होंने बाद में भारतीय साहित्य परिषद् के मुखपत्र 'हंस' के माध्यम से उत्तर भारत और दक्षिण भारत को एक संपर्क-सूत्र में बाँधा था और समस्त भारत की भावात्मक एकता के लिए काम किया था। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आज अधिकाधिक लोगों का ध्यान इस चीज़ की ज़रूरत की तरफ़ जा रहा है। देश को समर्पित लेखक सारे देश का ही होता है, किसी एक भौगोलिक अंचल का नहीं। इस नाते प्रेमचन्द आपके भी उतने ही अपने हैं जितने उत्तर भारत के या हिन्दी के। सच तो यह है कि प्रेमचन्द जन्मशती का जितना सच्चा उत्साह अहिन्दी प्रदेशों में देखने में आ रहा है, उतना हिन्दी क्षेत्रों में नहीं। कृपया अपने समारोह की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ स्वीकार करें।

विनीत

दि. 16 जून, 1980

अमृत राय

18, न्याय मार्ग, इलाहाबाद

(हिन्दी के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार, सुचिन्तक तथा प्रेमचन्द के सुपुत्र)

सभा के प्रिय मददगार मुंशी प्रेमचंद

डॉ. मोटूरि सत्यनारायणजी से भेंटवार्ता

बाहर गरमी की मौसमी हवा शाम का इंतज़ार बेताबी से करा रही है। अडैयार, गांधी नगर, मद्रास महानगर के खुशहाल बौद्धिक और आर्थिक अभिजात वर्ग का संभ्रान्त मुहल्ला। राष्ट्रीयता व राष्ट्रभाषा के दक्षिणी कर्णधार डॉ. मोटूरि सत्यनारायण का आवास 'सूर्य निकुंज' इसी मुहल्ले में है। सामने बंगालखाड़ी का मुहाना। ठंडी बयार रह-रहकर महसूसी जाती है। सामने सुदूर तक खुली जगह। पारिवेशिक सौम्यता का असर व्यक्तित्व पर कमोबेश प्रतिछायित हुए बगैर न रहता।

मोटूरिजी की बतर्ज "बोलो, क्या बात है?" की स्नेहोक्ति संवाद की उत्कंठा बढ़ा देती है। यह तयशुदा मुलाकात दीबाचे की गरज नहीं रखती। पहला प्रश्न पेश करता हूँ—"प्रेमचंदजी का हूबहू परिचय आपको कबसे और किस तरह हुआ?"

सत्यनारायणजी का बोलना अब शुरू हुआ—"बापूजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का जो स्वरूप पसंद किया, उसका जीवन्त उदाहरण मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं में पाया गया। इसलिए प्रेमचन्द की कहानियाँ व उपन्यास सभा के पाठ्य क्रम में नियत किये गये। प्रेमचन्द के साहित्य की हिन्दी विद्यार्थियों के बीच में माँग बढ़ी और साथ ही उनके प्रति श्रद्धा भी।

"1933 में राष्ट्रीय मैत्री माला के रूप में एक शिष्ट मंडल सभा की ओर से उत्तर भारत में परिभ्रमण करने निकला। इसमें सब के सब हिन्दी प्रचारक थे। इस दल का मैं अध्यक्ष रहा। हमारी राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रभाषा के प्रति लगन की सर्वत्र प्रशंसा हुई। इस दौरान हम बनारस जा पहुँचे। वहाँ के सांस्कृतिक, साहित्यिक संगठनों ने हमारा भव्य स्वागत किया। वहीं एक स्वागत-सभा मुंशी

प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुई। उनसे प्रत्यक्ष परिचय हमें वहीं हुआ। उन्होंने हमारी सेवानिष्ठा की खूब तारीफ़ की और हमसे प्रभावित होकर स्वयं भी इस राष्ट्रभाषा-आंदोलन में तीव्रता के साथ सक्रिय होने का निर्णय लिया। उन्होंने ख़ास तौर से यह ज़िक्र किया, "मैं सत्यनारायणजी के हिन्दी भाषण से बहुत प्रभावित हूँ। सुदूर दक्षिण के इस हिन्दीप्रेमी व हिन्दीसेवी की लगन और राष्ट्रीय चेतना हम लोगों के लिए अनुकरणीय है,..."

मेरा दूसरा प्रश्न था, "सभा के विकास में प्रेमचन्दजी का योगदान क्या रहा, और वे सभा के कार्यकलापों से किस हद तक प्रभावित हुए?"

मोटूरिजी आगे बोले, "राष्ट्रभाषा के आंदोलन में प्रेमचंद के अनुदान के प्रति अगर मुझे संक्षेप में कहना हो, तो यही कहना चाहूँगा—अगर वे हिन्दी में लिखना शुरू न करते और उनका प्रकाशित साहित्य हिन्दी में उपलब्ध नहीं होता, तो हिन्दी प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता।

"भाषा का प्रचार महज़ बोलचाल की भाषा सिखाने से ही नहीं बढ़ता। जिस भाषा का प्रचार करना हो, उसका साहित्य, भावना, विचार, शैली की परिपक्वता की दृष्टि से उत्तम न मिले और वह समसामयिक न हो, तो भाषा-प्रचार संभव नहीं। भाषा सीखनेवाले विद्यार्थी की रुचि बनी रहे और बढ़ती रहे। संयोग और सौभाग्य की बात है कि हमें प्रेमचन्दजी का साहित्य हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बंबई के द्वारा प्राप्त हुआ। उसे हमने अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया। अब भी मुझे याद है कि पढ़नेवाले और पढ़ानेवाले दोनों को 'सप्तसरोज', 'नवनिधि' की कहानियों में कितना लुत्फ़ आता था और उनकी मुहावरेदार भाषा कितनी मंजी हुई व मोहक होती थी। इन दोनों कहानी-संग्रहों ने हज़ारों स्त्री-पुरुषों को प्रेमचन्दजी का भक्त बनाया। हिन्दी का खंभा दक्षिण में—निस्संकोच कहा जा सकता है—बहुत मज़बूत गाड़ा था प्रेमचन्द ने।

"प्रेमचन्दजी को 1934 दिसंबर में सभा के पदवीदान समारोह में दीक्षान्त भाषण देने तथा प्रचारक सम्मेलन में भाग लेने हम लोगों ने आमंत्रित किया। वे सपत्नीक यहाँ पधारे। चार-पाँच दिन यहाँ ठहरे। सभा के कार्यकलापों से परिचित हुए। वे हमारे विचारों और सेवारीति से प्रसन्न होकर मेरे नाम एक पत्र में लिखा था, 'सभा के पाठ्यक्रम में मेरी रचनाओं का उपयोग आप स्वेच्छा से कर सकते हैं। मुझे किसी प्रकार की रायल्टी या सम्मानिक रक़म अदा करने की ज़रूरत नहीं।' उसके बाद दक्षिण से जो भी हिन्दी प्रचारक उनसे मिलने जाते, बड़े स्नेह से स्वागत करते, सभा के कार्य-विस्तार के बारे में जानने को उत्सुक रहते।"

मेरा प्रश्न, "आदरणीय सत्यनारायणजी, सभा के पदवीदान समारोह में सर्वप्रथम एक साहित्यकार को बुलाने का श्रेय आपको है। इस पहल की प्रासंगिकता पर आपसे कुछ जानना चाहता हूँ।"

उनका जवाब था—"राष्ट्रभाषा के आंदोलन में हमारे हमसफ़र की हैसियत से प्रेमचन्द के साथ हमारा आत्मीय संबंध रहा। राष्ट्रभाषा सम्मेलनों में जो इलाहाबाद, बंबई, लखनऊ आदि शहरों में चलाये जाते थे, प्रेमचन्द ने हमारी सभा के सेवा-संकल्प की मिसाल देकर खुले दिल से तारीफ़ की। उस समय एक राष्ट्रीयचेता व राष्ट्रभाषा-सेवी साहित्यकार की सूरत में प्रेमचंद का नाम प्रशस्त रहा। दक्षिण में हमारे परीक्षार्थी उनके प्रिय पाठक रहे। प्रेमचन्द-साहित्य की लोकप्रियता दक्षिण में खूब बढ़ने लगी। स्वाभाविक है, उनके दर्शन की उत्सुकता भी प्रचारकों व छात्रों में प्रबल रही। 1934 में दीक्षान्त भाषण देने एक प्रमुख व्यक्ति की खोज हो रही थी। सहज ही हमारा ध्यान प्रेमचन्द की तरफ़ गया। भाई स्व. देवदास गांधी ने भी इसमें मदद दी। हमारा निमंत्रण पाकर प्रेमचन्दजी सपत्नीक मद्रास आये। उनके साथ हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर के मालिक श्री नाथूराम प्रेमी, हमारे उत्साही प्रचारक श्री शंकरन जो बंबई में हिन्दी प्रचार की सेवा में लगे हुए थे, आये थे। 28 दिसंबर 1934 को वे मद्रास आ पहुँचे।

"मद्रास में उन लोगों को श्री रामनाथ गोयंका ('इण्डियन एक्सप्रेस' के मालिक) के यहाँ ठहराया गया। गोयंकाजी सभा के प्रमुख सहयोगी थे। अगले दिन पदवीदान समारोह गोखले हाल में सम्पन्न हुआ। प्रेमचन्द ने दीक्षान्त भाषण में अंग्रेजी-मोह, हिन्दी-उर्दु विवाद, राष्ट्रीय एकता, हिन्दी प्रचारकों की महत्वपूर्ण भूमिका आदि बातों पर प्रकाश डाला था। हमारे प्रचारक और छात्र-छात्राएँ उनसे मिलकर, परिचर्चा कर बेहद खुश हुए।"

मेरा अगला प्रश्न था, "क्या उस ज़माने में प्रेमचंद को छोड़कर और कोई लेखक या साहित्यकार सभा के अनुकूल नहीं मिले? प्रेमचन्द का कैसा व्यक्तित्व था जो आपको आकर्षित कर सका?"

श्री सत्यनारायणजी ने भूमिका बाँधते हुए जवाब दिया, "1920-21 तथा उसके कुछ वर्ष बाद तक जो साहित्य पढने-पढाने को हिन्दी में मिलता था, वह या तो उर्दू-अरबी-फ़ारसी से बोझिल होता था या सस्ता होता था, जैसे तिलिस्मा, जादू-टोना, परियों-अप्सराओं की कहानियाँ होती थीं या धार्मिक साहित्य मिलता था। वह युग ऐसा था जब राष्ट्रीयता की भावना ज़ोर से फूट रही थी,

समाजसुधार, राष्ट्रीय उन्नति, गुलामी तोड़ने की तमन्ना हर जगह पायी जाती थीं। लोग धर्म की दुनिया से समाज तथा सामाजिक कार्यकलापों पर उतर आये। कहानियों से लेकर उपन्यासों तक आगे बढ़ते-बढ़ते प्रेमचन्द ने अपनी कलम की ताकत की परीक्षा दी। वह सफलता में बेजोड़ कही जा सकती। लेखक के तौर पर प्रकाश में आने के बाद वे मुश्किल से अठारह साल जिये होंगे। लेकिन हिन्दी साहित्य पर इतनी कम कालावधि में अपनी अमिट छाप छोड़ गये—साधना में, मूल्य में, स्थायित्व में। इसलिए प्रेमचंद के टक्कर का लोकप्रिय, राष्ट्रीयता प्रेमी, राष्ट्रभाषासेवी, सफल साहित्यकार उस ज़माने में और कोई न रहा।

"साथ ही, प्रेमचन्दजी स्वभावत: भोले-भोले व्यक्ति हैं। दिखावटीपन उन्हें छू तक नहीं गया। मुझसे बातचीत करते समय उनकी प्रतिभा, वैचारिक गहराई, विद्वत्ता के आक्रमण का डर नहीं होता था। जब वे बोलते थे, साहित्यक ही नहीं मालूम होते थे। बोलचाल में घरेलूपन, लहजे में आंचलिकता, वेशभूषा में देहातीपन, रहन-सहन में बेहद सादगी बरते थे। सभा के दीक्षान्त भाषण में हमारे प्रचारकों को संबोधित करते हुए व्यक्त किया गया उनका यह उद्‍गार मुझे बहुत प्रभावित कर सका—'यह समझ लीजिये कि जिस दिन आप अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जायेंगे। ..राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की अपनी भाषा है। आप उसी राष्ट्रभाषा के भिक्षु हैं और इस नाते आप राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं, आप बिखरी हुई कौम को मिला रहे हैं, आप हमारे बंधुत्व की सीमाओं को फैला रहे हैं, भूले हुए भाइयों को गले मिला रहे हैं,...'

हमारे प्रचारक भाइयों को इस क़दर अपनापा दर्शानेवाला साहित्यकार और कोई नहीं रहा। इसलिए उनके साथ हमारी आत्मीयता सहज सिद्ध हुई।"

सत्यनारायणजी को दूसरे महत्वपूर्ण कार्य पर ध्यान देने का तकाजा आ गया है। तिरुवनन्तपुरम विश्व-विद्यालय के द्रविड़ भाषा शोध संकाय के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर साहब की चिट्ठी आयी है। वे दक्षिणी भाषाओं के प्रयोजनमूलक कार्यान्वयन पर श्री मोटूरिजी का परामर्श चाहते हैं, ठोस योजना का प्रारूप भी माँगते हैं।

मैं साभिवादन विदा लेता हूँ।

[भेंटकर्ता : 'दक्षिणापथी']

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का आदान-प्रदान

श्री पी. वी. नरसिंह राव

(सभा के प्रथम उपाध्यक्ष, विदेश मंत्री, भारत सरकार तथा प्रशस्त लेखक)

भारतीय मनीषा, हमारी चिन्तनधारा, हमारा इतिहास एक है और हमारी एकसूत्रता हज़ारों वर्षों से अबाध, अविच्छिन्न चली आ रही है। गंगा का

पानी चाहे जिस क्षेत्र में बहे, चाहे, जहाँ रहे, उसकी सुचिता और गुण-सम्पन्नता एक ही रहती है। ठीक उसी प्रकार चाहे हम अपनी भावनाओं को किसी भी भाषा में अभिव्यक्त करें, हमारी भावनाएँ मूलत: एक हैं, उनका आवरण भिन्न हो सकता है। भाषा तो विचारों की संवाहिका है और जिस तरह विभिन्न वेषभूषा में यहाँ बैठे हम सभी भारतीय हैं, उसी प्रकार चाहे जिस भाषा में भी हम अपने भावों को अभिव्यक्त करें, विचार तो हमारे भारतीय ही होंगे।

हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार-कार्य के साथ बहुत वर्षों से मैं भी जुड़ा रहा हूँ और मेरी यह धारणा है कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच कहीं कोई दुराव नहीं है। यदि कहीं कोई दुराव या मतभेद हैं भी तो वे क्षणिक हैं। गांधीजी ने आज से पचास वर्ष पूर्व कहा था कि भारत की भगिनी भाषाओं के बीच किसी प्रकार की स्पर्धा हानिकारक है और जिस तरह एक भाई अपनी अनेक बहनों को एक साथ लाड़-प्यार देता है, हम अपने देश की सभी भाषाओं को उसी तरह लाड़-प्यार दें। भारतीय भाषाओं को यदि हम समुचित स्थान नहीं देंगे, तो हम अपनी मातृभाषा को भूल जायेंगे और मातृभाषा के साथ-साथ राष्ट्रीय अस्मिता से वंचित हो जायेंगे। ..

साहित्य के विभिन्न विधाओं में कविता, कहानी, नाटक और उपन्यासों में भारत का वह रूप प्रतिबिम्बित होता है, जिसमें गंगा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा,

यमुना, नर्मदा का सलिल प्रवाह और हिमालय तथा विंध्याचल की धड़कनें प्रतिध्वनित हैं। इन कृतियों की रचनाओं से हमें यह बोध होता है कि हमारा देश कितना महान है और हमें यह भी अहसास होता है कि हमारी सभी भाषाएँ भारतीय वाङ्मय की गौरवपूर्ण निधि हैं।

मेरी यह मान्यता है कि साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान सदियों से हमारे बीच—अर्थात्, हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच होता रहा है और हिन्दी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में हिन्दीतर भाषी हिन्दी प्रेमियों का योगदान भी महत्वपूर्ण माना गया है। हमारे देश के इतिहास में 13-वीं से 16-वीं सदी के बीच सभी भारतीय भाषाओं में भक्ति साहित्य का स्वर प्रमुख रहा है। यह सुखद आश्चर्य का विषय है कि भक्ति साहित्य, चाहे वे किसी क्षेत्र या भाषा-विशेष में रचा गया हो; किन्तु वह पहुँच गया देश के कोने-कोने में, सगुण भक्ति हो या निर्गुण भक्ति—दोनों परम्पराओं की धाराएं पूरी भारत भूमि को सिंचित करती रही हैं, और आज भी इस आदान-प्रदान के क्रम में कोई व्यतिक्रम नहीं आया है। मुझे मालूम है कि संस्कृत, उर्दू, मलयालम, तेलुगु, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी, जर्मन आदि अनेक विदेशी भाषाओं से भी पुस्तकें प्रचुर मात्रा में अनूदित होकर हिन्दी में आयी हैं और स्वतंत्रता के बाद यह कार्य आगे बढ़ा है।

भारतीय भाषाओं के गौरवग्रन्थों एवं उत्कृष्ट साहित्य के पारस्परिक आदान-प्रदान में हिन्दी ने केन्द्रीय भूमिका निभायी है। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में हिन्दी भाषा को जो महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया, उसके परिणाम स्वरूप भारत की सभी भाषाओं के साहित्य हिन्दी के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हुए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरदचन्द्र, बंकिमचन्द्र, प्रेमचन्द आदि सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की रचनाएँ दक्षिण की चारों भाषाओं में प्रस्तुत की गयी हैं। इसी प्रकार सुब्रह्मण्य भारती, वल्लत्तोल, जी. शंकर कुरुप, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि साहित्यकारों की कृतियाँ भारत के अन्य प्रदेशों के पाठकों के लिए उनकी अपनी भाषाओं में सुलभ हो सकीं। किसी भी देश की साहित्यिक उपलब्धि को केन्द्रित करने में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ख़ासकर भारत-जैसे देश में जहाँ सभी भाषाओं की परम्परा अत्यधिक गौरवशाली रही है और हर क्षेत्र की अपनी अलग विशिष्टता है। साहित्यिक आदान-प्रदान से भारत की विभिन्न भाषाओं के पाठक अपनी राष्ट्रीय गरिमा एवं संस्कृति के प्रति एकात्मभाव का अनुभव करते हैं।

संस्कृत के गौरवग्रन्थों का अनुवाद प्रत्येक भारतीय भाषा में पहले से ही उपलब्ध रहा है। भारतीय भाषाओं के अनेक काव्य-ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में हो चुका है। इस दिशा में साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास आदि संस्थाओं ने श्लाघ्य सेवा की है और करती आ रही हैं। इसके द्वारा नूतन-पुरातन साहित्य की कृतियों के रूपान्तर प्रस्तुत किये गये हैं। प्रमुख भारतीय पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा भारत की सभी भाषाओं की प्रतिनिधि एवं श्रेष्ठ कहानियाँ हिन्दी में पहले से ही उपलब्ध हैं।

इसी प्रकार आधुनिक रंगमंच के विकास से भाषायी आदान-प्रदान को काफ़ी बल मिला है। बंगला, तमिल, मराठी, तेलुगु, मलयालम आदि के प्रतिनिधि नाटक राजधानी तथा भारत के अन्य महा नगरों में समय-समय पर प्रस्तुत किये जाते हैं। हिन्दी में से भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश आदि की नाट्यकृतियाँ विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं और मंचित भी हुई हैं।

महाकवि तुलसीदास, सूरदास, बिहारी, भारतेन्दु आदि की रचनाओं के अतिरिक्त, कई आधुनिक कवियों की रचनाएँ भी भारत की अधिकांश भाषाओं में अनूदित हुई हैं।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की रचनाएँ तो वस्तुतः भारतीय पाठकों के बीच सबल संवाद स्थापित करती हैं और जिन सम-सामयिक समस्याओं को उन्होंने अपने उपन्यासों, कहानियों के माध्यम से चित्रित किया था, उससे देश-भर के साहित्यकार प्रभावित होकर अपनी-अपनी भाषाओं में साहित्य-सृजन करते रहे हैं। इस समय भारतीय भाषाओं की विभिन्न पत्रिकाएँ भी पारस्परिक साहित्यिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई हमारी सभी भाषाओं के बीच एक-दूसरे से आदान-प्रदान की परम्परा रही है। सभी भाषाओं में हमारी प्राचीन संस्कृति के स्वर बोलते हैं, सभी भाषाओं में पहले विदेशी शासन से मुक्ति के लिए संघर्ष के स्वर गूंजे थे और आज भी विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष के स्वर सभी भाषाओं के साहित्य में मुखरित हो रहे हैं। हमारा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिवेश इस पारस्परिक आदान-प्रदान और समन्वय पर ही आधारित है। हमारी सामान्य आस्थाओं ने और सामान्य सांस्कृतिक देववाणी संस्कृत ने यह आदान-प्रदान सुलभ कराया। देश के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में जो आदान-प्रदान सहज सुलभ हैं, वह ज्ञान के क्षेत्र में भी होना चाहिए।

आदान-प्रदान का यह निर्बन्ध क्रम प्रकाशन के क्षेत्र में भी चले। भाषाएँ आदान-प्रदान से विकसित होती हैं। हमारी भाषाएँ ही नहीं, विदेशी भाषाएँ भी इस तथ्य के जीवन्त उदाहरण हैं। वैसा ही आदान-प्रदान प्रकाशन के क्षेत्र में भी अपेक्षित है। जो एकता और दृढ़ता हमें साहित्य दे सकता है, वह किसी और साधन से संभव नहीं है। यह किसी संकट के समय की, किसी अवसर विशेष की, आवेश की एकता नहीं होगी। यह एकता आत्मिक होगी जो अक्षर स्वरों के सूक्ष्म सूत्रों से हमें स्थायी स्नेह और सौहार्द के बंधनों में बाँधेगी।

[चतुर्थ विश्व पुस्तक मेला 1980 के अवसर पर आयोजित विचार-गोष्ठी में किया गया उद्घाटन-भाषण]

प्रेमचंद : मधुर संस्मरण

श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या

दक्षिण भारत में आंध्र, तमिल, केरल व कर्नाटक प्रान्तों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करने महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से मद्रास में सन् 1918 में हिन्दी प्रचार साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का शाखा-कार्यालय खोला गया। वह शाखा-कार्यालय ही आगे चलकर सन् 1927 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के नाम से परिवर्तित हुआ। श्री प्रेमचंद का संबंध इस सभा से प्रारंभ से ही था। प्रेमचंद की रचनाएँ, कहानियाँ, उपन्यास आदि को सभा अपनी परीक्षाओं के पाठ्य पुस्तकों में रखती आयी है। प्रारंभ काल में प्राथमिक परीक्षाओं में 'साप्तसरोज' कहानी-संग्रह और उच्च परीक्षाओं की पाठ्य पुस्ताकों में 'सेवा सदन' उपन्यास पाठस पुस्तक में था। उस जमाने में यानी 1920-22 में स्वराज्य-प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी द्वारा शुरू किया गया असहयोग आंदान जोरों से चलता था। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर दक्षिण भारत के चारों प्रान्तों में बाल, युवक वृद्ध स्त्री-पुरुष लोग जो विद्यार्थी, अध्यापक, डाक्टर, व्यापारी वकील, राजनैतिक नेता सब श्रेणियों के लोग ऐच्छिक रूप से श्रद्धा के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी सीखते थे। सब स्तर के लोग प्रेमचंद की रचनाएँ बड़ी दिलचस्पी से पढ़ते थे। इस तरह दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा दक्षिण भारत में प्रेमचंद का साहित्य बहुत लोकप्रिय हुआ। प्रेमचंदजी ने भी उदारता के साथ अपनी रचनायें प्रकाशित कर लेने की अनुमति सभा को देकर हिन्दी प्रचार की वृद्धि में बड़ी सहायता पहुँचायी। प्रेमचंद की कहानियाँ उपन्यास आदि रचनाओं का तेलुगु व अन्य प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। अतः हिन्दी न जाननेवाले दक्षिण भारतीयों में भी प्रेमचंद के साहित्य का बहुत प्रचार हुआ। प्रेमचंद की रचनायें राष्ट्रीय भावनाओं को जनता में जाग्रत करानेवाली हैं। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में राजनैतिक-सामाजिक कुरीतियों की कडी आलोचना की है।

श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या

प्रेमचंद और उन्नव लक्ष्मीनारायण

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद आन्ध्र प्रदेश के श्रेष्ठ उपन्यासकार श्री उन्नव लक्ष्मी नारायण की कई अंशों में तुलना की जा सकती है। दोनों उदार, सहृदय, प्रबुद्ध तथा प्रतिबद्ध साहित्यकार थे। सादगी और आदर्शमय जीवन बिताते थे। दोनों पूज्य महात्मा गांधी के अनुयायी थे। दोनों असहयोग आदोलन में अपने पद त्याग कर, सत्याग्रह-समर में भाग लेकर जेल गये, अनेक कष्ट सहे। एक ने स्कूल इन्स्पेक्टर की पदनी छोड़ दी, तो दूसरे ने बारिस्टर की पदवी त्याग दी। दोनों ने दीन-दुखियों के कष्ट दूर करने के लिए प्रयत्न किये। दोनों समाज-सुधारक थे। बालविधावाओं के उद्धार के लिए एक ने एक विधवा के साथ ब्याह कर लिया तो दूसरे ने कई बाल विधावाओं का पुर्नविवाह कराके समाज से बहिष्कृत होकर अनेक कष्ट सहे। दोनों की आर्थिक स्थिति संतोषजनक न होने से तंगी-तकलीफ़ें झेलीं। दोनों ने गरीबी को अपनाकर देशसेवा को अपने जीवन का ध्येय माना दोनों ने जीवन के अंत तक कठिन परिश्रम करके निरंतर साहित्य-सेवा की थी।

प्रेमचंद व उन्नव लक्ष्मी नारायण के सामाजिक उपन्यासों को पाठक बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं। प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास से लक्ष्मी नारायण का 'मालापल्लि' (अछूतों का मुहल्ला) उपन्यास की तुलना की जा सकती है। दोनों ने, ज्यादातर ग्रामीण जीवन बिताया। इसलिए ग्रामवासियों—किसान, मजदूर, जमींदार, साहुकार और अछूते लोगों के जीवन से वे बखूबी परिचित थे। ज़मींदारों व अमीरजादों के भोग-विलासमय स्वार्थी जीवन के भी वे चश्मदीद गवाह थे। उस शोषक वर्ग की उन्होंने अपनी रचनाओं में कड़ी आलोचना की। लक्ष्मी नारायण ने 'मालापल्लि' उपन्यास सरल व्यावहारिक भाषा में किसान, मज़दूर, हरिजन व ज़मींदार लोगों के जीवन का बारीकी से वर्णन किया है, जैसे कि प्रेमचंद ने गोदान में किया है। तेलुगु भाषा में 'मालपल्लि' उपन्यास अपने ढंग का अनुपम उपन्यास है। वे दोनों रचनाधर्मी जनवादी साहित्यकार और उनकी जीवन-सापेक्ष यथार्थवादी कृतियाँ अमर हैं।

यह मानना उचित होगा कि श्री उन्नव लक्ष्मी नारायण आंध्र प्रदेश के प्रेमचंद हैं और श्री प्रेमचंद हिन्दी के लक्ष्मी नारायण हैं।

प्रेमचंद से साक्षात्कार

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित हिन्दी प्रेमी यात्री दल श्री मोटूरि सत्यनारायण के नेतृत्व में सारे उत्तर भारत में तीन मास तक भ्रमण

करने के लिए मद्रास से सन् 1933 फरवरी के अंतिम सप्ताह में पूज्य महात्मा गांधी के आशीर्वाद लेकर रवाना हुआ था। इस दल के रवाना होने के पूर्व दिन मद्रास शहर के गोखले हाल में माननीय श्रीनिवास शास्त्री की अध्याक्षता में विदाई-सभा हुई। श्री विश्वदाता काशी नाथुनि नागेश्वरराव ने रेल स्टेशन तक आकर हमको विदा किया और रास्ते में खाने के लिये संतरे, केले, अंगूर आदि बढिया पाथेय प्रेमपूर्वक भेंट किया। कई महानुभावों ने उस समय हमपर जो प्रेम व वात्सल्य दिखाया उसको हम कभी नहीं भूलेंगे।

इस यात्रा का उद्देश्य ... उत्तर भारत के विभिन्न, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, साहित्यिक संस्थाओं के कार्य-कलापों से परिचय प्राप्त करना और दक्षिण भारत के चारों प्रान्तों के साहित्य व संस्कृति का परिचय उत्तर भारतीयों को देना था। साथ ही हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों में भ्रमण कर हिन्दी की विभिन्न शैलियों से परिचय प्राप्त करना भी हमारा उद्देश्य था। इस दल में दक्षिण भारत के चारों प्रान्तों के हिन्दी प्रेमी व प्रचारक करीब बीस-पचास थे। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि मैं भी उस दल में लिया गया था।

बड़े आनन्द की बात थी कि हम जहाँ-जहाँ गये, वहाँ की जनता और साहित्यकारों ने बड़े प्रेम व आदर के साथ हमारा स्वागत-सम्मान किया। इस यात्रा में हम उत्तर भारत के प्रायः सभी प्रमुख शहरों में—पूना, बंबई, दिल्ली, हरिद्वार, पटना, कानपूर, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता आदि गये और वहाँ के हिन्दी सेवियों व हिन्दी प्रेमियों से मिले। शान्तिनिकेतन जाकर विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भी मिले और उनके संदेश व आशीर्वाद पाये।

हम सन् 1933 अप्रैल पहले साप्ताह में बनारस पहुँचे। बनारस में श्री प्रेमचंद की अध्यक्षता में स्वागत-सभा हुई। उन्होंने हमारे दल का स्वागत करते हुए दक्षिण भारत में हिन्दी का हम जो प्रचार करते हैं, उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। राष्ट्रभाषा हिन्दी की शैली और स्वरूप का भी उन्होंने आपने भाषण में जिक्र किया। उन्होंने कहा, "राष्ट्रभाषा हिन्दी की शैली व स्वरूप का निर्माण अहिन्दी प्रान्तवासी ही—खास करके दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी हिन्दी सेवी ही करेंगे। उसको हमें अपनाना चाहिए।..."

स्वराज्य प्राप्ति के बाद सन् 1949 में संविधान में राजभाषा हिन्दी के रूप व शैली का जो निर्धारण किया गया था, उसकी परिकल्पना श्री प्रेमचंद ने 1933 में की थी। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में कहा, "ये भाई अपने भाषण में शायद

अपने प्रान्त के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करेंगे। उसे स्वीकार करने की क्षमता हममें होनी चाहिए।" लेकिन खेद की बात है कि आज भी बहुत-से हिन्दी लेखक व भाषाशास्त्री जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, राष्ट्रीय अंक तक स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं। दर्द के साथ यह कहना पड़ता है कि उनके अनुदार रवैये के कारण ही हिन्दीतर प्रान्तों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में बाधा पड़ती है। खैर……

स्वागत भाषण के बाद श्री मोटूरी सत्यनारायणजी का धारावाही, जानदार व मुहावरेदार भाषण सुनकर सब लोग मुग्ध हो गये। कई लोगों को यह विश्वास न हुआ कि श्री सत्यनारायणजी की मातृभाषा हिन्दी नहीं है और वे दाक्षिणात्य हैं, तेलुगुभाषी हैं।

उस स्वागत सभा के अंत में मेरे विनीत आग्रह पर श्री प्रेमचंद ने मेरी नोट-बुक में यों हस्ताक्षर करके दिया—धनपत राय (प्रेमचंद), सरस्वती प्रेस, बनारस।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास में—प्रेमचंद

सन् 1934 दिसंबर 29, 30, 31, तारिखों में द. भा. हिन्दी प्रचार सभा का पदवीदान समारोह, हिन्दी प्रचारकों का सम्मेलन आदि मद्रास सभा में हुए। सांस्कृतिक कार्यक्रम, नाटक प्रदर्शन भी हुए। श्री प्रेमचंद ने पदवीदान समारोह में दीक्षांत भाषण दिया। प्रचारकों की साहित्य-गोष्ठी में भाग लिया। उन सभाओं में आचार्य श्री काका कालेलकर ने भी भाग लिया। वे दो दिन प्रचारकों के बीच में उन दोनों महानुभावों से हिल-मिलकर बड़े आनंद से बीते। विभिन्न विषयों पर उनसे अनेक प्रश्न पूछे गये जिनका समाधान उन्होंने दिया। एक प्रचारक ने श्री प्रेमचंदजी से प्रार्थना की कि कृपया इस सम्मेलन व गोष्ठी के बारे में अभी आप एक कहानी लिख दें। प्रेमचन्द ने कहा कि तुरन्त कहानी नहीं लिखी जा सकती है। दो-चार वर्ष बाद ही कहानी लिखी जा सकेगी।

नाटक प्रदर्शन

सम्मेलन के अवसर पर नाटकों के प्रदर्शन हुए। उन नाटकों को देखकर प्रेमचंद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हमारी नाट्यकला की प्रशंसा करते हुए जो अभिनंदन-पत्र दिया उसको नीचे दिया जाता है—

"हिन्दी एसोसिएशन ने द. भा. हिन्दी प्रचार सभा के वार्षिकोत्सव पर जनता को 'दुर्गादास' नाटक और 'चंद्रगुप्त मौर्य' के चार सीन दिखाये। यद्यपि

एसोसिएशन ने पहले से विशेष तैयारी न कर पायी थी, फिर भी इन दृश्यों को देखकर मुझे ऐसा लगा कि हमारे यहाँ साधारणतः जो अमेच्योर लोग ड्रामे खेलते हैं, उनकी अपेक्षा इन लोगों के अभिनय में कुछ स्वाभाविकता ज्यादा थी। उच्चारण तो जैसा चाहिए वैसा न था, लेकिन अभ्यास से यह ऐब दूर हो सकता है। और लोगों के ऐक्टिंग में तो खूबी थी ही, लेकिन श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या ने चाणक्य का जो पार्ट खेला, वह इतना स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी था कि मैं उसे देखकर मुग्ध हो गया। जहाँ जिस तरह के भावप्रदर्शन की जरूरत थी, वहाँ उन्होंने वैसा ही किया। ऐसे व्यक्ति का जो पारिवारिक और वैयक्तिक विपत्तियों से ईश्वर, सत्य और धर्म में अपना विश्वास खो चुका हो और जिसकी आत्मा प्रतिशोध के लिए तडप रही हो, उसका इतना सुन्दर चित्रण करने पर मैं आपको बधाई देता हूँ।

मद्रास, (ह०) **प्रेमचंद**

1 जनवरी, 1935

" अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे, और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगा कि ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेज महाजनों की धन-लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं; उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं? कम से कम मेरे लिए स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाये। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहता हूँ जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके।"

['आहुति' कहानी (1930) में]

-प्रेमचन्द

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी

[यह भाषण-अंश उस महान राष्ट्रवादी व तपस्वी साहित्यकार का है, जिसके जनवादी साहित्य से हिन्दी पाठक बखूबी परिचित हैं। यह भाषण कई मुद्दों से महत्वपूर्ण है। एक तो यह हमारी सभा के चौथे वार्षिक पदवीदान-समारंभ में (29 दिसंबर, 1934) प्रेमचंद के द्वारा दिया गया दीक्षांत भाषण है; दूसरा, इसी मंच पर सभा से, हिन्दी प्रचार कार्य से संबद्ध सभी कार्यकर्ताओं, प्रचारकों को संबोधित करते हुए दिया गया भाषण था; साथ ही, तत्कालीन राष्ट्रीय बोध एवं राष्ट्रीय माँग पर व्यक्त किया गया उद्गार भी था। आज के संदर्भ में भी प्रेमचन्दजी के ये विचार उतने ही सार्थक, प्रासंगिक और उद्बोधक साबित होते हैं, जितने 46 साल पहले थे।]

मुंशी प्रेमचंद

प्यारे मित्रो,

आपने मुझे जो यह सम्मान दिया है, उसके लिए मैं आपको सौ ज़बानों से धन्यवाद देना चाहता हूँ; क्योंकि आपने मुझे वह चीज दी है, जिसके मैं बिलकुल अयोग्य हूँ। न मैंने हिन्दी-साहित्य पढ़ा है, न उसका इतिहास पढ़ा है, न उसके विकासक्रम के बारे में ही कुछ जानता हूँ। ऐसा आदमी इतना मान पाकर फूला न समाये, तो वह आदमी नहीं है। नेवता पाकर मैंने उसे तुरन्त स्वीकार किया। लोगों में 'मन भाये और मुँड़िया हिलाये' की जो आदत होती है, वह खतरा मैं न लेना चाहता था। यह मेरी ढिठाई है कि मैं यहाँ वह काम करने खड़ा हुआ हूँ, जिसकी मुझमें लियाकत नहीं है; लेकिन इस तरह की गंदुमनुमाई का मैं अकेला मुजरिम नहीं हूँ। मेरे भाई घर-घर में, गली-गली में मिलेंगे। आपको तो अपने नेवते की लाज रखनी है। मैं जो कुछ अनाप-शनाप बकूँ, उसकी खूब तारीफ़

कीजिये, उसमें जो अर्थ न हो वह पैदा कीजिये, उसमें अध्यात्म के और साहित्य के तत्व खोज निकालिए—जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ !

आपकी सभा ने पन्द्रह-सोलह साल के मुख्तसर-से समय में जो काम कर दिखलाया है, उस पर मैं आपको बधाई देता हूँ। खासकर इसलिए कि आपने अपनी ही कोशिशों से यह नतीजा हासिल किया है। सरकारी इमदाद का मुँह नहीं ताका। यह आपके हौसलों की बुलन्दी की एक मिसाल है। अगर मैं यह कहूँ कि आप भारत के दिमाग हैं, तो वह मुबालगा न होगा। किसी अन्य प्रान्त में इतना अच्छा संगठन हो सकता है और इतने अच्छे कार्यकर्ता मिल सकते हैं, इसमें मुझे सन्देह है। जिन दिमागों ने अंग्रेजी राज्य की जड़ जमायी, जिन्होंने अंग्रेज़ी भाषा का सिक्का जमाया, जो अंग्रेज़ी आचार-विचार में भारत में अग्रगण्य थे और हैं, वे लोग राष्ट्र-भाषा के उत्थान पर कमर बाँध लें, तो क्या कुछ नहीं कर सकते? और यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है कि जिन दिमागों ने एक दिन विदेशी भाषा में निपुण होना अपना ध्येय बनाया था, वे आज राष्ट्रभाषा का उद्धार करने पर कमर कसे नज़र आते हैं और जहाँ से मानसिक पराधीनता की लहर उठी थी, वहाँ से राष्ट्रीयता की तरंगें उठ रही हैं। जिन लोगों ने अंग्रेज़ी लिखने और बोलने में अंग्रेज़ों को भी मात कर दिया, यहाँ तक कि आज जहाँ कहीं देखिये अंग्रेज़ी पत्रों के सम्पादक इसी प्रान्त के विद्वान मिलेंगे, वे अगर चाहें तो हिन्दी बोलने और लिखने में हिन्दीवालों को भी मात कर सकते हैं। और गत वर्ष यात्रीदल के नेताओं के भाषण सुनकर मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि वह क्रिया शुरू हो गयी है। 'हिन्दी प्रचारक' में अधिकांश लेख आप लोगों ही के लिखे होते हैं और उनकी मंजी हुई भाषा और सफाई और प्रवाह पर हममें से बहुतों को रश्क आता है। और यह तब है जब राष्ट्र-भाषा प्रेम अभी दिलों के ऊपरी भाग तक ही पहुँचा है, और आज भी यह प्रान्त अंग्रेज़ी भाषा के प्रभुत्व से मुक्त होना नहीं चाहता। जब यह प्रेम दिलों में व्याप्त हो जायगा, उस वक्त उसकी गति कितनी तेज़ होगी, इसका कौन अनुमान कर सकता है? हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व है।...

लेकिन मित्रो, विदेशी भाषा सीखकर अपने गरीब भाइयों पर रोब जमाने के दिन बड़ी तेज़ी से विदा होते जा रहे हैं। प्रतिभा का और बुद्धिबल का जो दुरुपयोग हम सदियों से करते आये हैं, जिसके बल पर हमने अपनी एक अमीरशाही स्थापित कर ली है, और अपने को साधारण जनता से अलग कर लिया है, वह अवस्था अब बदलती जा रही है। बुद्धिबल ईश्वर की देन है, और उसका धर्म प्रजा पर धौंस जमाना नहीं, उसका खून चूसना नहीं, उसकी सेवा करना है।..

मानो परिस्थिति ऐसी है कि बिना अंग्रेज़ी भाषा की उपासना किये काम नहीं चल सकता। लेकिन अब तो इतने दिनों के तजुरबे के बाद मालूम हो जाना चाहिए कि इस नाव पर बैठकर हम पार नहीं लग सकते, फिर हम क्यों आज भी उसीसे चिपटे हुए हैं? अभी गत वर्ष एक इंटरयूनिवर्सिटी कमीशन बैठा था कि शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर विचार करे। उसमें एक प्रस्ताव यह भी था कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी की जगह पर मातृभाषा क्यों न रखी जाय। बहुमत ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, क्यों? इसलिए कि अंग्रेज़ी माध्यम के बगैर अंग्रेज़ी में हमारे बच्चे कच्चे रह जायेंगे और अच्छी अंग्रेज़ी लिखने और बोलने में समर्थ न होंगे। मगर इन डेढ़ सौ वर्षों का घोर तपस्या के बाद आज तक भारत ने एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखा, जिसका इंगलैण्ड में उतना भी मान होता, जितना एक तीसरे दर्जे के अंग्रेज़ी लेखक का होता है। याद नहीं, पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने कहा था, या सर तेजबहादुर सप्रू ने, कि पचास साल तक अंग्रेज़ी से सिर मारने के बाद आज भी उन्हें अंग्रेज़ी में बोलते वक्त यह संशय होता रहता है कि कहीं उनसे गलती तो नहीं हो गयी! हम आंखें फोड़-फोड़कर और कमर तोड़-तोड़कर और वक्त जला-जलाकर अंग्रेज़ी का अभ्यास करते हैं, उसके मुहावरे रटते हैं; लेकिन बड़े से बड़े भारती साधक की रचना विद्यार्थियों की स्कूली एक्सरसाइज़ से ज़्यादा महत्व नहीं रखती। शिक्षा का अंग्रेज़ी माध्यम जरूरी है, यह हमारे विद्वानों की राय है। जापान, चीन और ईरान में तो शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी नहीं है। फिर भी वे सभ्यता की हरेक बात में हमसे कोसों आगे हैं, लेकिन अंग्रेज़ी माध्यम के बगैर हमारी नाव डूब जाती!

मित्रो, शायद मैं अपने विषय से बहक गया हूँ; लेकिन मेरा आशय केवल यह है कि हमें मालूम हो जाय, हमारे सामने कितना महान काम है। यह समझ लीजिये कि जिस दिन आप अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जाएँगे। मुझे याद नहीं आता कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त कर सका हो। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है; नदी, पहाड़, समुद्र और वन राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बन्धन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रहती है, और उसका शीराजा बिखरने नहीं देती। जिस वक्त अंग्रेज़ आये, भारत की राष्ट्रभावना लुप्त हो चुकी थी। यों कहिये कि उसमें राजनैतिक चेतना की गंध तक न रह गयी थी। अंग्रेजी राज ने आकर आपको एक राष्ट्र बना दिया। आज अंग्रेज़ी राज बिदा हो जाय—और एक न एक दिन तो यह होना ही है—तो फिर आपका यह राष्ट्र कहाँ जायेगा? क्या यह बहुत संभव नहीं है कि एक-एक प्रान्त एक-एक राज्य हो जाय और

फिर वही विच्छेद शुरू हो जाय? वर्तमान दशा में तो हमारी कौमी चेतना को सजग और सजीव रखने के लिए अंग्रेजी राज को अमर रहना चाहिए। अगर हम एक राष्ट्र बनकर अपने स्वराज्य के लिए उद्योग करना चाहते हैं, तो हमें राष्ट्रभाषा का आश्रय लेना होगा और उसी राष्ट्र-भाषा के बख्तर से हम अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकेंगे। आप उसी राष्ट्र-भाषा के भिक्षु हैं, और इस नाते आप राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं। सोचिये, आप कितना महान् काम करने जा रहे हैं। आप कानूनी बाल की खाल निकालनेवाले वकील नहीं बना रहे हैं, आप शासन-मिल के मजदूर नहीं बना रहे हैं, आप एक बिखरी हुई कौम को मिला रहे हैं, आप हमारे बन्धुत्व की सीमाओं को फैला रहे हैं, भूले हुए भाइयों को गले मिला रहे हैं। इस काम की पवित्रता और गौरव को देखते हुए, कोई ऐसा कष्ट नहीं है, जिसका आप स्वागत न कर सकें। यह धन का मार्ग नहीं है, संभव है कि कीर्ति का मार्ग भी न हो; लेकिन आपके आत्मिक संतोष के लिए इससे बेहतर काम नहीं हो सकता। यही आपके बलिदान का मूल्य है। मुझे आशा है, यह आदर्श हमेशा आपके सामने रहेगा। आदर्श का महत्व आप खूब समझते हैं। वह हमारे रुकते हुए कदम को आगे बढ़ाता है, हमारे दिलों से संशय और सन्देह की छाया को मिटाता है और कठिनाइयों में हमें साहस देता है।

राष्ट्र-भाषा से हमारा क्या आशय है, इसके विषय में भी मैं आपसे दो शब्द कहूँगा। इसे हिन्दी कहिए, हिन्दुस्तानी कहिए, या उर्दू कहिए, चीज़ एक है। नाम से हमारी कोई बहस नहीं। ईश्वर भी वही है, जो खुदा है, और राष्ट्र-भाषा में दोनों के लिए समान रूप से सम्मान का स्थान मिलना चाहिए। अगर हमारे देश में ऐसे लोगों की काफ़ी तादाद निकल आये तो, जो ईश्वर को 'गाड' कहते हैं, तो राष्ट्र-भाषा उनका भी स्वागत करेगी। जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बढ़ती रहती है।...

अब हमें यह विचार करना है कि राष्ट्रभाषा का प्रचार कैसे बढ़े। अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि हमारे नेताओं ने इस तरफ़ मुजरिमाना गफलत दिखायी है। वे अभी तक इसी भ्रम में पड़े हुए हैं कि यह कोई बहुत छोटा-मोटा विषय है, जो छोटे-मोटे आदमियों के करने का है, और उनके जैसे बड़े-बड़े आदमियों को इतनी कहाँ फुरसत कि वह झंझट में पड़ें। उन्होंने अभी तक इस काम का महत्व नहीं समझा, नहीं तो शायद यह उनके प्रोग्राम की पहली पाँति में होता। मेरे विचार में जब तक राष्ट्र में इतना संगठन, इतना ऐक्य, इतना एकात्मपन न होगा कि वह एक भाषा में बात कर सके, तब तक उसमें यह शक्ति भी न होगी कि स्वराज्य प्राप्त कर सके, गैरमुमकिन है। जो राष्ट्र के अगुआ हैं, जो एलेक्शनों में खड़े होते हैं और

फतह पाते हैं, उनसे मैं बड़े अदब के साथ गुजारिश करूँगा कि हजरत इस तरह के एक सौ एलेक्शन आयेंगे और निकल जायेंगे, आप कभी हारेंगे, कभी जीतेंगे ; लेकिन स्वराज्य आपसे उतनी ही दूर रहेगा, जितनी दूर स्वर्ग है। अंग्रेजी में आप अपने मस्तिष्क का गूदा निकालकर रख दें, लेकिन आपकी आवाज में राष्ट्र का बल न होने के कारण कोई आपकी उतनी परवाह भी न करेगा, जितनी बच्चों के रोने की करता है। बच्चों के रोने पर खिलौने और मिठाइयाँ मिलती हैं। वह शायद आपको भी मिल जावे, जिसमें आपकी चिल्लपों से माता-पिता के काम में विघ्न न पड़े। इस काम को तुच्छ न समझिये। यही बुनियाद है, आपका अच्छे से अच्छा गारा, मसाला, सीमेंट और बड़ी से बड़ी निर्माण-योग्यता जब तक यहाँ खर्च न होगी, आपकी इमारत न बनेगी। बरौंदा शायद बन जाय, जो एक हवा के झोंके में उड़ जायगा।...

हमारा काम यही है कि जनता में राष्ट्रचेतना को इतना सजीव कर दें कि वह राष्ट्रहित के लिए छोटे-छोटे स्वार्थों को बलिदान करना सीखे। आपने इस काम का बीड़ा उठाया है, और मैं जानता हूँ, आपने क्षणिक आवेश में आकर यह साहस नहीं किया है, बल्कि आपका इस मिशन में पूरा विश्वास है, और आप जानते हैं कि यह विश्वास कि हमारा पक्ष सत्य और न्याय का पक्ष है, आत्मा को कितना बलवान् बना देता है। समाज में हमेशा ऐसे लोगों की कसरत होती है, जो खाने-पीने, धन बटोरने और जिन्दगी के अन्य धँधों में लगे रहते हैं। यह समाज की देह है। उसके प्राण वह गिने-गिनाये मनुष्य हैं, जो उसकी रक्षा के लिए सदैव लड़ते रहते हैं कभी अन्धविश्वास से, कभी मूर्खता से, कभी कुव्यवस्था से, कभी पराधीनता से। इन्हीं लड़ंतियों के साहस और बुद्धि पर समाज का आधार है। आप इन्हीं सिपाहियों में हैं। सिपाही लड़ता है, हारने-जीतने की उसे परवाह नहीं होती। उसके जीवन का ध्येय ही यह है कि वह बड़तों के लिए अपने को होम कर दे, आपको अपने सामने कठिनाइयों की फौजें खड़ी नजर आयेंगी। बहुत सम्भव है, आपको उपेक्षा का शिकार होना पड़े। लोग आपको सनकी और पागल भी कह सकते हैं, कहने दीजिये। अगर आपका संकल्प सत्य है, तो आप में से हरेक एक-एक सेनानायक हो जायगा। आपका जीवन ऐसा होना चाहिए कि लोगों को आपमें विश्वास और श्रद्धा हो। आप अपनी बिजली से दूसरों में भी बिजली भर दें, हर एक पन्थ की विजय उसके प्रचारकों के आदर्श जीवन पर ही निर्भर होती है। अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में ऊँचे से ऊँचा उद्देश्य भी निन्द्य हो सकता है। मुझे विश्वास है, आप अपने को अयोग्य न बनने देंगे।

[संक्षिप्त रूप]

श्री प्रेमचन्दजी : आत्मीय अनुभव

श्री वी. एम. कृष्णस्वामी, मद्रास

उपन्यास-सम्राट सुश्री प्रेमचन्दजी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर 'सभा' अपनी मुखपत्रिका 'हिन्दी प्रचार समाचार' का प्रेमचन्द विशेषांक निकाल रही है, यह बड़ी माकूल बात है।

श्री प्रेमचन्दजी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा में (29 दिसंबर, 1934) पधारे थे। संदर्भ था, सभा का पदवीदान-समारंभ, जिसमें उन्होंने दीक्षांत भाषण दिया था। दक्षिण के हिन्दी प्रचारक गण और हिन्दी विद्यार्थी प्रेमचन्द के प्रति बहुत आकर्षित हो चुके थे, अतः उस वर्ष के पदवीदान समारंभ में हिन्दी प्रचारकों और स्नातकों की अच्छी भीड़ थी।

श्री वी. एम. कृष्णस्वामी

श्री प्रेमचन्दजी के साथ उनकी धर्मपत्नी श्री शिवरानी देवीजी तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बंबई के मालिक श्री नाथूराम प्रेमी भी आये थे। सभा के भूतपूर्व कोषाध्यक्ष श्री रामनाथ गोयंका ने इनको अपने यहाँ आदरणीय अतिथि के रूप में ठहरा लिया था।

मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि मुझे उस अवसर पर पूरे दो दिन श्री प्रेमचन्दजी के साथ ही रहने का मौका मिला। मैं उन दिनों सभा का कार्यकर्ता था। सभा के प्रधान मंत्री श्री अण्णा हरिहर शर्मा ने मुझे श्री प्रेमचन्दजी की सुख-सुविधाओं की देखभाल के लिए दो दिन उन्हींके साथ रहने का आदेश दिया था। श्री गोयंकाजी के यहाँ उनके अतिथियों को सुख-सुविधा की क्या कमी हो सकती है? अतः मुझे वहाँ विशेष कोई काम नहीं रहा।

श्री प्रेमचन्द आदि को स्टेशन से सीधे श्री गोयंका के यहाँ ले जाकर ठहराया गया। उसके बाद ही मैं उनके यहाँ पहुँचा। 'उपन्यास सम्राट' शब्दों से मैंने श्री प्रेमचन्दजी के रूप, आकार आदि की बड़ी अजीब कल्पना

कर रखी थी। 'उपन्यास सम्राट' शब्द का मतलब भी पूरा-पूरा उस समय मैं समझ नहीं पा रहा था। क्योंकि मैं उस समय हिन्दी में विशारद की तैयारी कर रहा था। उन दिनों मैं चूंकि सभा में काम करता था, हिन्दी खूब लिख-पढ व बोल लेता था। मेरी अजीब कल्पनाओं के विपरीत एक दुबले-पतले, मामूली सादा कुर्ता व धोती पहने, हमेशा पान चबाते हुए एक व्यक्ति को देखकर अचंभे में पड़ गया था। श्री शर्माजी मुझे ले जाकर उनके सामने खड़ा किया और कहा, "यह लड़का आपके साथ रहेगा। आप इससे जो चाहे काम लीजिये।" श्री प्रेमचंदजी ने कहा, "अच्छी बात है।" मेरा नाम पूछा। जान-पहचान हुई।

कुछ सुखद स्मृतियाँ अब भी मेरे सामने गुज़र रही हैं। मामूली वेषभूषा के बीच एकदम भोला-भाला चेहरा। बड़े मिलनसार व्यक्ति थे, सबसे बड़ी सरलता से बातें करते थे। बड़े विनोदप्रिय व्यक्ति, बात-बात में ठहाकरा भरकर हँसते थे। श्री शिवरानी देवीजी पान की डिबिया लिये पास बैठी थीं, हर पाँच मिनट में एक-एक पान लगाकर देती थीं, बातचीत के बीच हाथ बढ़कर पान लेकर चबाते थे। यह पान शिवरानीजी अपने साथ लायी थीं, फिर वापस जाने तक जितना चाहिए उतना।

शाम को पदवीदान-समारंभ में जाने से पहले श्री प्रेमचन्दजी से मिलने कई लोग आये। श्री प्रेमचन्दजी, नाथूराम प्रेमीजी, शिवरानीजी तथा अन्य आगन्तुक साहित्यिक बातों पर चर्चा करते थे। बातचीत के बीच-बीच प्रेमचंदजी के ठहाका मारकर हँसने की ध्वनि आब भी मेरे कानों में गूंज रही है। कई प्रकार की साहित्यिक चर्चाएँ होती थीं। हिन्दी साहित्य के अपने अल्प ज्ञान के कारण कई बातों को मैं समझता नहीं था, मगर चुपचाप सुनता हुआ वहाँ जो अजीब समाँ बंध गया था, उसका खूब मज़ा लेता था।

पदवीदान समारंभ के बाद रात को सोने जाने के पहले श्री प्रेमचन्दजी ने मुझे अपने पास बुलाकर पूछा, "मैं मदरास शहर देखना चाहता हूँ। बोलो, तुम मुझे कल कहाँ कहाँ ले जाओगे।" श्री गोयंकाजी के प्राइवेट सेक्रटरी पास खड़े थे, एक छोटा-सा कार्यक्रम बनाया गया।

दूसरे दिन हम सैर करने निकले। हमारे लिए एक कार दे रखा था। पहले श्री पार्थसारथी के मंदिर में गये। फिर समुद्र के किनारे से होते हुए हारबर देखने गये। श्री प्रेमचंद ने कहा, "मैंने हारबर अभी तक नहीं देखा है, अब देख लूँगा।" श्री प्रेमचंदजी मद्रास के समुद्री किनारे को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, उसकी सुन्दरता की बड़ी तारीफ़ करते थे। उन दिनों मद्रास का समुद्री किनारा आजकल की तरह

थंदा नहीं रहता था। हारबर में बड़े-बड़े जहाज़ों का तैरना, लहरों का ज़ोर-ज़ोर से उनपर थपेड़ा मारना, जहाज़ों पर जल का लांदना-उतरना—यह सब वे बच्चों की तरह कुतूहल के साथ देखते थे। वे महाबलिपुरम देखना चाहते थे, पर समयाभाव से नहीं जा सके। श्री प्रेमचंदजी की मद्रास यात्रा यहीं समाप्त हो गयी। उन्होंने कहा, "मुझे हरिहर शर्माजी से भी तो और एक बार मिलना है।"

इसी मद्रास की सैर के समय रास्ते में श्री प्रेमचन्दजी ने मुझसे पूछा, "तुमने कौन-कौन-सी हिन्दी की पुस्तकें पढ़ी हैं?" मैंने कहा, "परीक्षा की पाठ्य-पुस्तकें, उसके बाद प्रेमाश्रम।' उन्होंने अचरज के साथ शिवरानीजी को बुलाकर कहा, "देखो न, इसने प्रेमाश्रम पढ़ा है।" मैंने प्रेमाश्रम का एकाध प्रसंग सुनाया। बात यह थी कि सभा के हिन्दी प्रचारक विद्यालय के एक कमरे में मैं रहता था। प्रधानाचार्य श्री पं. हृषीकेश शर्मा की पत्नी शारदा देवी ने एक दिन मुझे बुलाकर प्रेमाश्रम की एक कापी मेरे हाथ में थमा दी और कहा, इसे पढ़ जाओ। मैंने डरते-डरते कहा, "इतनी बड़ी पुस्तक कैसे पढ़ सकूँगा।" मगर श्री हृषीकेशजी व शारदाजी ने कहा, किसी तरह पढ़ जाओ। आज्ञा सिरोधार्य मानकर कोष की सहायता से तीन महीने में उसे पूरा पढ़ पाया! रोज रात को शारदाजी पूछतीं, "प्रेमाश्रम बांछते हो न?"

मैंने श्री प्रेमचन्दजी से पूछा, "आप कहानियाँ कैसे लिखते हैं?" मैं उन दिनों सभा के पुस्तक बिक्री विभाग में काम करता था। इसलिए कुछ कहानी किताबों के नाम याद थे। मैंने उनसे कहा, "आपका 'सप्तसरोज' पढ़ा है।" प्रेमचन्दजी ने कहा, "कहानी हर कोई लिख सकता है। मुझे हर कहीं कहानी की सामग्री मिल जाती है। हर एक आदमी को कहीं न कहीं कोई कहानी मिल सकती है। तुम भी कोशिश करो तो तुम्हें भी कहानी लिखना आ सकता है।" उसके आगे उनसे चर्चा करने उस समय मेरे पास कोई मसाला नहीं था। प्रेमचन्दजी ने फिर कहा, "तुम हिन्दी व तमिल की कहानियों का अनुवाद करो न!" मैंने कहा, 'मैंने आपकी, 'सती', 'आत्माराम' आदि कहानियों का तथा अन्य कुछ हिन्दी कहानियों का अनुवाद 'मणिक्कोडि' में प्रकाशित किया है। हिन्दी कहानीकारों का परिचय तमिल जगत को पहले पहल मैंने ही दिया था।" उन्होंने फिर कहा, "तुम तमिल कहानियों का हिन्दी में अनुवाद करके मेरे पास भेज दो।" मैंने कहा, कोशिश करूँगा।

कुछ साल बाद भारतीय साहित्य परिषद की मुखपत्रिका 'हंस' का प्रकाशन प्रारंभ होते ही श्री पिच्चमूर्ति, कु. प. रा. आदि तमिल कहानीकारों की कहानियों का अनुवाद मैंने श्री प्रेमचन्दजी के पास भेजा, जो 'हंस' में प्रकाशित हुई थीं।

अपने मद्रास प्रवास के समय श्री प्रेमचन्दजी ने मुझसे कहा, "तुम मेरे साथ काशी चलो न।" मैं बुद्धू उसका लाभ उठा नहीं सका, एक सुवर्ण अवसर खो दिया गया।

श्री प्रेमचन्दजी व शिवरानी देवी के युगल फोटो (जिसकी छवि इस अंक के आवरण पर छापी है) की एक प्रति मैंने प्रेमचन्दजी के सुपुत्र श्री अमृतराय के पास भेजा। उन्होंने उसकी पहुँच लिखते हुए मुझे लिखा, "पिताजी व माताजी का एक साथ का फोटो हमारे पास है नहीं, आपने एक अत्युत्तम फोटो हमें भेजी है, इसके लिए हमारे धन्यवाद स्वीकार करें।"

श्री प्रेमचन्दजी ने अपने इसी मद्रास प्रवास के अवसर पर दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को यह अनुमति दी थी कि सभा उनकी कहानियों का अपने प्रकाशनों में समावेश बिना किसी रायलटी के कर सकती है। पीछे सभा के साहित्य मंत्री का काम संभालते समय मैंने श्री अमृतराय को सूचित करके श्री प्रेमचन्दजी की कई कहानियों का सभा की पाठ्य-पुस्तकों में समावेश किया था। श्री प्रेमचन्दजी का उदारतापूर्वक सभा के कार्यों की सराहना के रूप में, राष्ट्रभाषा के प्रचार के नाते दिया हुआ यह प्रकाशनाधिकार सभा के पास है।

माता का हृदय प्रेम से इतना अनुरक्त रहता है कि भविष्य की चिन्ता और बाधाएँ उसे ज़रा भी भयभीत नहीं करतीं। उसे अपने अन्तःकरण में एक अलौकिक शील का अनुभव होता है जो बाधाओं को उसके सामने परास्त कर देता है।

* * *

औरतों को रूप की निन्दा जितनी अप्रिय लगती है, उससे कहीं अधिक अप्रिय पुरुषों को अपने पेट की निन्दा लगती है। —प्रेमचन्द

प्रेमचंदजी—हमारी सभा के संपर्क में

श्री र. शौरिराजन, मद्रास

[राष्ट्रीय चेतना और जन-जागरण को राष्ट्रभाषा के माध्यम से साहित्यिक संबल प्रदान करनेवाले अमर जनवादी साहित्य-शिल्पी स्व. प्रेमचन्द का 100-वाँ जन्म-दिवस 31, जुलाई को हिन्दी-प्रेमी जगत् के द्वारा मनाया जा रहा है। गांधीवादी सोच के उस प्रभावशाली, प्रगतिशील साहित्यकार की सादर स्मृति में यह संस्मरण प्रस्तुत है।]

दक्षिण के हिन्दी पाठकों के लिए प्रेमचंदजी सुपरिचित साहित्यकार हैं, जैसे कि मातृभाषा के प्रियतर रचनाकार होते हैं। प्रेमचंद के बारे में दाक्षिणात्य हिन्दी प्रेमियों को जानकारी व दिलचस्पी तब हुई जब गांधीजी ने उनकी भाषा-शैली को अपनी परिकल्पना की राष्ट्रीय संपर्क भाषा 'हिन्दुस्तानी' का सही नमूना बताया और हिन्दी पाठकों को उनकी रचनाएँ पढ़ने की प्रेरणा दी।

प्रेमचंदजी लगभग 1920 ई. से राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से वैचारिक स्तर पर जुड़े रहे। इसलिए तदनुरूप, उनकी साहित्य-रचना हुआ करती थी। हिन्दी प्रचार को गांधीजी ने एक प्रमुख राष्ट्रीय निर्माण-कार्य के रूप में प्रशस्त किया था। हिन्दी प्रचार-प्रसार के साथ-साथ प्रेमचंद-जैसे राष्ट्रीयचेता साहित्यकार भी पाठकों के बीच में राष्ट्रीय महत्व प्राप्त करने लगे। इस रूप में प्रेमचन्दजी दक्षिण के हिन्दी पाठकों के बीच में लोकप्रिय हुए।

हमारी सभा के साथ मुंशी प्रेमचंद का आत्मीय संबंध शुरू से ही रहा। सन् 1923 से सभा ने अपनी स्वतंत्र परीक्षाएँ चलानी शुरू कीं। लगभग सन् 1927 से प्रेमचंद की रचनाएँ सभा के पाठ्यक्रमों में स्थान पाने लगीं। सामान्य पठन के द्वारा भी दक्षिण के हिन्दी छात्र-छात्राएँ प्रेमचंद को दिलचस्पी के साथ पढ़ने लगे। कुछ समर्थ हिन्दी प्रचारकों ने प्रेमचंद की कहानियों को अपनी मातृभाषा में अनूदित कर प्रादेशिक साहित्य-प्रेमियों के बीच प्रशस्त किया। इस दिशा में आन्ध्र प्रदेश आगे रहा। प्रारंभिक कालीन हिन्दी प्रचारकों ने जनता में हिन्दी प्रेम जगाने के लिए प्रेमचंद, प्रसाद, कौशिक आदि प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्य-कारों की कहानियों को अनुवाद-माध्यम से पेश किया। मद्रास शहर उस जमाने में पूरे दक्षिण की राजधानी रहा; इसलिए चारों दक्षिणी भाषा-भाषी समुदाय प्रेमचंद को निज भाषा और राष्ट्रभाषा की मार्फ़त पढ़ सके। इस तरह प्रेमचंदजी

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रमुख अभिभावकों में रहे। गांधीजी द्वारा संवर्धित होने के कारण प्रेमचंदजी को हमारी सभा के प्रति आत्मीय लगाव तो था ही। इसी वजह से उन्होंने अपनी रचनाओं को सभा के पाठ्यक्रमों में यथायोग्य लेने की खुली छूट दे रखी थी।

सन् 1934 में उनका सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास 'सेवासदन' तमिल में फ़िल्माया गया। इस सफल चलचित्र के निर्माता थे स्व. के. सुब्रह्मण्यम् जो अपने ज़माने के मशहूर फ़िल्म-निर्माता एवं निर्देशक थे। इस फ़िल्म की हीरोइन थीं सुमधुर गायिका श्रीमती एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी जो अब कर्नाटक संगीत की सुविख्यात विदुषी के रूप में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति पा चुकी हैं। इस तमिल फ़िल्म को प्रेमचन्द ने हिन्दी फ़िल्म की अपेक्षा उत्तम सुरुचिसंपन्न माना, सराहा। तेलुगु में इसी दौरान उनकी दो-तीन रचनाओं पर फ़िल्में बनीं। इस लोकप्रिय कला-माध्यम ने दाक्षिणात्य लोगों में प्रेमचंदजी का नाम-यश फैला था।

प्रेमचंदजी ने सन् 1930 से राष्ट्रभाषा-आंदोलन में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में नियमित भाग लेते रहे। उन दिनों वे कहा करते थे, "इसमें कोई शक न था कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है; लेकिन सम्मेलन की पंडिताऊ हिन्दी नहीं, सरल हिन्दी, हिन्दुस्तानी जो उर्दू को खुलकर गले लगाती है।"

उनकी यही नज़रिया व रवैया उनको हमारी सभा के निकट ला सकीं। बापूजी के भी वे मनभाये लेखक साबित हुए। वे 27 अक्तूबर, 1934 को बंबई में हुए राष्ट्रभाषा सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष की हैसियत से शामिल हुए और कौमी ज़बान के उसूलों पर रोशनी डालकर प्रभावी भाषण दिया। यह सम्मेलन बंबई हिन्दी प्रचार सभा की ओर से आयोजित था। उसके प्रमुख कार्यकर्ताओं में हमारी सभा के अनुभवी प्रचारक भी थे। यहीं से प्रेमचंदजी की राष्ट्रभाषा प्रचार यात्रा शुरू हुई।

द. भा. हिन्दी प्रचार सभा के चौथे पदवीदान समारंभ में दीक्षान्त भाषण देने के लिए इसी वर्ष (1934) दिसंबर में प्रेमचंदजी आमंत्रित किये गये। मद्रास की यानी दक्षिण की उनकी यह पहली यात्रा थी। इस हिन्दी यात्रा के संबंध में प्रेमचंदजी ने अपने संस्मरण में लिखा है—

"...दिसंबर (1934) में मद्रास जाने की तैयारी हो गयी। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने मुझे दीक्षान्त भाषण करने के लिए आमंत्रित किया था। एक अहिन्दी प्रदेश में जाकर हिन्दी के प्रचार का सुयोग मेरे मन की चीज़ थी। लिहाज़ा

मैंने न्योता पाकर तुरंत उसे स्वीकार किया और अपनी पत्नी, नाथूरामजी प्रेमी और बंबई हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ता शंकरनजी के साथ 27 दिसंबर को बंबई से चलकर 28 की शाम को मद्रास पहुँचे। तीसरे दर्जे का सफ़र था, मगर रास्ते में कोई ख़ास तकलीफ़ नहीं हुई। प्रेमीजी अपने साथ मगदल के लड्डू और पूरियाँ रख लाये थे। हमने खूब लड्डू खाये।...

"मद्रास में हम लोगों को श्री रामनाथ गोयनका के यहाँ ठहराया गया।... पदवीदान का जलसा गोखले हाल में था (29 दिसंबर, 1934)। मेरा ख्याल था कि बहुत बड़ा जमघट होगा, लेकिन मालूम हुआ कि छुट्टियों के कारण बहुत-से हिन्दी प्रेमी बाहर चले गये हैं। मगर तमाशाइयों की तादाद चाहे कम हो, यहाँ जितने लोग थे, प्राय: सभी हिन्दी प्रचार से संबंध रखते थे और हिन्दी प्रचारकों के इस मिशनरी दल को देखकर मन में आशा और गर्व की गुदगुदी होने लगी थी। कुछ लोग तो कई-कई सौ मील तय करके आये थे और उसमें देवियों की भी ख़ासी तादाद थी।..."

अपने उसूलों के मुताबिक प्रेमचन्दजी का वह शानदार दीक्षांत-भाषण सभा का सैद्धांतिक दस्तावेज़ था। अंग्रेज़ी की सत्ताशाही पर करारी चोट की, हिन्दुस्तानी की पैरवी की, भाषाई कठमुल्लेपन को लथेड़ा, स्वभाषा-उन्नति की तूती बजायी, स्वदेशी स्वाभिमान को झकझोरा, दिमागी गुलामी की धुलाई की और राष्ट्रीय स्वाभिमानी चेतना जगायी। उस महत्वपूर्ण भाषण के कुछ अंश—

"प्यारे हिन्दी प्रचारक मित्रो,

आपकी सभा ने पंद्रह-सोलह साल के मुख़्तसर-से समय में जो काम कर दिखाया है, उसपर मैं आपको बधाई देता हूँ, खासकर इसलिए कि आपने अपनी ही कोशिशों से यह नतीजा हासिल किया है। सरकारी हमदाद का मुँह नहीं ताका। यह आपके हौसलों की बुलन्दी की एक मिसाल है। अगर मैं यह कहूँ कि आप भारत के दिमाग हैं, तो वह मुबालगा न होगा। किसी अन्य प्रान्त में इतना अच्छा संगठन हो सकता है और इतने अच्छे कार्यकर्ता मिल सकते हैं—इसमें मुझे संदेह है।...

"जिन दिमागों ने अंग्रेज़ी राज्य की जड़ जमायी, जिन्होंने अंग्रेज़ी भाषा का सिक्का जमाया, वे लोग राष्ट्रभाषा के उत्थान पर कमर बाँध लें, तो क्या कुछ नहीं कर सकते? और यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है कि जिन दिमागों ने एक दिन विदेशी भाषा में निपुण होना अपना ध्येय बनाया था, वे आज राष्ट्रभाषा का उद्धार करने पर कमर कसे नज़र आते हैं और जहाँ से मानसिक पराधीनता की तरंगें उठ

रही हैं, जिन लोगों ने अंग्रेजी लिखने और बोलने में अंग्रेजों को भी मात कर दिया—यहाँ तक कि आज जहाँ कहीं देखिये, अंग्रेजी पत्रों के सम्पादक इसी प्रान्त के विद्वान मिलेंगे, वे अगर चाहें तो हिन्दी बोलने और लिखने में हिन्दीवालों को भी मात कर सकते हैं।...

"हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व है। विदेशी भाषा सीखकर अपने गरीब भाइयों पर रोब जमाने के दिन बड़ी तेज़ी से बिदा होते जा रहे हैं। प्रतिभा का और बुद्धिबल का जो दुरुपयोग हम सदियों से करते आये हैं, जिसके बल पर हमने अपनी एक अमीरशाही स्थापित कर ली है, और अपने को साधारण जनता से अलग कर लिया है, वह अवस्था अब बदलती जा रही है। बुद्धिबल ईश्वर की देन है, और उसका धर्म प्रजा पर धौंस जमाना नहीं, उसका खून चूसना नहीं, उसकी सेवा करनी है।

"अगर हम एक राष्ट्र बनकर अपने स्वराज्य के लिए उद्यम करना चाहते हैं, तो हमें राष्ट्रभाषा का आश्रय लेना होगा और उसी राष्ट्रभाषा के बख्तर से हम अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकेंगे। आप उसी राष्ट्रभाषा के भिक्षु हैं, और इस नाते आप राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं। सोचिये, आप कितना महान काम करने जा रहे हैं। आप कानूनी बाल की खाल निकालनेवाले वकील नहीं बना रहे हैं, आप शासन-मिल के मज़दूर नहीं बना रहे हैं, आप एक बिखरी हुई कौम को मिला रहे हैं, आप हमारे बन्धुत्व की सीमाओं को फैला रहे हैं, भूले हुए भाइयों को गले मिला रहे हैं। इस काम की पवित्रता और गौरव को देखते हुए कोई ऐसा कष्ट नहीं है, जिसका आप स्वागत न कर सकें। यह (हिन्दी प्रचार का कार्य) धन का मार्ग नहीं है, संभव है कि कीर्ति का मार्ग भी न हो। लेकिन आपके आत्मिक संतोष के लिए इससे बेहतर काम नहीं हो सकता। यही बलिदान का मूल्य है। मुझे आशा है, यह आदर्श हमेशा आपके सामने रहेगा। आदर्श का महत्व आप खूब जानते हैं। वह हमारे रुकते हुए क़दम को आगे बढ़ाता है, हमारे दिलों से संशय और संदेह की छाया को मिटाता है और कठिनाइयों में हमें साहस देता है।...

"अब हमें विचार करना है कि राष्ट्रभाषा का प्रचार कैसे बढ़े। अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि हमारे नेताओं ने इस तरफ़ मुजरिमाना गफ़लत दिखायी है। वे अभी तक इसी भ्रम में पड़े हुए हैं कि यह कोई बहुत छोटा-मोटा विषय है, जो छोटे-मोटे आदमियों के करने का है, और उनके जैसे बड़े-बड़े आदमियों को इतनी कहाँ फ़ुर्सत कि वे झंझट में पड़ें। उन्होंने अभी तक इस काम का महत्व नहीं समझा, नहीं तो शायद यह उनके प्रोग्राम की पहली पाँति में

होता। मेरे विचार में जब तक राष्ट्र में इतना संगठन, इतना ऐक्य, इतना एकात्मपन न होगा कि वह एक भाषा में बात कर सके, तब तक उसमें यह शक्ति भी न होगी कि स्वराज्य प्राप्त कर सके, गैरमुमकिन है। जो राष्ट्र के अगुवा हैं, जो एलेक्शनों में खडे होते हैं और फतह पाते हैं, उनसे मैं बड़े अदब के साथ गुजारिश करूँगा कि 'हजरत! इस तरह के एक सौ एलेक्शन आएँगे और निकल जाएँगे, आप कभी हारेंगे, कभी जीतेंगे, लेकिन स्वराज्य आपसे उतनी ही दूर रहेगा, जितनी दूर स्वर्ग है।

"हमारा काम यही है कि जनता में राष्ट्रचेतना को इतना सजीव कर दें कि वह राष्ट्रहित के लिए छोटे-छोटे स्वार्थों को बलिदान करना सीखे। आप हिन्दी प्रचारकों ने इस काम का बीडा उठाया है।...आपका जीवन ऐसा होना चाहिए कि लोगों को आपमें विश्वास और श्राद्धा हो। आप अपनी बिजली से दूसरों में भी बिजली भर दें, हर एक पथ की विजय उसके प्रचारकों के आदर्श जीवन पर ही निर्भर होती है। अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में ऊँचे से ऊँचा उद्देश्य भी निन्द्य हो सकता है। मुझे विश्वास है, आप अपने को अयोग्य न बनने दें।...

"जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बनती रहती है। शुद्ध 'हिन्दी' तो निरर्थक शब्द है। जब भारत शुद्ध हिन्दू होता तो उसकी भाषा शुद्ध हिन्दी होती। जब तक यहाँ मुसलमान, ईसाई, फ़ारसी, अफ़गानी, सभी जातियाँ मौजूद हैं, हमारी भाषा भी व्यापक रहेगी। अगर हिन्दी भाषा प्रांतीय रहना चाहती है और केवल हिन्दुओं की भाषा रहना चाहती है तब तो वह शुद्ध बनायी जा सकता है। उसका अंग-भंग करके उसका कायाकल्प करना होगा। प्रौढ से वह शिशु बनेगी। यह असंभव है, हास्यास्पद है।"

सभा के पदवीदान समारोह के बाद, प्रेमचंदजी तीन दिन मद्रास में ठहरे। कई सभाओं और गोष्ठियों में भाग लिया और प्रमुख व्यक्तियों से मिलकर बातचीत की। मद्रास शहर के दर्शनीय स्थानों की सैर की। सभा के हिन्दी प्रचारक और बाहर के हिन्दी-प्रेमी उनका साथ देने में आत्मतोष का अनुभव करते थे। पाँचवें दिन सभा के वरिष्ठ हिन्दी प्रचारक हिरण्मयजी के साथ मैसूर पहुँच गये। मैसूर-बेंगलूर की सैर में भी हमारी सभा के प्रचारकों ने उनके सहयोगी, सहयात्री बनकर मदद पहुँचाने में कोई क़सर न होने दी।

प्रेमचंदजी हमारी सभा की कर्मठ हिन्दी सेवा से प्रभावित हुए और बढ़ते हिन्दी प्रचार को देखकर आश्वस्त हुए।

हिन्दी प्रचार समाचार

प्रेमचंद ने बंबई पहुँचकर अपनी इस दक्षिणी यात्रा के बारे में 7 फ़रवरी 1935 को साहित्यकार बन्धु जैनेन्द्र कुमार को लिखा—

"मद्रास गया था। वहाँ से मैसूर और बेंगलूर भी गया। अपना यात्रा-वृत्तांत लिख रहा हूँ। कुछ नोट तो किया नहीं, जो कुछ याद है, वही लिखता हूँ, हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है—यह देखकर खुशी हुई। जो लोग राष्ट्र की और कोई सेवा नहीं कर सकते, वे इसी ख्याल में मगन हैं कि वे राष्ट्रभाषा सीख रहे हैं। मुझे वह प्रदेश बड़ा सुंदर लगा। पढ़ने व गाने-बजाने का घर-घर प्रचार है, मुहल्ले-मुहल्ले स्त्रियों के समाज हैं और प्रायः सभी में हिन्दी की क्लासें हैं। मैं बुद्धू की तरह माला पहनकर रह गया। बोल न सकने की कमी उस वक्त मालूम हुई। जनता कहती है कि हिन्दी का एक बड़ा लेखक है, जाने क्या-क्या मोती उगलेगा, और यहाँ हैं कि कुछ समझ में नहीं आता, क्या कहूँ। खैर, ट्रिप अच्छा रहा। इसका श्रेय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को है, जो मार्के का काम राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के लिए पूरी लगन और सेवा-भावना से कर रही है ...।"

"बड़े-बड़े महत्व के संकल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं।"

"दुखी हृदय दुखी आँख है जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है।"

"लक्ष्मी अगर रक्त और मांस की भेंट लेकर आती है, तो उसका न आना ही अच्छा है।"

"स्थायी साहित्य विध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है। वह मानव चरित्र की कालिमाएँ नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएँ दिखाता है। मकान गिरानेवाला इंजिनीयर नहीं कहलाता। इंजिनीयर तो निर्माण ही करता है।"

—प्रेमचन्द

भाषा के प्यासे हो तुम !
भाव के पुजारी हो तुम !!

श्री एम. वी. सुब्बुरामन, मद्रास

गाय-गर्व गद्गद किया कर्मठ 'गोदान' ने
गात-कर्म उन्नत किया ऊंचे किसान ने
गुणी-दृग प्रफुल्ल किया तेज 'कर्मभूमि' ने
गन्ध-मुख विकसित किया तेरे लेखन ने;

नरक-योग्य सिद्ध किया अनमेल विवाह को
नारी-जन्म खिन्न हुआ लेकर निर्मला को
नभ-नीचे निषिद्ध किया नृशंस दहेज को
नेत्र-नीर नग्न हुआ पाकर 'निर्मला' को;

समस्याएँ नित क्षीणित हुईं 'रंगभूमि' से
समवेदनाएं अति जागृत हुईं 'वरदान' से
संस्कृतियाँ सब उज्ज्वल दृढ़ 'प्रतिज्ञा' से
संतप्त मूर्तियाँ सज्जन बनीं सदा 'प्रेमाश्रम' से ;

पुलकित हुआ वाचन-प्रेम 'कायाकल्प' का
पुष्ट हुआ रूपरंग 'बड़े घर की बेटी' का
पुण्य हुआ जन्म 'शतरंग की खिलाड़ी' का
पूज्य हुआ सौदा बालक के 'ईदगाह' का ;

सम्मानित होंगे हृदय-दर्पण 'प्रेम पंचमी' के
संस्कृत होंगे चरित्र-चित्रण 'रामचर्चा' के
सज्जित होंगे सज्जन-रक्षण 'पंच-परमेश्वर' के
संशोधित होंगे तरुण-वर्णन लघु 'परीक्षा' के;

खुल गयीं करुण किवाड़ें 'नव निधि' की
खिल गयीं कोमल कलियाँ 'प्रेम द्वादशी' की
गल गयीं निर्जर यातनाएँ 'प्रेम पचीसी' की
मिल गयीं रौनक़-राहें 'मान सरोवर' की;

दहेज-प्रथा खंड़ित हुई 'सेवा सदन' में
दया-मोह व्यर्थ हुआ दहेज भवन में
दैन्य-दशा दलित हुई दोषी 'गबन' में
दुःख-ताप असह्य हुआ आभूषण-प्रेम में;

नाजो नियामत बरसायेंगे आज 'बेगरज मुहसिन' पर
नामो निशान चढ़ायेंगे रोज़ 'दुर्गा के मंदिर' पर
नज़रो नियाज दरसायेंगे दूर 'नमक के दारोगे' पर
नमकख्वार बन जायेंगे अभी 'माता के हृदय' पर;

हिन्दी - उर्दू - हिन्दुस्तानी के प्रबल रक्षक !
यशस्वी, तपस्वी, कलम के अटल सिपाही !
शत वार नतिम करे सर मानव मन !
उपन्यास-जगत् के सम्राट को माने जगत !

मेरी आत्मिक शांति

श्री प्रेमचन्द

जन्म : 31 जुलाई, 1980

देहान्त : 8 अक्तूबर, 1936

"दुनिया में बड़े-बड़े दिमागवाले ढगे हैं, कौन असली बड़ा आदमी है, कौन नकली—इसकी परख करने के लिए बड़ी गहरी न्याय-बुद्धि की ज़रूरत है। मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि कोई बड़ा आदमी, बड़ा धनपति हो। जैसे ही मैं किसी आदमी को बहुत अमीर देखता हूँ, उसकी तमाम कला और ज्ञान की बातों का नशा मेरे ऊपर से उतर जाता है। मैं उसे कुछ इस तरह देखने लगता हूँ कि उसने इस वर्तमान समाज-व्यवस्था के आगे घुटना टेक दिया है, जो अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण पर आधारित है। लिहाज़ा ऐसा कोई बड़ा नाम, जो लक्ष्मी से असयुक्त नहीं है, मुझे आकर्षित नहीं करता। यह बिलकुल मुमकिन है कि इस दिमागी ढाँचे के पीछे जीवन में मेरी अपनी असफलता हो। बैंक में अच्छी मोटी रक़म रखकर मैं भी शायद औरों जैसा ही हो जाता—मैं भी उस लोभ के सामने टिक न पाता। मगर मैं खुश हूँ कि प्रकृति और भाग्य ने मेरी सहायता की है और मुझे ग़रीबों के साथ डाल दिया है। इससे मुझे आध्यात्मिक शांति मिलती है।"

(जनवरी 1936 में सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा साहित्यकार श्री बनारसीदास को लिखे पत्र का अंश)

प्रेमचन्द के पात्रों की छाया में

श्री पी. आर. रुक्माजी राव 'अमर', मद्रास

सफल व प्रबुद्ध साहित्यकार जीवन की गुत्थियों एवं आन्तरिक ग्रन्थियों को स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। शायद इसी आशय के आधार पर उपन्यास और जीवन में अभेद्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न हुआ है। हिन्दी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रण कहा है। कलम के धनी, यथार्थ जीवन के चितेरे प्रेमचन्द की कहानी के पात्रों के सम्बन्ध में कथन है कि यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वयं हो सकता है, मगर कहानी के पात्रों के सुख-दुख से हम जितना प्रभावित होते हैं, उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते—जब तक वह निजत्व की परिधि में न आ जाय।

मैं और प्रेमचन्द के पात्र

प्रेमचन्द की कहानियों के आधार पर लिखित रेडियो एकांकी में मुंशी बंशीधर (नमक का दारोगा) अमरकांत (होली का उपहार) का अभिनय करने का सुअवसर मेरे हाथ लगा। नमक का दारोगा के समान धीर, निर्भीक, तटस्थ, कर्तव्य-परायण व ईमानदार बने रहने के भाव जाग्रत हुए। जीवन में जाने-माने लोगों के काले कारनामों के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति उत्पन्न हो गयी। अमरकान्त का अभिनय करते समय अपने विगत राष्ट्रीय जीवन की झाँकियाँ फिर से एक बार ताजी होकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गयीं।

प्रेमचन्द के कथानकों पर फिल्में

प्रेमचन्द के सेवासदन, निर्मला, गोदान, ग़बन, कफ़न एवं शतरंज के खिलाड़ी के आधार पर फिल्में बनीं। मैं इन फिल्मों को अवलोकन कर आनन्दविभोर हो उठा हूँ। प्रेमचन्द के पात्र मुखरित होकर दर्शकों के हृदयपटल पर छा गये। पात्रों एवं दर्शकों के बीच तादात्म्य स्थापित हो गया। प्रेमचन्द के पात्रों में केवल खूबियाँ हैं, ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। खामियों के बावजूद भी प्रेमचन्द के पात्रों में जनमानस के हृदय-पटल पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ पाने की क्षमता है। शिक्षित जनता को सेवासदन, निर्मला, गोदान एवं ग़बन फिल्में भायीं। किन्तु शतरंज के खिलाडी और कफ़न फिल्में कहानी निर्माण कला की दृष्टि से सफल होते हुए भी मनोरंजन की दृष्टि से सफल नहीं रहीं।

प्रेमचन्द के पात्रों से भेंट

सेवासदन के सुमन, विट्ठलदास, निर्मला के तोताराम, निर्मला, प्रेमाश्रम के प्रेमशंकर, प्रभाशंकर, रंगभूमि के सूरदास, सोफिया, ग़बन के जालपा, देवीदीन, रमानाथ, कर्मभूमि के अमरकान्त, मुन्नी, लाला समरकान्त, गोदान के धनिया, होरी, राय साहब, गोबर, शंखनाद के वितान, शान, गुमान, पंच परमेश्वर के जुम्मन शेख, अलगू चौधरी, जुम्मन की खाला, परीक्षा के पं. जानकीनाथ, बड़े भाई साहब के बड़े भाई और बूढ़ी काकी की बुढ़िया से जीवन के लम्बे सफ़र में मेरी भेंट हुई। उनमें बाज लोगों से बहुत निकट पहुँचने का अवसर भी प्राप्त हुआ। उनमें से कुछ तो मेरे आसपास आज भी बसते हैं। इनमें कुछ मेरे जीवन-पथ के संगी-साथी भी रहे हैं।

प्रेमचन्द के पात्र और छात्र

प्रेमचन्द के रेखाचित्र मेरी आँखों के सम्मुख सजीव होकर गुज़रने लग जाते। जब कभी मैं उन्हें आत्मसात् करने के लिए पुन: अध्ययन व मनन करने लग जाता। वर्ग में जब प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों को पढ़ाने लग जाता तो छात्रवृन्द कहने लग जाते कि फलाँ-फलाँ पात्र हमारे पडोसी या हमारे नाते-रिश्तेदार हैं। कलाकार की सफलता का यही परिचायक मेरुदंड है।

प्रेमचन्द के साहित्य में तत्कालीन सामाजिक गति-विधि, आर्थिक दुस्थिति, राजनैतिक उथल-पुथल, राष्ट्रीय भावना की लहर व ग्रामीण जीवन की झाँकी मिलती है। उनके साहित्य में भारतीय जनसाधारण का विशद वर्णन पाया जाता है। स्वतंत्रता-संग्राम की पुनीत ज्वाला में अपने प्राणों की आहुति चढ़ाने की ललक, वर्गसंघर्ष के लिए कमर कसकर खड़े होने की ताक़त, अन्याय व अत्याचार के खिलाफ़ बुलन्द नारा लगाने की अदम्य शक्ति, पददलित मज़दूरों, लुटे हुए किसानों के प्रति सहानुभूति दर्शाने की भावना से ओतप्रोत हैं प्रेमचन्द के पात्र। प्रेमचन्द सुधारवादी थे। भारतीय समाज के सफल चितेरे थे। सच पूछा जाय तो प्रेमचन्द को पाकर हिन्दी गद्य साहित्य धन्य हो गया। प्रेमचन्द की अनेक कृतियाँ संसार की प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो गयी हैं। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि हिन्दी साहित्य जगत में दूसरा प्रेमचन्द अब तक पैदा नहीं हुआ।

हमारे प्रिय प्रेमचन्दजी

व्यक्तित्व तथा कृतित्व के संदर्भ में

प्रेमचन्द : जीवन के क्रांतिकारी व्याख्याकार

प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक वर्ग विश्लेषण प्रस्तुत करता है। जागृत बुद्धिजीवियों की मनोभूमि पर, हेतुवाद पर आधारित मार्क्सवादी विचारधारा का बीजारोपण हो रहा था। नये सांचों के निर्माण के लक्षण प्रकट हो रहे थे। इस युग में दलित वर्गों को समझने के लिए बुद्धिजीवियों ने जो यत्न किया, उसका दिशादर्शन हम प्रेमचन्द में पाते हैं। आपका यथार्थ उत्तरोत्तर स्पष्ट होता है। उपन्यासों में प्राबंधिक प्रतिबंधों के कारण जो प्रेमचन्द खुलकर सामने नहीं आ सके, वह कहानियों में पूरा कर देते हैं।

जीवन की परिणति के साथ 'सुमन' सूख भी जाए, 'कफ़न' की महत्ता तो चिरस्थाई है। 'कफ़न' मनोवैज्ञानिक एवं क्रांतिकारी प्रतिमानों पर खरी उतरती है।

यद्यपि समाज की आलोचना में सुमन और दलित वर्गीय आलसी पियक्कडों के माध्यम से समान विचार ही प्रकट किये गये हैं, और व्यक्ति के गुण-दोषों की जिम्मेदारी समाज पर रखी गयी है, फिर भी 'सेवासदन' के लेखक उपदेशवाद का बाना पहनकर सेवासदन की स्थापना से संतुष्ट हुए। किन्तु कफन के प्रेमचन्द इस मंजिल से आगे बढ़ जाते हैं। यहाँ आप इस तथ्य की स्थापना करते हैं कि जो स्त्री जीवन-भर श्रम करके परिवार का पालन-पोषण करती है, उसको यदि पुण्य नहीं मिले, तो मोटे-तगड़े लोगो को (पूँजीपति आदि को) कहाँ से मिलता? पाप और पुण्य की यह नयी व्याख्या मनोवैज्ञानिक समाजवादी सिद्धांतों की टिप्पणी है।

—**श्री पिण्डपर्ति वेंकटराम शास्त्री**, पालकोल

सजग जुझारू साहित्यकार

स्वर्गीय धनपतराय मुँशी प्रेमचन्दजी आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के सबसे महान उपन्यासकार व कहानीकार थे। वे उर्दू और संस्कृत के सरल व सुलभ शब्दों का अपनी कृतियों में प्रयोग करते थे। पात्रों की सृष्टि करने में वे कुशल थे। भाषा व शैली इतनी प्रांजल, सजीव और सरल कि साधारण हिन्दी जाननेवाले भी

उनका अनुकरण करना चाहते हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग स्वाभाविक था। प्रेमचन्द सर्वप्रथम साहित्यकार हैं जो आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) के विकास में अपना योग तन मन लगाकर देते थे।

प्रेमचन्द के रहते समय हमारा देश पराधीन था। मानसिक व शारीरिक गुलामी समाज में फैली थी। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्य के द्वारा देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने के स्वप्न देखे जो आगे चलकर साकार हुए। प्रेमचन्दजी राष्ट्रीयतावादी, गांधीवादी, समाजवादी, तथा समाज-सुधारक थे। उन्होंने स्वयं विधवा-विवाह कर लिया। लोगों में जो अंधविश्वास और बुरी आदतें—जैसे जुआ खेलना, शराब पीना, छुआछूत, आलस्य, रिश्वतखोरी आदि मौजूद थे। उनका अपने पात्रों द्वारा पर्दाफ़ाश किया, उनपर करारी चोट की। नेक पात्रों द्वारा आदर्शवाद का यथार्थ चित्रण भी किया।

—श्री टी. एन. रामचन्द्रराव, तंजाऊर।

अनोखी भेंट

नवभारत के स्वप्नदर्शी, स्वनामधन्य, हिन्दी साहित्य मनीषी प्रेमचन्द की शताब्दी हम मना रहे हैं। राष्ट्रीयता के अभियान में, राष्ट्रभाषा प्रचार में प्रेमचंद का आत्मीय सहयोग रहा। हिन्दी साहित्य जगत में आपका नाम अजर-अमर है। आपने हिन्दी और उर्दू साहित्य में नवीन मार्ग का अविष्कार किया। देश की प्रगति पर दलित लोगों को आकर्षित करनेवालों में प्रेमचन्द का नाम सर्वोपरी है।

जनवरी, 1935 में प्रेमचंदजी बेंगलूर पधारे थे। तब आप मल्लेश्वरम् के महिला समाज में अपनी पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी के साथ पधारे। उस वक्त मैं विशारद' में पढ़ रहा था। समाज की सेक्रेटरी साहिबा ने पहले ही मुझे वीणा बजाने की कह रखी थी। मैंने प्रेमचंदजी के समक्ष हिन्दी गीत वीणा में बजाना उचित समझा। इसी कारण मैंने वीणा में राष्ट्रीय गीत "हे मातृभूमि, तेरी जय हो! सदा जय हो! ..." का वादन किया और गायन भी किया। वीणा की झंकृति और सुरीले गायन से आप प्रभावित हुए और दिल खोलकर प्रशंसा की। इसके अलावा महिला समाज द्वारा आयोजित वाक्‌स्पर्धा में मैंने भाग लिया था। स्त्री-शिक्षा के बारे में मैंने हिन्दी में दस मिनिट तक भाषण किया था। उसके उपलक्ष्य में मुझे प्रथम पुरस्कार मिला। प्रेमचंदजी के करकमलों से मुझे प्रथम पुरस्कार भी लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह मेरा अहोभाग्य था। मेरे जीवन में यह एक अनोखा अविस्मरणीय सुयोग रहा।

मैं सोचने लगी—'दुबला-पतला, खादी कुर्ता-धोती पहने यह व्यक्ति क्या प्रेमचंद हैं? जिन्होंने अपनी कृतियों से देश में क्रांति की लहर दौड़ायी। अपना यथार्थ जनवादी स्वर बुलंद किया। इस कमजोर और पतले शरीर में इतनी ताकत! अंग्रेजी शासन के विरुद्ध, जमींनदारों व शोषकों के विरुद्ध विद्रोह कराने की जादुई ताकत उनकी लेखनी में कहाँ छिपी पड़ी थी! रूस के गोर्की जैसे आपने भी प्रगतिशील साहित्य की रचना की, देश को जगाया। अब आपकी कृतियों का अनुवाद विश्व के अग्रगण्य भाषाओं में हुआ है। उनके 'गोदान' से रूसी लोग भी प्रभावित हुए। 'गोदान' का 'होरी और झुनिया' आज भी हिन्दुस्तान के गाँव-गाँव में जी रहे हैं कमोबेश पहचान के साथ।

आपके सरल जीवन, और मिलनसार स्वभाव की जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह थोडी है।

—श्रीमती एम. एन. रुक्मिणी देवी, बेंगलूर

हिन्दी साहित्य में भोर का तारा

मुन्शी प्रेमचंदजी की जन्म शताब्दी आज दुनिया-भर में मनायी जा रही है। जब प्रेमचंद जागृत हो उठे और साहित्य रचनाएँ करने लगे तब अंग्रेजी शासन जनपर दबाव डाल रहा था। आम जन, किसान बड़ी मुश्किलों से दबे जा रहे थे। उसी समय कलाकार और साहित्यकार—उर्दू और हिन्दी भाषा भाषी अपनी भाषाई संकीर्णता से विभाजित थे। प्रेमचंद ने अपने जमाने की इन परिस्थितियों को दूर करने का साधन बनाया यथार्थवाद को और इसमें अपना सारा जीवन लगाया।

जाति-पांति का भेदभाव और अंधविश्वास मध्यवर्ग के जन्मजात रोग हैं; स्वार्थलोलुप और शोषक वर्गों का बोलवाला था। देहाती प्रदेश को अपने साहित्य का सृजन-लक्ष्य बनाकर गुमराह व ढुलमुल मध्य-वर्ग के लोगों को प्रेमचंद ने जगाया। समाज की कुरीतियों को खूब समझाया। इसके साक्षी हैं—'पंच-परमेश्वर', 'हाजे अकबर', 'ईदगाह' और 'माफी' आदि सामाजिक रचनाएँ। हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए उनकी परंपरागत विभाजक बातों को प्रेमचंद ने बखूबी समझाया। प्रेमचंद की लेखनी हमेशा जाति-पांति की भेद भावनाओं का तीव्ररूप से सामना कर रही थी।

अपने लक्ष्य के अटल कलाकार मुंशी प्रेमचंदजी ने वर्ग-संघर्ष को अपनी तीखी लेखनी द्वारा बल दिया। बडे कलाकारों की तरह अपने पाठकों के हृदय को मन-मोहक शैली से जागृत किया। शिक्षित समाज अपने ज्ञान की सुगंध पाने के

लिए स्वार्थपरता को दूर करना, चरित्रवान बनना आदि उदात्त भावनाओं को जागृत किया। हमारे बीच में सत्य और न्याय आदि उन्नत भावनाओं को जगाने का भोर का तारा बने साहित्य जगत में वे।

—श्री कु. पा. स्टालिन, वेट्टवलम्

आदर्शों के आचरण का आइना थे

आदर्शोन्मुख यथार्थवादी होने से प्रेमचंद की सभी कृतियाँ पाठकों के कुतूहल-वर्धक तथा कार्योन्मुख बनानेवाली बन पडी हैं। विषय ही नहीं, उनकी भाषा भी पाठकों को अपने साथ खींच लिये जाती है। प्रेमचंद के सभी पात्र, रोज़ाना जीवन से जूझनेवाले सजीव चित्र ही हैं। 'निर्मला' से लेकर 'मंगलसूत्र' तक जितने भी उपन्यास हैं, वे सब रंक से लेकर राजा तक के मानसिक गुण-अवगुणों के प्रतिबिंब हैं। किसानों और मज़दूरों के नाम पर अंबरचुंबित अट्टालिकाओं में किलकारियाँ भरते हुए, स्वार्थ में सराबोर होकर, सामाजिक समस्याओं पर अनेकानेक अनावश्यक दाँवपेंच करते हुए मानवता को मात कर देनेवालों का अच्छा चित्रण अगर कहीं मिलता है तो एक प्रेमचंद की रचनाओं में ही मिलता है। प्रेमचंद दूषित सामाजिक प्रवृत्तियों का पोल खोलने में सिद्धहस्त थे।

जब कभी भावुक या जिज्ञासु पाठक प्रेमचंद का स्मरण करते हैं तो उनका मन आनंदित होता है, आलोकित होता है। मानवता के अवलोकन के लिए आतुर हो उठता है। अपने किये बुरे-भले का सिंहावलोकन करने लगता है। रह-रहकर मन में अनर्थकारी तथा अनावश्यक आध्यात्मिक पक्ष का परित्याग करके सार्थक तथा उपयोगी "मन चंगा तो कठौती में गंगा" वाले सच्चे भक्तिमार्ग के उपासक बनने की मार्मिक प्रेरणा की उमंगें उठने लगती हैं। समाज में व्याप्त बेकारी, बेगारी और रिश्वतखोरी आदि कुरीतियों पर टूट पड़ने का जोश उबल उठता है तो प्रेमचंद की स्मृति तरोताज़ा हो उठती है। एक प्रकार का स्पंदन होता है। स्फूर्ती आ जाती है। मन में गुदगुदी के साथ उत्साह की उमंगें लहरें मारने लगती हैं। इसीसे प्रेमचंद के कृतित्व, व्यक्तित्व तथा अमरत्व पर बिलकुल एक अनोखा आलोक-सा छा जाता है।

—श्री काज वेंकटेश्वरराव, विजयवाडा

साहित्य व समाज के इनक़िलाबी झंडा बरदार

प्रेमचन्द सामाजिक, राजनैतिक विषयों में क्रांतिकारी विचार रखते थे। जाति-पांति, छुआछूत, अंधरूढी तथा धार्मिक संकीर्णता के आप कट्टर दुश्मन थे।

कला के बारे में प्रेमचंदजी के विचार टालस्टाय से मिलते-जुलते थे। आप किसानों, मजदूरों और पीडितों के वकील थे। आम जनता के कलाकार थे। आपकी तमाम कहानियाँ और उपन्यासों में पात्रोचित जीवंत भाषा है। आप के पात्र देहाती हैं। उनकी बोली आम जनता की है। सीधे-सादे व पुर-असर ढंग से कहना उनकी शैली की खासियत रही। आपका व्यंग्य ऐसा चुभता है कि पाठक कलेजा थामे रहता है। हिन्दी कथा साहित्य को आपकी देन बहुत अधिक है। आपने अद्भुत क्रांतिकारी रचनाओं के बल पर लोकप्रियता प्राप्त की।

कफ़न, ईदगाह, बडे घर की बेटी, शंखनाद, पंच परमेश्वर, परीक्षा आदि आपकी मशहूर कहानियाँ हैं, जो लगभग ढाई सौ हैं। साहित्य, संस्कृति, समाज पर आपके विचारोत्तेजक निबंध भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। नाटक, फ़िलम क्षेत्र में भी आपका थोडा-सा दखल रहा। सबसे बढकर आप अंग्रेज़ियत के खिलाफ़ ज़ोरदार आवाज़ उठायी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के हक में बराबर पैरवी की।

—श्री ए. परवीन बानू, अनंतपुर

महान मानवतावादी साहित्यकार

प्रेमचंद के पिता डाकखाने में नौकर थे। माँ बचपन में ही मर गयी थीं। कुँवरानी शिवरानी देवी नामक बालविधवा से आपने विवाह किया। प्रेमचन्दजी ने बी. ए. परीक्षा पास की और कुछ समय के लिए स्कूल में मास्टर और इन्सपेक्टर का काम भी किया था। बाद में गान्धीजी के प्रभाव के कारण नौकरी छोडकर साहित्य की और देश की सेवा करने लगे।

मुन्शी प्रेमचन्द जहाँ उपन्यास-सम्राट माने जाते हैं, वहाँ आपको कहानी क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान है। आपका पहला उपन्यास 'सेवासदन' है जिससे हिन्दीवाले और उर्दूवाले भी आपको प्रथम उपन्यासकार मानने लगे। 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' आपके प्रारंभिक उपन्यास हैं। आपके उपन्यास तीन कोटि के माने जाते हैं। प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, राजनैतिक उपन्यास हैं। सामाजिक उपन्यासों में निर्मला, सेवासदन, गोदान, गबन आदि प्रसिद्ध हैं। तीसरी कोटि के उपन्यासों में कायकल्प प्रसिद्ध है।

आपने लगभग 250 कहानियाँ लिखकर हिन्दी कहानी-क्षेत्र की अच्छी प्रगति की। कहानियों में समाज का यथार्थ चित्रण, विधवाओं की करुण कथा, किसानों की दुर्दशा आदि का सजीव, प्रभावी चित्रण किया।

प्रेमचन्द के उपन्यास मनोविज्ञान के सफल उदाहरण हैं। आपने भावुकता के आवेश में यथार्थ को थोड़ा लुप्त होने दिया। कथावस्तु में स्वाभाविकता, रोचकता और मौलिकता हैं। भाषा सरल, सुबोध एवं मुहावरेदार है। आपने चाँद की डिबिया, संग्राम, कर्बला आदि नाटक भी लिखे थे। आप कहानीकार, उपन्यासकार ही नहीं, सफल निबन्धकार भी हैं।

अत: प्रेमचन्दजी गान्धी-युग के प्रतिनिधि चिन्तक और हिन्दी साहित्य के युगनिर्माता की हैसियत से विख्यात हुए हैं।

—श्री भमिडि श्रीलक्ष्मी, ताडेपल्लिगूडम

युगद्रष्टा रचनाधर्मी प्रेमचन्द

एक निर्धन परिवार में जन्म लेने के कारण मुंशी प्रेमचन्द को अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। साहित्य क्षेत्र में उतर आने के पश्चात् भी निर्धनता ने कभी भी आपका साथ न छोड़ा। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी और निबंध तदितर अन्य क्षेत्रों में भी अपनी लेखनी चलायी। एक-एक क्षेत्र में उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—

उपन्यास—सेवासदन, रंगभूमि, गबन, निर्मला, कर्मभूमि और गोदान; नाटक—प्रेम की वेदी, कर्बला, संग्राम; निबंध—कलम तलवार और त्याग; कहानी—मानसरोवर (ढाई सौ कहानियों के संग्रह)।

प्रेमचन्द की रचनाओं में भारतीय आत्मा की झलक है। आपमें प्रकृति के विश्लेषण करने तथा संगठन की अद्भुत क्षमता थी। अपने उपन्यासों में आपने सामाजिक दोषों को कटु आलोचना कर उनके लिए सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। कहानी-क्षेत्र में भी आप आदर्शवाद को ही लेकर चले हैं। आपकी कहानियों में भारतीय प्राचीन संस्कृति के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्दजी अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक सभी परिस्थितियों पर लेखनी चलायी है। आपकी जीवंत चुटीली भाषा पात्रानुकूल चलती है। प्रेमचन्द एक महान कलाकार और युगद्रष्टा रचनाधर्मी हैं।

—टी. आर. मोहनरेड्डी, तादेण्ड्ला

(शेष अगले अंक में)

प्रेमचंद साहित्य : तेलुगु में

श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति

दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा केरल की जनता से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा प्रेमचंद का परिचय हुआ। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने अपनी लोकप्रिय हिन्दी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में प्रेमचंद की कहानियों और उनके उपन्यासों को स्थान दिया। इससे हिन्दी से परिचित दक्षिण के लोग प्रेमचंद के साहित्य से परिचित ही नहीं हुए, अपितु उन्होंने अपनी-अपनी भाषाओं में प्रेमचंद के साहित्य का अनुवाद भी करना शुरू कर दिया। इससे दक्षिण की जनता अपनी मातृभाषा में प्रेमचंद का साहित्य पढ़ने लगी। जब प्रेमचंद के साहित्य की मांग जनता की ओर से होने लगी, तब दक्षिण की भाषाओं में प्रेमचंद के साहित्य के प्रकाशन का काम शुरू हो गया।

श्री के. सूर्यनारायण शास्त्री ने आन्ध्र प्रदेश के विजयवाडा शहर में 'प्रेमचंद पब्लिकेशन्स' के नाम से एक प्रकाशन-संस्था शुरू कर दी। वे स्वयं हिन्दी, तेलुगु और अंग्रेजी से परिचित व्यक्ति हैं। श्री शास्त्री ने अपनी प्रकाशन-संस्था की ओर से खुद निर्मला का अनुवाद कर प्रकाशित किया। फिर सेवासदन तथा नारीजीवन नामक उपन्यासों का तेलुगु में प्रकाशन किया जिनका अनुवाद एन. एस. वी. सोमराजुलु ने किया। निर्मला की हजारों प्रतियाँ बिकीं। निर्मला उपन्यास से प्रभावित होकर "माइंटि महालक्ष्मी" हमारे गृह की महालक्ष्मी के नाम से तेलुगु में निर्माताओं ने फिल्म का निर्माण किया। वह फिल्म बहुत दिनों तक प्रदर्शित हुआ। श्री शास्त्री ने प्रेमचंद कृत 'प्रेम की वेदी' का प्रेमपीठ (नाटक) के नाम से तेलुगु में प्रकाशन किया। प्रेमचंद की कई कहानियों के संग्रह निम्नलिखित शीर्षकों के शास्त्री ने प्रकाशित किये, जिनका अनुवाद तेलुगु के विद्वान श्री पुराणम कुमार राघव शास्त्री ने किया। कहानी-संग्रह निम्न प्रकार हैं—

1. शांति, 2. अप्प सेल्लेंड्रु (बड़ी और छोटी बहनें) 3. गृहस्वामिनी, 4. आभरणमुलु (गहनें) 5. गृहदाहमु 6. पूलमतिपिल्ललु (पूलमति के बच्चे) 7. गृहनीति, 8. अंतिम शांति 9. कारागारमु, 10. जीवन शापमु 11. कौशलमु, 12. सहगमनमु।—उपर्युक्त सभी कहानी-संग्रहों की बिक्री संतोषजनक रूप से हुई।

तेलुगु के प्रगतिवादी साहित्यकारों का ध्यान प्रेमचंद के साहित्य पर गया। कम्यूनिस्ट पार्टी की प्रकाशन-संस्था का नाम है विशालांध्र पब्लिकेशन हाऊस। इसकी ओर से प्रेमचंद के उपन्यासों का प्रकाशन शुरू हुआ। स्वर्गीय अद्लूरि

पिच्चेश्वरराव ने गोदान का तेलुगु में प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किया जो विशालांध्र नामक तेलुगु दैनिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। इसके बाद विशालांध्र पब्लिकेशन हाऊस की ओर से गोदान पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। गबन और कायाकल्प का अनुवाद आलूरि भुजंगराव ने तेलुगु में किया। रंगभूमि और कर्मभूमि का अनुवाद श्री भुजंगराव, सुंकर सत्यनारायण तथा कौमुदी ने किया। ये उपन्यास भी विशालांध्र पब्लिकेशन हाऊस की ओर से प्रकाशित हुए। मंगलसूत्र उपन्यास का अनुवाद श्री चावलि रामचन्द्रराव ने तेलुगु में किया जिसका प्रकाशन विशालांध्र पब्लिकेशन हाऊस की ओर से हुआ। प्रतिज्ञा उपन्यास का प्रकाशन भी विशालांध्र पब्लिकेशन हाऊस की ओर से ही हुआ। उपर्युक्त सभी ग्रंथों का प्रचलन तेलुगुभाषी जनता में खूब हुआ।

जनता प्रचुरणालय (प्रकाशन-संस्था) की ओर से प्रेमाश्रम और वरदान उपन्यासों का तेलुगु में प्रकाशन हुआ। जनता प्रचुरणालय ने प्रेमचंद की कुछ कहानियों का संकलन प्रेमचंद कथलु के नाम से तेलुगु में प्रकाशित किया।

आदर्श ग्रंथ मंडल की ओर से प्रेमचंद रचित 'मनोरमा' का प्रकाशन किया गया। इसके अलावा साहित्य अकादमी और नेशनल बुक-ट्रस्ट की ओर से भी प्रेमचंद की कुछ चुनी हुई कहानियों का तेलुगु में अनुवाद और प्रकाशन हुआ। कफन कहानी का अनुवाद 'प्रेतवस्त्रमु' के शीर्षक इस लेख के लेखक ने किया। इसी बीच श्री मृणालसेन ने कफन कहानी के आधार पर तेलुगु में 'ओक ऊरि कथा'— शीर्षक से एक सफल फिल्म का निर्माण किया।

तेलुगु पत्र-पत्रिकाओं में प्रेमचंद की कहानियों का प्रकाशन होता रहता है। शिवरानी देवी के 'प्रेमचंद गृह में' का तेलुगु अनुवाद तेलुगु की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमति वासिरेड्डी सीतादेवी ने किया। वह ग्रंथ तेलुगु में प्रकाशित हो गया और काफी लोकप्रिय हुआ। आज प्रेमचंद तेलुगु भाषा-भाषियों के सुपरिचित लेखक बन गये हैं। व्यापार की दृष्टि से जब प्रेमचंद जैसे प्रसिद्ध लेखक के साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन होता है तो वह अनुवाद आम तौर पर प्रामाणिक नहीं होता। तेलुगु भाषा में शरतबाबू के साहित्य की वही हालत हुई। प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य के प्रामाणिक अनुवाद व प्रकाशन का भार अभी तक किसी स्तरीय संस्था या प्रकाशक ने नहीं लिया है। इस दिशा में ठोस समवेत प्रयास की अत्यंत आवश्यकता है।

प्रेमचन्द साहित्य : मलयालम में

श्री रवि वर्मा, तिरुप्पुणित्तुरा

प्रेमचन्द और यशपाल हिन्दी के सैकड़ों साहित्यकारों में इन दो उपन्यासकारों के नाम केरल के पुस्तकप्रेमियों के लिए सर्वाधिक सुपरिचित हैं। इसका कारण है कि इन दोनों लेखकों की लगभग सभी रचनाएँ मलयालम में अनूदित हो गयी हैं। इसके कारण दोनों की रचनाओं के माध्यम वे उनसे सांस्कृतिक संपर्क स्थापित कर सके हैं और वे इनके विचारों के, इनके शिल्प और कृतित्व के कायल हो गये हैं।

हर साहित्य का चाहे वह प्राच्य हो, या पाश्चात्य, कम से कम एक तिहाई अंश अनूदित होता है। विशेषकर उनका जिनमें मौलिक प्रतिभा के धनी देरी से आविर्भूत होते हैं। कारण जानने व समझने की, अवकाश के समय का सदुपयोग करने की जन्मजात इच्छा सभी सभ्य देशों के बाशिन्दों को विरासत में मिली है। वे तब तक प्रतीक्षा करने में अक्षम हैं, जब तक मौलिक सृजनशील प्रतिभा का आविर्भाव होता। इसलिए वे अनुवाद की ओर झुकते हैं। इन अनूदित रचनाओं से प्रेरणा पाकर मौलिक मनीषा-संपन्न लेखक कलम संभालते हैं और फिर साहित्य देखते ही देखते प्रगति करता जाता है।

मलयालम साहित्य इस साधारण नियम का अपवाद नहीं था। अनूदित रचनाओं का पाथेय लेकर उसे साहित्यिक यात्रा शुरू करनी पड़ी थी। 1970 तक मलयालस में प्रकाशित 15,623 साहित्यिक ग्रन्थों में 1913 अनूदित हैं। हिन्दी से 166 ग्रन्थ मलयालम में अनूदित हो गये हैं और मलयालम से हिन्दी में 51 ग्रन्थ।

हिन्दी से अनूदित कहानियों की संख्या—दूसरी भाषाओं की कहानियाँ भी हिन्दी से अनूदित हैं—काफ़ी बड़ी है। मगर प्रेमचन्द के अलावा और किसी हिन्दी लेखक की कहानियों का संग्रह अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है। कारण यह है कि पाठक कहानियाँ संग्रहणीय नहीं मानते। वे सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की शोभा बढ़ाती रहें। बस, यह रेल-यात्रा के वक्त कुछ मिनटों तक मनबहलाव करती रहें और उठकर निकल आते समय वहीं छोड़कर चले आयें, या किसी हमसफ़र को भेंट कर आयें।

इसके बदले मलयालम के पाठक उपन्यास चाहते हैं। अगर अपनी भाषा का उपन्यास प्राप्त न हो, तो अन्य भाषाओं का ही सही। साधारण पाठक इसमें स्वदेशी-विदेशी का फरक नहीं मानते। यद्यपि कुछ बुद्धिजीवी शिकायत करते हैं

कि हमने दूसरी भाषाओं से जितना आदान किया, उतना उन भाषाओं ने आदान नहीं किया। मगर वे नहीं सोचते कि किसी भी साहित्य में जितनी अधिक अनूदित रचनाएँ होती हैं, उतना ही वह भाषा विकसित मानी जाती है। अंग्रेजी इसलिए विकसित मानी जाती है कि उसमें विश्व की सभी श्रेष्ठ रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। हमें विश्व साहित्य की रचनाएँ अंग्रेजी से प्राप्त हुईं। हम फ्रेंच, रूसी, स्पेनी भाषाओं की रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद इतने अधिकारपूर्वक उद्धृत करते हैं कि जैसे हम सम्बद्ध भाषाओं से ही उद्धृत करते हैं।

अनूदित भाषाओं की अधिकता किसी भी भाषा की पराधीनता का लक्षण नहीं है। बल्कि उस भाषा के भाषी लोगों की सहृदयता उदार दृष्टि अपने पड़ोसियों को समझने की त्वरा आदि सभ्यता-द्योतक विशिष्ट गुणों का लक्षण है। किसी भाषा की प्रौढ़ रचना का अनुवाद वही भाषा कर सकती है जो खुद प्रौढ़ बन गयी हो। इधर केरल के पढ़े-लिखे लोग दूसरों से आदान करने में पीछे नहीं हैं। भारतीय भाषाओं उनके प्रमुख लेखकों, उनकी स्तरीय रचनाओं से वे पर्याप्त परिचित है। अतः अचरज नहीं होना चाहिए कि अधिकांश प्रेमचन्द की रचनाएँ मलयालम में अनूदित होकर जनप्रिय हो गयी हैं।

जब प्रेमचन्द कहानियाँ, उपन्यास लिखने लगे थे, मलयालम साहित्य इन दोनों क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था। एकाध पारिवारिक, ऐतिहासिक उपन्यासों तथा पडोसी राज्य की भाषा तमिल से अनूदित कथा-कहानियों के अलावा बंगला के बंकिमचन्द्र के कुछ उपन्यास, ठागोर की कहानियाँ भी यहाँ उपलब्ध होती थीं। मगर अन्य भारतीय भाषाओं या उनके साहित्य के बारे में यहाँ के लोग अनभिज्ञ थे।

लेकिन इस सदी के दूसरे दशक में जब यहाँ दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने हिन्दी प्रचार शुरू किया, तो प्रेमचन्द की रचनाएँ पढ़ने को मिलीं। यहाँ के लोगों के लिए यह एकदम नयी चीज थी। वे प्रेमचन्द की भाषा, शैली, कथावस्तु एवं शिल्प पर लट्टू हो गये। समकालीन राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के धरातल पर इतनी सुन्दर कहानियाँ, उपन्यास रचे जा सकते हैं, यह देखकर वे चकित हो गये। उसी समय से यहाँ प्रेमचन्द की रचनाओं का अनुवाद शुरू हुआ था। प्रेमचन्द के सभी उपन्यास मलयालम में उपलब्ध हैं। अनुवादक श्री ई. के. दिवाकरन पोट्टी। उल्लेखनीय है कि उनको इस अपूर्व सेवा के लिए केरल साहित्य अकादमी की तरफ़ से 20 अप्रैल 1980 को आयोजित प्रेमचन्द जन्म शताब्दी समारोह में सम्मानित किया गया था।

मगर ढाई सौ से अधिक कहानियों में से बहुत कम कहानियाँ मलयालम में अनूदित हुई हैं। सर्वप्रथम हिन्दीभाषी श्री धारासिंह ने जो मलयालम भी मातृभाषा की तरह बोल-लिख सकते हैं, कुछ चुनी हुई कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित किया था। नेशनेल बुक ट्रस्ट की तरफ़ से प्रेमचन्द की 22 कहानियों का एक और संग्रह दो-तीन साल पहले प्रकाशित हुआ जिसमें शतरंज के खिलाड़ी, ईदगाह, कफ़न आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। प्रेम पंचमी की कहानियाँ भी मलयालम में आ चुकी हैं। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ सो अलग।

आज केरल के लोग प्रेमचन्द को अपना ही कहानीकार-उपन्यासकार मानते हैं। इसीलिए प्रेमचन्द शताब्दी समारोह के वर्ष में श्रेष्ठ उपन्यासकार तकषि शिवशंकर पिल्लै, सुप्रसिद्ध कवि, समालोचक, संपादक श्री एन. वी. कृष्णवारियर अदि ने प्रेमचन्द की कृतियों की प्रशंसा करते हुए उन्हें श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थीं। जगह-जगह पर शताब्दि समारोह आयोजित किये गये थे।

साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता, उसे अपने अंदर भी एक कमी प्रतीत होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है।

* * *

हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हमें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। —प्रेमचन्द (1936 में)

प्रेमचन्द साहित्य: तमिल में

श्री र. शौरिराजन, मद्रास

प्रेमचन्द के बारे में हिन्दीतर भाषी पाठकों को जानकारी व दिलचस्पी तब हुई जब कि गांधीजी ने उनकी भाषा-शैली को अपनी परिकल्पना की हिन्दुस्तानी का सही नमूना बताया और हिन्दीप्रेमी देशभक्तों को उनकी रचनाएँ अधिकाधिक पढ़ने को प्रेरित किया था।

प्रेमचन्द लगभग 1920 ई. से राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के पक्के पक्षधर हुए। तदनुरूप प्रेमचन्द की साहित्य-रचना स्वराज, सामाजिक नव-जागरण, सुधार आदि मुद्दों पर होने लगी। 1910 से ही वे राष्ट्र की गुलामी के खिलाफ अपने विचार व्यक्त करते रहे। सोजेवतन (1908 ई.) देशप्रेम का पहला उबाल था। उसकी पृष्ठभूमि में वंगभंग-विरोधी स्वदेशी आंदोलन था।

हिन्दी प्रचार को गांधीजी ने एक राष्ट्रीय निर्माण के रूप में प्रशस्त किया। हिन्दी प्रचार-प्रसार के साथ-साथ प्रेमचन्द जैसे राष्ट्रचेता साहित्यकार भी पाठकों के बीच में राष्ट्रीय महत्व प्राप्त करने लगे। इस रूप में प्रेमचन्द तमिल पाठकों के बीच 1928 ई. से लोकप्रिय होने लगे। उनकी कहानियों का तमिल रूपान्तर नामी गांधीवादी स्वयंसेवक आक्कूर अनंताचारी, अंबुजम अम्माल, बहुभाषाविद् का. श्री. श्रीनिवासाचार्य, हिन्दी प्रचारक बी. एम. कृष्णस्वामी आदि ने प्रकाशित किया। 'प्रेमपंचमी' का तमिल अनुवाद पुस्तकाकार में आक्कूर अनंताचारी ने 1929 ई. में प्रकाशित किया। श्रीमती अंबुजम् अम्माल ने 'सेवासदन' का तमिल अनुवाद 'आनन्द विकटन' (लोकप्रिय तमिल साप्ताहिक) में 1930 ई. में छपवाया और उनके द्वारा अनूदित प्रेमचन्द की कई कहानियाँ तत्कालीन तमिल पत्र-पत्रिकाओं में बराबर छपती रहीं। 1932 में नवोन्मेषवादी पत्रिका 'मणिक्कोडि' (मासिक) का प्रारंभ हुआ। उस जमाने के प्रगतिशील तरुण लेखक इसके साथ जुडे थे। बी. एम. कृष्णस्वामी, बी. एस. रामैय्या आदि ने प्रेमचन्द की कहानियों के अनुवाद उस नव चेतना की पत्रिका में प्रकाशित किये। इस समय तक हिन्दी प्रचार-प्रसार दक्षिण में जोर पकड़ने लगा। कई साहित्यप्रेमी तमिल पाठक मूल हिन्दी में प्रेमचन्द को पढ़ने लगे। वे गोष्ठियों में, हस्तलिखित पत्रिकाओं में, प्रेमचन्द की कहानियों, लेखों, उपन्यासों को तमिल अनुवाद के जरिये प्रशस्त करते थे। 1930-1940 ई. तक तमिल की लोकप्रिय

पत्र-पत्रिकाओं में आनन्द विकटन (साप्ताहिक), स्वदेश मित्रन (साप्ताहिक) कलैमगल (मासिक), कावेरी (मासिक), मणिक्कोडि (मासिक), हनुमान (साप्ताहिक) तेनी (मासिक), चिन्तनै (मासिक) आदि में प्रेमचन्द की कहानियाँ छपती थीं।

1934 ई. प्रेमचन्द का व्यक्तिगत संपर्क तमिल भाषी पाठकों को दो संदर्भों में हुआ। मार्च या अप्रेल 1934 में 'सेवासदन' 'बाज़ारे हुस्न' के नाम से फ़िल्म रूप में रिलीज हुआ। निर्देशक थे नानुभाई वकील जो घटिया किस्म की मनोरंजक फ़िल्म बनाने में मशहूर थे। प्रेमचन्द ने उसे देखकर अनमना होकर यही राय बतायी, "अच्छा है, पर सन्तोषजनक नहीं।"

यही 'सेवासदन' लगभग इन्हीं दिनों तमिल फ़िल्म बनी तो बात ही और थी। के. सुब्रह्मण्यम ने उसका निर्देशन किया। अब अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त संगीत-विदुषी, सुमधुर गायिका श्रीमती एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी ने पहली बार रंगमंच पर उतरकर सुमन की भूमिका में अभिनय किया। सुप्रसिद्ध नाटक-अभिनेता नटेश अय्यर ने गंगाधर पांडे की भूमिका में उत्तम अभिनय किया। के. सुब्रह्मण्यम उस जमाने के उच्च कोटि के निर्देशक माने जाते थे। कथाकार के सामाजिक संदेश और कहानी की आत्मा की पूरी तरह रक्षा करते हुए सुब्रह्मण्यम ने 'सेवासदन' बनाया जो कि रुचिसंपन्न लोगों के बीच बहुत पसंद किया गया। 'सेवासदन' तमिल दर्शकों के बीच में, विशेष कर दर्शिकाओं में खूब सराहा गया। पहले यह पत्रिका में धारावाहिक छपकर वाहवाही पा चुका था, फिर पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ। अनुवादिका थीं श्रीमती अंबुजम्माल।

दूसरा संदर्भ था, दिसंबर 1934 में प्रेमचन्दजी का मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के दीक्षान्त भाषण करने के लिए पधारना। इस मौके का जिक्र खुद मुंशी जी ने यों किया है—"पदवीदान का जलसा गोखले हाल में था। मेरा ख्याल था कि बहुत बडा जमघट होगा। लेकिन मालूम हुआ कि छुट्टियों के कारण बहुत-से हिन्दी-प्रेमी बाहर गये हैं। मगर तमाशाइयों की तादाद चाहे कम हो, यहाँ जितने लोग थे, प्रायः सभी हिन्दी प्रचार से संबन्ध रखते थे और प्रचारकों के इस मिशनरी दल को देखकर मन में आशा और गर्व की गुदगुदी होने लगती थी। कुछ लोग तो कई-कई सौ मील तय करके आये थे और उसमें देवियों की भी खासी तादाद थी।"

प्रेमचन्दजी पांच दिन मद्रास में ठहरे। कई जगहों पर उनके भाषण हुए, सम्मान-सभाएँ हुईं। उनके प्यारे पाठकों को समक्ष मिलकर बात करने का सुअवसर मिला। यह एक साहित्यकार के लिए भी कम हर्ष की बात नहीं थी।

युगप्रवर्तक तमिल साहित्यकार एवं पत्रकार रा. कृष्णमूर्ति 'कल्कि' ने 1942 में 'कल्कि' साप्ताहिक शुरू किया। वे भी प्रेमचन्द की तरह रचनाधर्मी, राष्ट्रीयता-प्रेमी और सामाजिक जागरण के उद्गाता रहे। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में प्रेमचन्द की कई कहानियों के अनुवाद प्रकाशित किये। हिन्दी प्रचारक तथा लेखक श्री श्रीलिनाथन ने गबन, प्रेमाश्रम आदि को 'कल्कि' में धारावाहिक प्रकाशित कराया। यह सन् 1950-52 ई. की बात है।

इसके बाद तमिल की लोकप्रिय डाइजेस्ट 'मंजरी' में का. श्री. श्रीनिवासाचार्य, र. शौरिराजन (शौरि), सरस्वती रामनाथ आदि ने समय-समय पर प्रेमचन्द की कहानियों के तमिल अनुवाद प्रकाशित कराये। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रेमचन्द की चुनी हुई कहानियों के संग्रह का अनुवाद र. शौरिराजन ने किया, जो 1975 में प्रकाशित हुआ।

तमिल के उपन्यासकार-कथाकारों में प्रेमचन्द के समकक्ष माने जाने योग्य हैं स्व. रा. कृष्णमूर्ति 'कल्कि'। युगप्रवर्तक होने के साथ, सामाजिक चेतना से प्रेरित आदर्शवादी कथाकार थे 'कल्कि'। वही लोकप्रियता, वही जीवन-दृष्टि, संघर्षों से जूझते हुए पत्रकारिता, साहित्य-सर्जन, सिद्धान्तों और मूल्यों के प्रति ईमानदारी, 'लिक्खाड' या 'कलमघसोटू' जैसे ईर्ष्याप्रेरित फतवे का वही निशाना, 'कलम के सिपाही' होने की सार्थक भूमिका, अमर रचनाओं की सर्जना से आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं उदाहरणीय बने रहना—इत्यादि तत्वों में 'कल्कि' प्रेमचन्द के बहुत निकट पाये जाते हैं।

यह दो पैरोंवाला जीव उसी वक्त आदमी बना जब उसने बोलना सीखा। समाज की बुनियाद भाषा है। भाषा का सीधा संबंध हमारी आत्मा से है। भाषा हमारी आत्मा का बाहरी रूप है। उसके एक-एक अक्षर में हमारी आत्मा का प्रकाश है। भाषा सदियों तक हमारा साथ देती रहती है और जितने लोग हमज़बान हैं, उनमें एक आत्मीयता, एक निकटता का भाव जगाती रहती है। मनुष्य में मेल डालनेवाला रिश्ता भाषा का है।

—**प्रेमचन्द** (1934 में)

बेंगलूर जोन दूसरा हिन्दी प्रचार और प्रचारक सम्मेलन, बेंगलूर

प्रचारक बन्धु यह सुनकर खुश होंगे कि बेंगलूर ज़ोन के (बेंगलूर, कोलार तुमकूर, हासन, चित्रदुर्ग और शिमोगा जिल्ले) हिन्दी प्रचार और प्रचारक सम्मेलन ता. 20 जुलाई 1980 को सभा की ओर से बेंगलूर सभा-भवन में संपन्न होगा। श्री जि. बि. शंकर राव ने (शिक्षामंत्री, कर्नाटक सरकार) सम्मेलन का उद्घाटन करना मंजूर किया है।

श्री ए. पी. सी. वीरबाहु (द्वितीय उपाध्यक्ष, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा) उद्घाटन समारोह का अध्यक्षसन ग्रहण करेंगे। श्री वे. राधाकृष्णमूर्ति, प्रधान सचिव और कई हिन्दीसेवी सदस्य भाषण देंगे। बेंगलूर ज़ोन में काम करनेवाले हिन्दी प्रचारक तथा हिन्दी-प्रेमी इसमें भाग लेंगे। दीर्घकालीन हिन्दी प्रचारकों का सम्मान किया जाएगा (सभा की हीरक जयंती के उपलक्ष्य में)।

सभी हिन्दी प्रेमियों तथा हिन्दी प्रचारकों से प्रार्थना है कि इसमें भाग लेकर तथा स्वागत समिति के सदस्य एवं प्रतिनिधि बनकर तथा दूसरों को भी बनाकर कर्नाटक में हिन्दी प्रचार को और भी तीव्र एवं गतिशील बनाने में अपना योगदान देकर अनुग्रहीत करें। बाकी विवरण सभा कार्यालय में प्राप्त कर सकते हैं।

सर्वश्री कटील गणपति शर्मा,
के. एस. उपाध्याय, एस. रेवण्णा,
बी. एस. वज्रनाथ,
के. पार्वती
सम्मेलन के सचिव

श्री सीताशरन शर्मा,
अध्यक्ष, सलाहकार समिति

श्री पा. वेंकटाचारी, सचिव

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

ग्रंथालय

हिन्दी प्रेमी, पाठकगण व प्रचारक आदि सज्जनों से निवेदन है कि वे केन्द्र सभा के ग्रंथालय की पुस्तकों का उपयोग अध्ययन के लिए करें। क़रीब 20,000 पुस्तकें केन्द्र सभा के ग्रंथालय में हैं। पुस्तकपाल से विवरण प्राप्त कर सकते हैं।

पुस्तकपाल
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, ग्रंथालय
त्यागरायनगर, मद्रास-600 017

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (तमिलनाडु)

तिरुच्चिराप्पल्ली - 620 017

नयी कार्यकारिणी समिति का चुनाव

29-6-1980 की व्यवस्थापिका समिति की बैठक में नयी कार्यकारिणी समिति के सदस्यों का चुनाव किया गया। व्यवस्थापिका समिति की कारंवाई 2 के अनुसार निम्नांकित सदस्य कार्यकारिणी समिति में चुने गये—

अध्यक्ष

1. श्री ए. पी. सी. वीरबाहु
121, ग्रेट काट्टन रोड़,
तूत्तुक्कुडी-628 001

उपाध्यक्ष

2. डॉ. टी. अमिरुद्दीन अहमद
प्रथम उपाध्यक्ष,
तेन्नूर हाई रोड़,
तिरुच्चिराप्पल्ली-17

3. श्री एन.पी.एस.एस. रत्न नाडार
द्वितीय उपाध्यक्ष,
मैनेजिंग पार्टनर,
ओरियंट लित्तो प्रेस,
मुण्डख नाडार स्ट्रीट,
शिवकाशी-626 123

कोषाध्यक्ष

4. श्री एन. आर. वेणुगोपाल
31, पाण्डियन पिल्लै लेन,
आण्डार स्ट्रीट,
तिरुच्चिराप्पल्ली-620 002

सदस्य

5. श्री सी. रामनाथन
7, विघ्नेश्वरा लाड्ज,
13, दानप्प मुदली स्ट्रीट,
मदुरै-625 001

6. श्री एम. वी. तुलसीराम
45, खानपालयम, चौथी गली,
मदुरै-625 009

7. श्री मेघराज जैन
2, कल्ल स्ट्रीट,
तिरुच्चिराप्पल्ली-620 008

8. श्री एन. आदिशेषन
24, तेन्नूर हाई रोड़,
तिरुच्चिराप्पल्ली-620 017

9. श्री एस. चन्द्रमौली
22, प्रतापसिंहपुरम कालनी,
तंजाऊर-613 001

10. श्री खादी ए. नटेशन
50, कोसक्कडै स्ट्रीट,
पाण्डिच्चेरी-605 001

11. श्री के. के. नटराजन
रमा कफे,
बिग कांचीपुरम-631 502

12. श्री एस. अरुणाचलम
अड्वोकेट,
37, मेइन रोड़,
पुदुपालयम, कडलूर-607 001

13. श्री एस. षण्मुखम
बाल निलयम,
आरलवाय्मोषी, कुमरी ज़िला

14. श्री के. तंगवेलु, (एक्स. एम.सी.)
42, वैयापुरी मुदली स्ट्रीट,
अम्मापेट, सेलम-636 003

15. श्री जी. रंगनाथन,
156, शेवापेट मेइन रोड,
सेलम - 636 002

16. श्री एम. मुनुस्वामी
8, बाम्बे कासिल,
ऊटी - 643 001

17. श्री बी. चिन्नैयन,
27, बिग चेट्टी स्ट्रीट,
उरैयूर, तिरुच्ची - 620 003

18. श्री एस. सदाशिवम,
24/423-ए, ओप्पणक्कार स्ट्रीट,
कोयम्बत्तूर - 642 001

19. श्री एन. के. रामकृष्णन,
5-ए, परमेश्वरन पिल्लै लेन,
नार्थ मासी स्ट्रीट,
मदुरै - 625 001

20. श्री आर. नारायणस्वामी,
26-27, अरिज्ञर अण्णा नगर,
कूत्तपाक्कम् - 607 401
(वया) तिरुवेण्डीपुरम

(ह) वी. एस. राधाकृष्णन
सचिव

सभा के अहाते में विद्यार्थी मेला

(10 अगस्त, 1980)

मद्रास महानगर के हिन्दी परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी भाषण-माला

बड़ी आतुरता से इस कार्यक्रम की प्रतीक्षा बनी रहती है—न केवल प्रचारक-प्रचारिकाओं की तरफ़ से, छात्र-छात्राओं की तरफ़ से भी। वही विद्यार्थी मेला—बड़ा स्पृहणीय हिन्दी मेला।

आगामी 10 अगस्त, 1980 (रविवार) सुबह 10-00 बजे से शाम 4-30 बजे तक। अनुभवी अध्यापक-अध्यापिकाओं से परीक्षोपयोगी भाषण-माला करायी जायेगी।

प्रत्येक विद्यार्थी से 50 पैसे दान के तौर पर लिये जायेंगे।

अनुभवी प्रचारक बन्धुओं से प्रार्थना है कि अपना अध्यापन-सहयोग दें; अपने विद्यार्थियों को यहाँ भेजें और इस हिन्दी मेले को सफल बनावें। यह सभा की सेवा है—मतलब, आपकी सेवा है, हिन्दी की सेवा है।

आवश्यक जानकारी के लिए कृपया नगर कार्यालय से संपर्क करें।

—नगर सचिव

प्रेमचन्द के जीवन-प्रसंग

1880 शनिवार, 31, जुलाई को बनारस से चार मील दूर लमही गाँव में प्रेमचन्द का जन्म हुआ। शुरू का नाम धनपतराय था। बाद में प्रेमचन्द के नाम से मशहूर हुए। पिता का नाम था मुंशी अजायब लाल और माता का नाम आनन्दी।

1885 प्रेमचन्द का पांचवाँ साल, मौलवी साहब उर्दू पढ़ाने लगे। दूसरे लड़कों के साथ मौलवी साहब के यहाँ हाज़िर होना पड़ता था, जो एक तरह का अनुशासन था और बालक धनपतराय को नागवार लगा था। मनमानी चीज़ें खाने के लिए उनका जी बुरी तरह तरसता।

1888 उनकी माँ चल बसीं। उनका बचपन गरीबी की दास्तान बन गया।

1895 हाई स्कूल में भर्ती होने के लिए बनारस आये। इसी वर्ष उनका विवाह कर दिया गया। दुलहन घर में आयी जो न रूपवती थी, न मुँह की मीठी ; सौतेली माँ के कारण दुलहा भी दुखी, दुलहन भी दुखी।

1896 पिता चल बसे। स्कूल में प्रेमचन्द की फ़ीस माफ़ कर दी गयी थी। सबेरे आठ बजे लमही से चलते। बनारस में दिन-भर पढ़ते ; शाम को एक लड़के को पढ़ाने जाते, फिर छे बजे पैदल चलकर आठ बजे लमही [illegible]ो, घर का खर्च उधार पर चलता।

मेट्रिक्युलेशन में सेकिंड डिवीज़न आया। अव्वल दर्जे में आते तो कालेज में फ़ीस माफ़ हो सकती थी। सिफ़ारिश से भी काम न बना। कालेज में भर्ती न हो सके। पर पढ़ने की धुन न मिटी। पुस्तकालय में जाकर खूब कहानी-उपन्यास पढ़ते।

1899 बहुत कोशिश करने के बाद एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापक का काम मिला, अठारह रुपये वेतन।

1901 उर्दू में पहला उपन्यास 'हम खुरमा, हम सवाब' प्रकाशित हुआ। लेखक का नाम धनपतराय छपा।

1902 ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद में भर्ती हो गये।

1904 कानपुर से प्रकाशित होनेवाले उर्दू मासिक 'ज़माना' के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम के संपर्क में आये। अगले साल से 'ज़माना' में धनपतराय के नाम से लेख प्रकाशित होने लगे। ट्रेनिंग समाप्त होने के बाद एक माडल स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हुए।

1907 'ज़माना' में पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' प्रकाशित हुई।

1908 ज़िला हमीरपुर के अंतर्गत महोबा में ज़िला बोर्ड के सब-इन्सपेक्टर नियुक्त हो गये। इस बीच में उनका पहला उर्दू कहानी संग्रह 'सोज़ेवतन' प्रकाशित हुआ। लेखक: नवाबराय; मूल्य: पाँच आने; प्रकाशक, ज़माना प्रेस, कानपुर। 'सोज़ेवतन' की एक-एक कहानी (कुल पाँच कहानियाँ) देशप्रेम की प्रतीक थी। कलेक्टर ने पता चलाकर लेखक को बुला भेजा और कहा, "अगर अंग्रेज़ी राज में तुम न होते तो आज तुम्हारे दोनों हाथ कटवा लिये गये होते। तुम्हारे पास जितनी कापियाँ हों, उन्हें मेरे पास भेज दो। आइन्दा फिर कभी लिखने का नाम न लेना।" परन्तु वे बराबर लिखते रहे, नवाबराय की बजाय उन्हें 'प्रेमचन्द' के रूप में प्रस्तुत किया गया।

1910 खानगी तौर पर पढ़कर बी. ए. पास कर लिया।

1915 दौरों पर जाने का काम कठिन हो गया, पेचिश का रोग सताने लगा। मुदर्रिसी की दरख़ास्त देकर सरकारी स्कूल में अध्यापक बन गये। इन्हीं दिनों सुविख्यात कहानी 'पंच परमेश्वर' लिखी; आम जनता के साथ सम्पर्क गहरा होता गया।

1916 'सेवासदन' उपन्यास का प्रकाशन जो उर्दू उपन्यास 'बाज़ारे हुस्न' का रूपान्तर था। उर्दू में यह उपन्यास 'सेवासदन' के प्रकाशन के बाद ही प्रकाशित हुआ।

1918 गोरखपुर में श्री महावीर प्रसाद पोद्दार से परिचय हुआ। उनकी प्रेरणा से प्रेमचन्द हिन्दी में भी लिखने लगे।

1920 असहयोग आंदोलन के सिलसिले में गोरखपुर में गांधीजी ने दो लाख श्रोताओं के सम्मुख भाषण दिया था, एक श्रोता प्रेमचन्द भी थे। कुछ

महीनों के बाद सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दी। इस संबंध में उन्होंने लिखा, "महात्माजी के दर्शनों का यह प्रभाव था कि मुझ-जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा।" फिर लमही में रहकर स्वतंत्र लेखन में जुट गये।

1924 लखनऊ में 'रंगभूमि' का प्रकाशन आरंभ हो चुका था। प्रेमचंद वहीं थे।

1929 अब 'माधुरी' पत्रिका के सम्पादन का दायित्व उन्हें सौंपा गया। साहित्यकार के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच रही थी। युक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश) के गवर्नर ने अपने एक मित्र के द्वारा प्रेमचन्द से कहलवाया कि सरकार उन्हें 'राय साहब' का खिताब देना चाहती है। उन्होंने खिताब की बात हँसी में उडा दी और अपनी विचार-स्वतंत्रता को बेचने से इनकार कर दिया।

1930 'माधुरी' सम्पादन के साथ-साथ जनवरी में सरस्वती प्रेस, बनारस से 'हंस' का सम्पादन आरंभ किया। नये लेखकों को प्रोत्साहन देने की नीति को 'हंस' में प्रारंभ से ही अपनाया। उन दिनों प्रेमचन्द 'गबन' लिख रहे थे।

1934 एक फ़िल्म कंपनी के निमंत्रण पर बंबई चले गये—आठ हज़ार रुपये वार्षिक अनुबंध पर। लेकिन फ़िल्मवालों के साथ उनकी विचारधारा मेल न खा सकती थी। कर्ज चुकाने की दृष्टि से वे एक साल पूरा करने के लिए मजबूर थे। इस वर्ष के आखिर दक्षिण की यात्रा पर निकले। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के दीक्षांत-भाषण करने मद्रास पधारे। बाद में बेंगलूर व मैसूर गये।

1935 बंबई से लौटकर लमही आये। 'हंस' का घाटा बर्दाश्त से बाहर हो गया था। इसलिए नया प्रबन्ध किया गया। प्रेमचन्द और कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के सम्पादन में 'हंस' अक्तूबर से भारतीय साहित्य परिषद की ओर से सरस्वती प्रेस से छपकर बम्बई से प्रकाशित होने लगा।

1936 'गोदान' उपन्यास का प्रकाशन। 'हंस' पर भारतीय साहित्य परिषद का अधिकार हो गया था। परिषद ने यह तय किया कि इसके मुद्रण और प्रकाशन की व्यवस्था दिल्ली में करेंगे। प्रेमचन्द को इससे मानसिक कष्ट हुआ। अप्रैल में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक-संघ के पहले

अधिवेशन के सभापति बनाये गये। इसके बाद लाहौर की साहित्यिक यात्रा की।

इसी वर्ष 25 जून को बनारस में एकाएक पेट में दर्द हुआ। तीन बार कै हुई, खून का दस्त आया। उस दिन से हालत बिगड़ती गयी, न पूरा खाना, न पूरी नींद। इन्हीं दिनों 'आज' कार्यालय में गोर्की की मृत्यु पर सभा हुई। गोर्की के विषय में इस सभा में उनका भाषण उनका अंतिम भाषण सिद्ध हुआ। 'मंगलसूत्र' उपन्यास लिखना आरंभ कर चुके थे। सितंबर के अंत में बीमारी का जोर बढ़ गया। पेट फूला रहता और अकसर बेहोश हो जाते।

7 अक्तूबर की रात को देर तक जैनेन्द्र कुमार से बातें करते रहे—'हंस' के बारे में, साहित्य के भविष्य के बारे में। सबेरा होते-होते अंतिम मूर्छा आयी और 8 अक्तूबर के दिन यह मानवतावादी, मूल्यजीवी, अनुभवसिद्ध, कर्मठ साहित्यकार की भौतिक काया चल बसी।

प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद भी प्रेमचन्द की परम्परा जीवित है और भारत के इस महान साहित्यकार की कीर्ति देश-विदेश में बहुत फैली है। वह अपनी युगप्रवर्तक रचनाओं के माध्यम से आज भी अजर-अमर हैं। स्वतंत्र भारत को, साहित्यप्रेमी समुदाय को अपने इस महान साहित्यकार पर सदैव गर्व रहेगा।

जाति-पाँति की भेद-भावनाएँ हमेशा सभ्यता पर प्रतिज्ञा लेती हैं। शायद वे अपना निजी रूप दिखाने में शरमाती हैं; बाघ वेषधारी गधा जानवरों को डराया और धमकाया जैसे है यह। अपने सुकर्मों और कुकर्मों के लिए ईश्वर का इनसाफ़ पसंद करते हैं सभ्यता की सुरक्षा करनेवाले। आज दुनिया-भर में एक ही सभ्यता व्यापित है। वह यही है, आर्थिक सभ्यता। लेकिन हम तो लगातार हिन्दू और मुसलमान सभ्यता का शंखनाद करते हैं और कर रहे हैं!

—प्रेमचन्द

मानवीय मूल्य, स्वाधीन व्यक्तित्व : कुछ छवियाँ

"मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने-भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है। मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वे ईमानदार, सच्चे और पक्के इरादे के हों। विलासी, धनी, खुशामदी संतान से मुझे घृणा है। मैं शांति से बैठना भी नहीं चाहता। साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ। हाँ, रोटी-दाल और तोला-भर घी और मामूली कपड़े मयस्सर होते रहें।..."

मुंशी प्रेमचन्द

(प्रेमचन्दजी के 3 जून, 1930 के पत्र का अंश)

प्रेमचन्द को दलबंदी से भी कोई सरोकार न था और न किसी विशेष राजनीतिक दल से नत्थी हो जाना पसंद करते थे। वे चाहते थे कि जैसे भी संभव हो, देश उन्नति करे। असहयोग के अंतिम दिनों में जब स्वराज्य पार्टी स्थापित हुई, तो प्रेमचन्द से मैंने पूछा कि आपकी सद्भावनाएँ किस ओर हैं? इसके उत्तर में 17 फ़रवरी, 1923 को प्रेमचन्दजी लिखते हैं—

"आपने मुझसे पूछा है कि मैं किस पार्टी में हूँ। मैं किसी पार्टी में नहीं हूँ। इसलिए कि इस वक्त दोनों में कोई पार्टी कुछ अमली काम नहीं कर रही है। मैं उसी आनेवाली पार्टी का मेम्बर हूँ जो जनता की सयासी तालीम को अपना कार्यक्रम

बनाये। स्वराज्य खिलाफ़त पार्टी की तरफ़ से जो कांस्टीट्यूशन (नियम-विधान) निकला है, उससे अलबत्ता मुझे पूर्ण सहमति है। मगर ताज्जुब यही है कि यह एक पार्टी से क्यों निकला। मेरे ख्याल में दोनों ही पार्टियाँ इस मामले में सहमत हैं।"

वाकई प्रेमचन्द की गहरी ख्वाहिश है कि देश की जनता उभरे और देश में स्वतंत्रता और समृद्धि का राज्य हो। इसी कसौटी पर वे धर्म, राजनीति, शिक्षा और साहित्य को देखते और परखते थे। आगे चलकर स्थितियों को परखकर प्रेमचन्द का राजनीतिक रुझान गर्म दल की ओर था। अहमदाबाद कांग्रेस देखने हम लोग साथ ही साथ गये और एक ही स्थान पर ठहरे। हर वक्त बहस रहती, मगर दोनों अपनी जगह अटल रहे।

(श्री मुंशी दयानारायण निगम के संस्मरण 'प्रेमचन्द की बातों' से)

दक्षिण के एक हिन्दी प्रेमी चन्द्रहासन प्रेमचन्द से मिलने काशी आये। पता लगाकर शाम के वक्त उनके मकान पर पहुँचे। बाहर थोड़ी देर ठहरकर खाँ-खूँ करने पर भी कोई नज़र न आया, तो दरवाज़े पर आये और झाँककर भीतर कमरे में देखा। एक आदमी, जिसका चेहरा बड़ी-बड़ी मूँछों में खोया हुआ-सा था, फ़र्श पर बैठकर तन्मय भाव से कुछ लिख रहा था। आगंतुक ने सोचा, 'प्रेमचन्दजी शायद इसी आदमी को बोलकर लिखाते होंगे।' आगे बढ़कर कहा, "मैं प्रेमचन्दजी से मिलना चाहता हूँ।"

उस आदमी ने झट नज़र उठाकर ताज्जुब से आगन्तुक की ओर देखा, कलम रख दी, और ठहाका लगाकर हँसते हुए कहा, "खड़े-खड़े मुलाकात करेंगे क्या! बैठिये और मुलाकात कीजिये।..."

प्रेमचन्द दक्षिण यात्रा के दौरान मैसूर गये। उत्साही हिन्दी प्रचारक हिरण्मय आदि साथ गये। एक रोज़ शाम को हिरण्मय मुंशी प्रेमचन्द को प्रोफ़ेसर सी. आर. नरसिंह शास्त्री के यहाँ ले गये। प्रोफ़ेसर शास्त्री उन दिनों मैसूर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के प्रधान थे और बड़े धुरंधर पंडित थे। मुंशीजी से मिलने के लिए उन्होंने अपने और भी कुछ मित्रों को बुला लिया था। परिचय और कुशलक्षेम के बाद जैसे ही बातचीत शुरू हुई, शास्त्रीजी ने संस्कृत में काव्य-चर्चा छेड़ दी। मुंशीजी बड़ी विपत्ति में फँसे, संस्कृत से उनकी भेंट न थी। लेकिन इतने लोगों और बिलकुल अनजान लोगों के आगे अपनी अज्ञता खोलते भी

न बनती थी। बड़ी मुसीबत का सामना था। भीतर ही भीतर मुंशीजी के पसीना छूट रहा था, लेकिन ऊपर से शान्त-सौम्य बने हुए वह हाँ-हूँ और जब तब एक-दो गोलमोल वाक्यों से बातचीत में योग देकर जैसे-तैसे अपनी लाज बचा रहे थे। और शास्त्रीजी थे कि श्लोक पर श्लोक पढ़कर धुआँधार बोले जा रहे थे।

आखिर जब लौटने का वक्त हुआ और ये दोनों (हिरण्मय और प्रेमचन्द) आकर घोड़ागाड़ी में बैठे और ज़रा आगे निकल गये तो मुंशीजी ने झूठा गुस्सा दिखलाकर हिरण्मय से कहा, "क्यों जी, क्या तुम मुझे उल्लू बनाने के लिए इन संस्कृत पंडित के यहाँ ले आये थे? मेरे बाप-दादों ने संस्कृत नहीं पढ़ी, मैं करता भी तो क्या करता! बुरा फँसा आज। चलो, खुदा-खुदा करके बला टल गयी। अब आगे से तुम मुझे कहीं ले जाओ तो मुझे पहले ही बता देना कि हम लोग किस आदमी से और कैसे आदमी से मिलने जा रहे हैं।"

...और एक ज़ोर का ठहाका लगाया।

भञ्जन् मोह-महान्धकार वसतिं सद्‌वृत्तमुच्चैर्भजन्
वैदग्ध्यं प्रथयन् सुसज्जन-मनोवारां निधिं ह्लादयन्।
ध्वान्तोद्‌भ्रान्त-जनान् दिशन्ननुदिशं ध्वान्तप्रियान् शोभयन्
चन्द्रः कोऽपि चकास्त्यसावभिनवः श्रीप्रेमचन्द्रः सुधीः॥
प्रेमचन्द्रश्च चन्द्रश्च न कदापि समावुभौ।
एकः पूर्णकलो नित्यमपरस्तु यदा-कदा॥

(26 मार्च 1935 को श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचन्द को उपरोक्त प्रशस्ति के साथ शांतिनिकेतन में भाषण देने साग्रह आमंत्रित किया था। किन्तु न जाने, संकोच या ईगो (अहं) के कारण प्रेमचन्द वहाँ जाने से टालते-कतराते रहे।)

सन् 1924 की बात है। प्रेमचन्द लखनऊ में थे। कुछ सज्जन एक दिन अलवर नरेश की चिट्ठी लेकर आये, जो कहानी-उपन्यास के प्रेमी थे। चार सौ रुपये मासिक, साथ में मोटर, बंगला देने को लिखा था और सपरिवार बुलाया।

प्रेमचन्द ने राजा साहब के आदमियों से कहा, "मैं बागी आदमी हूँ, इसीलिए सरकारी नौकरी छोड़ दी थी।" राजा साहब को पत्र में लिखा, "...मैं इतने में ही अपना सौभाग्य समझता हूँ कि आप मेरे लिखे को ध्यान से पढ़ते हैं।"

(संकलन : '**मधुकर**')

अंतिम दिनों में प्रेमचन्द

" किनारे लग चुका हूँ "

पं. रामनरेश त्रिपाठी

मैं यह एक इच्छा लेकर गया था कि यदि प्रेमचन्दजी में चलने-फिरने की शक्ति हो, तो उन्हें सुलतानपुर ले जाता, जहाँ की आबहवा उनके बहुत मुआफ़िक पड़ती। पर वह तो करवट बदलने से भी लाचार थे। मुझे देखकर वह मुस्कुराये और धीरे से बोले, " किनारे लग चुका हूँ, पता नहीं कब नाव छोड़ दूं। "

और एक शेर पढ़ा जिसे वे इन दिनों अक्सर गुनगुनाया करते थे—

दरो दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं,
खुश रहो, अहले वतन, हम तो सफ़र करते हैं।

अब तो अन्तिम बिदा

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी, ' निराला '

हिन्दी के युगांतर-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रत्न, मानवता के उत्तम पुजारी, अन्तर्प्रान्तीय ख्याति के हिन्दी के प्रथम साहित्यक, प्रतिकूल परिस्थितियों से निर्भीक वीर की तरह लड़नेवाले, उपन्यास-संसार के एकछत्र सम्राट, रचना-प्रतियोगिता में विश्व के अधिक से अधिक लिखनेवाले मनीषियों के समकक्ष, आदरणीय श्रीमान् प्रेमचन्दजी आज महाव्याधि से ग्रस्त होकर शय्याशायी हो रहे हैं। कितने दुख की बात है, हिन्दी के जिन पत्रों में हम राजनीतिक नेताओं, बाबुओं के मामूली बुखार का तापमान प्रतिदिन पढ़ते रहते हैं, उनमें श्री प्रेमचन्दजा की, हिन्दी का महान उपकार करनेवाले प्रेमचंदजी की अवस्था की साप्ताहिक ख़बर भी हमें पढ़ने को नहीं

बात है। उन्होंने अपने साहित्यकों की ऐसी दशा नहीं होने दी कि वे हँसते हुए जीते और आशीर्वाद देते हुए मरते। इसी अभिशाप के कारण हिन्दी महारानी होकर अपनी प्रान्तीय सखियों की भी दासी है।...

मैं जब बाबू राजेन्द्र प्रसाद और पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्र के समादृत नेताओं को देखता हूँ और साथ-साथ मुझे श्री प्रेमचन्दजी की याद आती है, मेरा हृदय आनन्द और भक्ति से पूर्ण हो जाता है। मैं देखता हूँ, राजनीति के सामने साहित्य का सर नहीं झुका, बल्कि और ऊँचा है, केवल देखनेवाले नहीं हैं। हिन्दीभाषी मुझे अच्छी तरह जानते हैं। वे यह भी जानते होंगे, मेरे कानों में डंके की आवाज़ कम जाती है। जिस साधना से आदमी आदमी है, जिसके कारण नेता सम्मान पाते हैं, मैं उसीकी जांच करता हूँ। वहाँ प्रेमचन्दजी, दरिद्र प्रेमचन्दजी अपने अध्यवसाय से शिक्षा प्राप्त करनेवाले प्रेमचन्दजी, साहित्य की साधना में यहाँ-वहाँ भटकते फिरनेवाले प्रेमचन्दजी, फिर भी एकनिष्ठ होकर दिन पर दिन, महीने पर महीने, वर्ष पर वर्ष साधना करते रहनेवाले प्रेमचन्दजी बड़े, बड़े, बहुत बड़े हैं।...

कुछ दिन बीत गये। प्रेमचन्दजी के 'गोदान' की काफ़ी चर्चा हो रही थी। एक दिन सुना, प्रसादजी प्रेमचन्दजी से मिलने गये थे, वे सख्त बीमार हैं। फिर सुना, प्रेमचन्दजी एक्स-रे कराने के लिए (बनारस से) लखनऊ गये हैं। फिर मालूम हुआ, वे लखनऊ से वापस आ गये हैं। एक दिन पं. नन्ददुलारे वाजपेयी के साथ उन्हें देखने गया। वे बिछे पलंग पर बैठे हुए थे। श्रीमती शिवरानी देवी उनके लिए दवा तैयार कर रही थीं।... प्रेमचन्दजी दुर्बल थे। जलोदर का पूरा प्रकोप था, फिर भी एक वीर की तरह बैठे हुए वार्तालाप करते रहे। बड़ी जिन्दादिली, सुननेवालों पर उसका असर पड़ता हुआ, जैसे सुननेवालों को ही वे स्वास्थ्य पहुँचा रहे हों। मैं उस विजयिनी ध्वनि को तोल रहा था जिसका सर नीचा नहीं हुआ, जो हिन्दी की महाशक्ति है, और रह-रहकर दुर्बल, अस्थिशेष प्रेमचन्दजी को देख रहा था।...

..कुछ दिन और बीत गये। मैं उनसे मिलने गया। प्रेमचन्दजी ने आँखें खोलीं, मुझे देखा। बड़ी करुण दृष्टि। मैंने प्रणाम किया। पूछा, आप कैसे हैं। दोनों बाहों की ओर दृष्टि फेरकर उन्होंने कहा, "दखिये,..." बड़ा करुण स्वर। अत्यन्त दुर्बल बाहें। मुझे शंका हो चली। सिंह को गोली भरपूर लग गयी है। अब वह आवाज़ नहीं रही। मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठ

गया। कसे सभलगा ? ...मैं भरसक अपने को संभाल रहा था। मेरे हाथ का फूल वहीं छूटकर गिर गया।...

...दो-तीन दिनों के बाद मैं फिर उन्हें देखने गया। प्रेमचन्दजी वहीं चारचाई पर थे। रस्सी बाँधकर पर्दा कर रखा गया था। शिवरानीजी पर्दा हटाने लगीं। मैं प्रेमचन्दजी के सामनेवाली चारपाई की ओर बढ़ा तो एक महोदय ने कहा, "ज्यादा बातचीत मना है।" मैं अपने लक्ष्य पर चलकर बैठ गया। देखते ही मेरे होश उड़ गये। प्रेमचन्दजी ने हाथ जोड़कर कहा, "अब तो अंतिम विदा है।"

मैंने अपने ईश्वर से प्रार्थना की, "हे ईश्वर! केवल दस वर्ष।"

(इस दिन के बाद दस दिन भी ईश्वर ने प्रेमचन्द के लिए नहीं दिये।)

अंतिम विदा की सुबह

श्री अमृतराय

आठ अक्तूबर (1936 ई.) सुबह हुई। जाड़े की सुबह। सात-साढे सात का वक्त होगा।

मुँह धुलाने के लिए शिवरानी गरम पानी लेकर आयीं। मुंशीजी ने दाँत माँजने के लिए खरिया मिट्टी मुँह में ली, दो-एक बार मुँह चलाया और दाँत बैठ गये। कुल्ला करने के लिए इशारा किया, पर मुँह नहीं फैल सका। पत्नी ने उनको ज़ोर लगाते देखा, कुछ कहने के लिए...

पाँव तले ज़मीन खिसक गयी। कान में कोई कुछ कह गया।

घबराकर बोलीं, "कुल्ला भी नहीं कीजिएगा क्या ?"

वहाँ तो उल्टी साँस चल रही थी।

नवाब ने बेबस आँखों से रानी को देखा और दम उखड़ते-उखड़ते, रुकती-अटकती, कुएँ के भीतर से आती हुई-सी, भारी गूँजती आवाज़ में डूबते आदमी की तरह पुकारा, "रानी! ..."

रानी लपकीं कि शायद मेरे हाथ से कुल्ला करना चाहते है। रामकिशोर ने बीच में ही पकड़ लिया—"बहन, अब वहाँ क्या रखा है!"

लमही खबर पहुँची। बिरादरीवाले जुटने लगे।

अर्थी बनी। ग्यारह बजते-बजते बीस-पचीस लोग किसी गुमनाम आदमी की लाश लेकर मणिकर्णिका की ओर चले।

रास्ते में एक राह चलते ने दूसरे से पूछा, "के रहल?" (कौन है?)

दूसरे ने जवाब दिया, "कोई मास्टर था।"

उधर, बोलपुर में रवीन्द्रनाथ ठागोर ने धीमे से कहा, "एक रतन मिला था तुमको, तुमने खो दिया।

(संकलन: दक्षिणापथी)

"...मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन आरामदेह, सुहावने पहाडों की सैर के शौकीन हैं, उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी।"

—प्रेमचन्द

हमारे प्रिय प्रेमचन्दजी

व्यक्तित्व तथा कृतित्व के संदर्भ में

भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि लेखक

स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार तथा उपन्यास-सम्राट हैं। उनका जन्म जब हुआ था, तब हमारे देश के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में विप्लव की भावनाएँ उठ रही थीं। वे श्रावण बदी 10 संवत् 1937 (31 जुलई, 1880) को काशी के निकटस्थ लमही ग्राम में पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम अजायबराय तथा माता का नाम आनंदी देवी था। वे हिन्दी एवं उर्दू के मशहूर साहित्यकार हैं। उनका जन्म एक कायस्थ परिवार में हुआ। वे बड़ी तकलीफ़ों के बीच में मेहनती से बी. ए. में उत्तीर्ण हुए।

प्रेमचन्द एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कलाकार हैं। मनुष्य मात्र से उनका गहरा प्रेम था। वे जनता के लेखक तथा दीन-दुखियों के उद्धारक थे। उन्हें व्यक्तिगत जीवन में बहुस-सी तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। यही नहीं, राजनैतिक आन्दोलनों के प्रभाव से उन्हें सरकारी नौकरी भी छोड़नी पड़ी। वे सच्चे कलाकार होने के कारण इन सभी को सहे, मगर अपनी कला को चाँदी के टुकड़ों के वास्ते कभी नहीं बेचे। उनका व्यक्तित्व बहुत गंभीर है।

प्रेमचन्द की बहुत-सी कहानियाँ अब हमारे सामने हैं। उनमें कफन, शांति, बडे घर की बेटी, दो सखियाँ, आत्माराम, बूढ़ी काकी, दो बैल, आदि कहानियाँ हिन्दी साहित्य के जगमगाते हुए रत्न हैं। कहानियों के अलावा उनके कुछ श्रेष्ठ उपन्यास भी हैं—गोदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, प्रतिज्ञा, निर्मला व सेवासदन। सेवासदन उनका प्रथम मौलिक उपन्यास है। ऐसे श्रेष्ठ उपन्यासों से ही हिन्दी का उपन्यास साहित्य उन्नति की चोटी पर पहुँच गया।

प्रेमचन्द जैसे उच्चकोटि के लेखक हिन्दी व उर्दू में ही क्या, संसार की किसी भी भाषा में गौरव पा सकते हैं। वे भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि कलाकार हैं। उनकी कृतियों में मनोरंजन, उपदेश एवं ज्ञान अधिक मिलता है, इस वजह से प्रेमचन्द का नाम हिन्दी-साहित्य में चिरस्थाई है।

—श्री सय्यद आगा हुस्सेन, बेन्डमूरलका

प्रेमचन्द—एक झलक

31 जुलाई कितनी ही बार आयी और गयी। कितनी ही बार आयेगी और जाएगी। परन्तु 31, जुलाई 1880 और 31, जुलाई 1980 इन दिनों का बड़ा महत्व है। 31, जुलाई 1880 स्वर्गीय प्रेमचन्द का जन्म दिन था और 31, जुलाई 1980 प्रेमचन्द का जन्म शताब्दी का दिन है। अतः ये दोनों दिन अपना महत्व रखते हैं।

प्रेमचन्द के साहित्य का हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान है। आपने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य की विभिन्न विधाओं का माध्यम बनाया। वे हिन्दी के उपन्यास-सम्राट ही नहीं, हिन्दी के कथा-शिल्पी की उपाधि से भी गौरवान्वित हैं। इसके अतिरिक्त उर्दू साहित्य के कथा-क्षेत्र में भी आपका एक पृथक महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में जैसे आपके दर्जन तक उपन्यासों का स्थायी-स्थान है वैसे ही आपकी लगभग तीन सौ कहानियों का यह महत्वपूर्ण स्थान है। आप तो उपन्यासकार, कहानीकार तथा निबंधकार भी थे। पर आपने तो अपने उपन्यासों तथा कहानियों के माध्यम से अपने समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व धार्मिक विचारधाराओं को व्यक्त किया है।

भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए राजनैतिक-क्षेत्र में राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने जो जो काम किया, वही काम प्रेमचन्द ने हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में करके भारतीय जनता में स्वतंत्रता की ज्योति लगायी। दोनों अपने काम में सफ़ल हुए।

ऐसे प्यारे प्रेमचन्द का नाम भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी अपना अनुपम स्थान रखता है। वे हिन्दी साहित्याकाश के एक ध्रुव नक्षत्र हैं। हिन्दी साहित्य में उनके नाम पर एक युग (प्रेवचन्द-युग) ही हो गया है। ऐसे कथा-शिल्पी तथा उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द का प्रिय नाम अमर रहेगा। ऐसे महान को प्राप्त कर सब भारतीय, विशेषकर हिन्दी प्रेमी गर्व का अनुभव करते हैं।

—**डॉ. एन. एस. रामसुब्रह्मण्यम**, कूनूर।

साहित्यिक ध्रुव तारा

प्रेमचन्दजी हिन्दी साहित्य में ध्रुव नक्षत्र के समान चमक रहे हैं। वे अमर हैं। कहानी, उपन्यास, निबंध और नाटक आपकी साहित्यिक देन हैं। इनका असली नाम धनपतराय था। इनके आठ वर्ष की आयु में माता और चौदह में पिता का देहान्त हुआ। किसी प्रकार एन्ट्रेन्स (मेट्रिक) पास करने के बाद ये गाँव के एक स्कूल में अध्यापक बने। आपने स्वाध्याय से बी.ए. पास कर लिया। शिक्षा-

विभाग में ये डिप्टी इन्सपेक्टर पद पर नियुक्त हुए। गांधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। पेट की लंबी बीमारी के कारण 8 अक्तूबर 1936 को प्रेमचन्द का देहान्त हो गया।

प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट हैं। इनके आगमन से उपन्यास और कहानी नयी मोड पाने लगी। इन क्षेत्रों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इनके उपन्यास में सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि मौलिक उपन्यास हैं। 'प्रतिज्ञा' अनूदित उपन्यास है। इनमें गोदान अधिक प्रसिद्ध है। अंग्रेज़ी में भी अनूदित हुआ है। इसी तरह वे सफल कहानीकार भी हैं। इनके बलिदान, आत्माराम, बूढी काकी, विचित्र होली, गृहदाह, हार की जीत, परीक्षा, आपबीती, उद्धार, सवासेर गेहूँ, शतरंज के खिलाडी, माता का हृदय, कजाकी, सुजान-भगत, इस्तीफा, अलग्योझा, फूस की रात, तावान, होली का उपहार, ठाकुर का उपहार, ठाकुर का कुआँ, बेटोंवाली विधवा, ईदगाह, नशा, बड़े भाई साहब, कफन आदि कहानियाँ कहानी-क्षेत्र में सुप्रसिद्ध हैं।

प्रेमचन्दजी आदर्शवादी और मानवतावादी थे। उनके उपन्यासों या कहानियों में कुछ न कुछ तत्व अवश्य मिलते हैं। मानव जीवन को उन्नति-मार्ग में ले जाना ही उनका लक्ष्य है। उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचन्द की देन अनेकमुखी हैं। चारों ओर फैले हुए जीवन के उतार-चढ़ाव और उलझाव, जटिल समस्याएँ—पराधीनता, किसानों का शोषण, अशिक्षा, दहेज की कुप्रथा, अन्ध-विश्वास, अस्पृश्यता, वेश्याओं की जिन्दगी, विधवा-समस्या आदि इनकी रचनाओं में इतिवृत्त बने हुए हैं।

प्रेमचन्द की कहानियाँ अपने आसपास की जिन्दगी से जुड़ी हुई हैं। उनकी अधिक कहानियाँ ग्रामीण जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। उन्होंने चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा और शैली, आदि में अपनी प्रतिभा दिखायी हैं। कहानी बोलने का ढंग निराला है। चरित्र-चित्रण की कला में नवीनता है। इनके पात्र मौलिक अधिक हैं।

—श्री अरिगेला वेंकटसुब्बय्या, गंगावरम्।

सारस्वत महामानव प्रेमचंद

हिन्दी का सौभाग्य है कि प्रेमचंद जैसे साहित्य-मनीषी मिले। जो चाहे साहित्यकार नहीं बन सकता। भावमथन से हृदय को तपाकर ही कोई साहित्य-सृष्टि कर सकता है। जगत से संवेदना ग्रहण कर, हृदय में संचित कर सामाजिक

[illegible] है। इसलिए साहित्यकार ऋषितुल्य है। "नानृषिः कुरुते काव्यम्।"

प्रेमचंद ने जीवन के हेर-फेर, उतार-चढाव देखे। निजी जीवन के लिए स्थिर रूप उन के लिए ऊँचा शिखर था। उन्होंने अपने जीवन के बारे में यों कहा, "मेरे पैरों में अष्ट धातुओं की बेडियाँ पडी हुई थीं, मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर।"

प्रेमचंद जीवन को कर्ममय देखते हैं। आनंद में उनकी आस्था थी। पीडित समाज पर सहानुभूति थी। सहानुभूति-जन्य आँसू की बूँद ने उनको मानवतावादी बना दिया। उसीके लिए लेखनी उठायी। उन्होंने जीवन के फूल व कांटे देखे। फूल को देख कर मुस्कुराये। कांटों की चुभन से मचल उठे। हृदय सागर-मंथन के विष को स्वयं पचाकर, समाज को अमृत दान कर शिव बने। समाज की गर्म आह को आत्मा में भर लिया। गरीब की उदर-ज्वाला से विकल हुए। विघ्न-बाधाओं को मौन से झेला। धन से दुश्मनी की। प्रगतिवादी साहित्य की ओर अग्रसर हुए। जनवादी सोच के अग्रणी थे।

प्रेमचंद को अपनी असफलताओं से एक आदर्श मिला। मानव अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करता है। संघर्ष में हारता तो निराश होकर जड-सा बन जाता है। उसी प्रकार प्रेमचंद के अनुभव अपने जीवन की भट्टी में गरम किये गये तप्त कांचन हैं। उनके साहित्य पर अपने अनुभवों की छाया जरूर पड़ी। प्रेमचंद गांधीवादी थे। पापियों व अपराधियों पर स्नेह-सहानुभूति और पाप व अपराध पर घृणा-द्वेष रखते थे। रवि बाबू और शरत के समान प्रेमचंद सारस्वत महामानव हैं।

—श्री चंगावरम् वासुदेवमूर्ति, सेवा मन्दिर

आदर्शोन्मुख यथार्थवादी

नव भारत के स्वप्नदर्शी, स्वनामधन्य, हिन्दी साहित्यमनीषी प्रेमचन्द जी के इस शताब्दी वर्ष में उनकी याद करना हमारा परम कर्तव्य है। मुंशी प्रेमचन्द के व्यक्तित्व व कृतित्व दोनों ही उनके लिए स्वयं हिन्दी कहानी साहित्य में अनुपम स्थान प्राप्त करने की नींव बने।

प्रेमचन्दजी का व्यक्तित्व असाधारण था। वे जितने निर्धन थे, उतने ही उदार, खुशदिल व्यक्ति थे। सादा रहन-सहन, सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों में बड़े ही उदार, बल्कि क्रांतिकारी विचार रखते थे। जाति-पाँति, छुआछूत,

अंधरूढ़ तथा धार्मिक संकीर्णता के आप कट्टर दुश्मन थे। हिन्दुस्तान की आज़ादी के पक्के पक्षपाती और गांधीवाद के बड़े विश्वासी प्रचारक थे। इस विषय में यह कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी कि भारतीय साहित्य में गांधीवाद का ऐसा सुन्दर क्रमिक विकास तथा समर्थन दूसरा कोई साहित्यकार नहीं कर सका है। निर्धनों की मूकवाणी को स्वर प्रदान करना अपने साहित्यक जीवन का परम लक्ष्य समझा था। स्वाभिमानी होते हुए भी वे सरल और विनम्र थे।

प्रेमचन्द हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त लेखक थे। अपनी ओजस्विनी लेखनी द्वारा अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की। वे धरती और जनता के कलाकार थे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं की विवेचना भी की है। सीधी-सादी, लेकिन असरदार भाषा, रोचक शैली और जीवन का आदर्शोन्मुख यथार्थवादी चित्रण ही लोकप्रियता का रहस्य है। उनकी कहानियों में अनेक वर्गों, जातियों के स्वभाव, संस्कार, व्यवस्था और मानसिक स्तर के पात्र हैं। चरित्रचित्रण भी सजीव, स्वाभाविक, पात्रानुकूल, कथानक को अग्रसर करनेवाले नये पात्रों के रूपायन में सहायक हैं। उनकी कृतियाँ पढ़कर हम दुनियावी सुध भूल जाते हैं।

श्रेष्ठ कथाकार प्रेमचन्दजी की सेवाओं का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। दुनिया में विरले ही ऐसी कोई भाषा हो जो इन साहित्यधनी की रचनाएँ उपलब्ध न हों। प्रेमचंदजी सही मानवतावादी लेखक थे।

—श्री रंगस्वामी, पोन्मलै

सेवाव्रती श्री प्रेमचंदजी

उच्च कोटि के सुप्रसिद्ध अग्रगण्य उपन्यास सम्राट, हिन्दी साहित्य जगत के चिरस्मरणीय कहानीकार श्री प्रेमचंद का जन्म बनारस के लमही में 1880 में हुआ। उनका असली नाम धनपतराय था, मगर प्रेमचंद नाम से उपन्यास लिखने लगे। बी. ए. करके उपन्यास व कहानी रचना करने लगे। सरकारी नौकरी करते करते सत्याग्रह से प्रभावित होकर उसे छोड़ दिया। 1923 में सरस्वती प्रेस व 1930 में हँस की स्थापना की। अक्तूबर 1936 में उनका निधन हो गया। वे सद्व्यवहार व सद्विचार के लेखक थे। उनका व्यक्तित्व सजीव, दिग्दर्शन, उत्कृष्ट व आदर्शक था। उनकी बुद्धि कल्पनाकुशल, सूक्ष्मतम भावों से आतप्रोत है।

उपन्यास के प्रमुख सात तत्व—कथानक, पात्र, चरित्रचित्रण, संवाद, वातावरण, विचार और भाषा-शैली तथा, उपन्यासकार के चार प्रमुख गुण प्रतिभा, साहित्य व इतिहास का अध्ययन, व्यावहारिक ज्ञान, सहृदयता आदि अनुपम लक्षण

उनमें मौजूद हैं। उनकी रचना-कृतियों में अधिकतर सामाजिक, दीनदलित वगैरा की समस्याएँ निपटाने के रास्ते पाठकों के सामने प्रस्तुत होते चलते हैं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना, रहस्यों को खोलना व उन्नति की ओर ले जाना उनके कृतित्व के अचूक तत्व हैं। रंगभूमि, गबन, सेवासदन आदि उनके रचनात्मक तत्व, सर्जनात्मक दक्षता, समाज-सुधारक, सेवारत तत्वों के प्रतीक हैं। मानवीय प्रवृत्तियों की छटा ईश्वरीय तत्वों द्वारा साहित्य जगत में, पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में वे सिद्धहस्त थे। उनके रचना-विधान में मधुरता, स्वाभाविकता, वास्तविकता, प्रभावोत्पादकता, भावयुक्त तत्परता, प्राचीन व वर्तमान की समन्वयता, मनोरंजन लिये आत्माविष्कार-गुण, विशिष्ट उद्देश्यों का स्पष्टीकरण यथार्थ व आदर्श की सामंजस्यपूर्ण एकता, प्रसंगानुरूप वर्णन, प्रमुख स्थान पा सके हैं, जिनके द्वारा उन्होंने हिन्दी भाषा साहित्य संपदा की श्रीवृद्धि की।

—श्रीमती जे. एल. साम्राज्यम्, बापटला

प्रेमचंद की शाश्वत देन

प्रेमचंद का असली नाम धनयतराय था। उर्दू में नवाबराय और हिन्दी में प्रेमचंद के नाम से मशहूर हुए। पिता डाकखाने में क्लर्क थे। आपके छः साल की उम्र में ही माता कूच कर गयीं तो चौदह साल की उम्र में पिता भी स्वर्ग सिधारे। आरंभ में उन्होंने उर्दू, फारसी की शिक्षा पायी। बहुत पेट काटकर आप धीरे-धीरे दसवीं कक्षा पास करके 18 रुपये मासिक पर मदरसे में मास्टर का काम करते थे। असहयोग आंदोलन में एकमात्र जीविका का आधार वह नौकरी की भी तिलांजली दे दी। बाद में कुछ काल 'माधुरी' पत्रिका के संपादक रहे और थोडे दिन सिनेमा-कंपनी में नौकरी की।

अमर साहित्यकार प्रेमचंद जाति-पांति, छुआछूत, अंधरूढ़ि के कट्टर दुश्मन थे। हिन्दुस्तान की आजादी के पक्के पक्षपाती और गांधीवाद के बड़े विश्वासी हिन्दी प्रचारक थे। इस विषय में कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी कि भारतीय साहित्य में गांधीवाद (दरिद्र-नारायण की पूजा) का ऐसा सुंदर क्रमिक विकास तथा समर्थन दूसरा कोई साहित्यकार नहीं कर सका। आप गरीब थे, गरीबी ने ही उनका पालन करके कंगाल जनता का भारी वकील बनाया था। कंगाली में उत्पन्न होने के कारण ही उनकी कहानी, उपन्यास आदि में मानवीय प्रेम उभर आया है।

प्रेमचन्दजी ने हिन्दी के ही नहीं, भारतीय साहित्य के प्राण हैं। प्रेमचन्द की हिन्दी सेवा बहुमूल्य, अपार, व अनुकरणीय है। आपके हिन्दी गद्य में शैली की

उनकी समता नहीं कर सकते। लेकिन दोनों अपने-अपने क्षेत्र में सफल और महान हैं।

निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि किसीने प्रास के मोह में पड़कर 'सूर सूर तुलसी ससी' की यह उक्ति कह डाली हो। न सूर ही तुलसी हो सकते हैं, न तुलसी ही सूर। लेकिन ऐसा कहना उचित लगता है कि दोनों भक्त महाकवि माता भारती के दो नेत्र हैं, जिनपर हिन्दी-भाषी जनता और साहित्य को गर्व है।

—श्री वेदाल अप्पलाचार्युलु, चोडावरम।

सभा के अहाते में विद्यार्थी मेला

(10 अगस्त, 1980)

मद्रास महानगर के हिन्दी परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी भाषण-माला

बड़ी आतुरता से इस कार्यक्रम की प्रतीक्षा बनी रहती है—न केवल प्रचारक-प्रचारिकाओं की तरफ़ से, छात्र-छात्राओं की तरफ़ से भी। वही विद्यार्थी मेला—बड़ा स्पृहणीय हिन्दी मेला।

आगामी 10 अगस्त, 1980 (रविवार) सुबह 10-00 बजे से शाम 4-30 बजे तक। अनुभवी अध्यापक-अध्यापिकाओं से परीक्षोपयोगी भाषण-माला करायी जायेगा।

प्रत्येक विद्यार्थी से 50 पैसे दान के तौर पर लिये जायेंगे।

अनुभवी प्रचारक बन्धुओं से प्रार्थना है कि अपना अध्यापन-सहयोग दें, अपने विद्यार्थियों को यहाँ भेजें और इस हिन्दी मेले को सफल बनावें। यह सभा की सेवा है—मतलब, आपकी सेवा है, हिन्दी की सेवा है।

आवश्यक जानकारी के लिए कृपया नगर कार्यालय से संपर्क करें।

नगर सचिव

और कहानियों द्वारा इन सब स्थिति-गतियों का जीता-जागता चित्र हमारे सामने उपस्थित किया। उन्होंने अपनी क्रांतिपूर्ण भावनाओं से इनकी उलझनों से मुक्त होने का मार्ग भी दिखा दिया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कथा-साहित्य का आश्रय लिया और उसे एकदम उत्कर्ष की कोटि पर पहुँचा दिया। उन्होंने साबित किया कि इस युग में कथा माध्यम की अधिक उपयोगिता है।

आपका हृदय सुविशाल था। आचार की पवित्रता, सेवन की श्रेष्ठता, त्याग की महिमा, भूत दया इत्यादि मौलिक सिद्धांतों पर ही उनका समस्त जीवनदर्शन आधारित था। इनकी रचनाओं में निम्न और मध्य श्रेणी के लोगों के जीवन की सच्ची झांकी मिलती है और चित्रण में इतनी स्वाभाविकता झलकती है कि वर्णित पाठकों की जान-पहचान के लोग हैं और वे आँखों के सामने हैं। आपकी भाषा उपमा और उत्प्रेक्षा से युक्त और अत्यन्त स्वाभाविक है। यद्यपि आपके वाक्य छोटे-छोटे हैं, तथापि इनमें सरलता और ओजस्विता है। मीठी चुटकियों का प्रयोग करना इनकी विशेषता है। इनके उपन्यासों में गोदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, सेवासदन, निर्मला इत्यादि मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

—श्री पी. सुब्रह्मण्यन नम्पूतिरी, पय्यनूर

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला

साहित्य और जीवन का घनिष्ठ संबन्ध है। यह सत्य हिन्दी साहित्य में सर्व-प्रथम श्री प्रेमचन्दजी के उपन्यासों तथा कथा-साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा गया है। इस दृष्टि से भी प्रेमचन्दजी के उपन्यास एक दर्पण के समान हैं, जिनमें हमारे समाज, परिवार तथा जीवन के स्वस्थ तथा अस्वस्थ चित्र दृष्टिगोचर होते हैं।

श्री प्रेमचन्दजी का उपन्यास-क्षेत्र अधिक विस्तृत है। उसमें किसानों और मज़दूरों का, व्यक्ति और समाज का तथा शोषक व शोषित का संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता 'मानवता की पुकार' है। वे मानवता के पुजारी हैं। उनके कला-क्षेत्र में साम्प्रदायिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। वे सबमें समान रूप से सुधार के पक्षपाती हैं।

उनके उपन्यासों में कला कला के लिए होते हुए भी जीवन की यथार्थता लिये हुए है। वे जीवन के सच्चे सुधारक और प्रचारक हैं। यही कारण है कि वे अनेक स्थानों पर केवल जीवन के उपदेष्टा ही रह गये। उनके पात्र सुधारक ही बन पाये हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास इसी कोटि का एक सुधारक है। उनके

उपन्यासों में किसी न किसी समस्या को उठाया गया है। यदि 'कायाकल्प' में मरणोत्तर काल का प्रश्न उठाया गया है, तो 'गबन' में पारिवारिक उतार-चढ़ाव का वर्णन है। 'सेवासदन' में स्त्रियों पर किये गये अत्याचारों के फलस्वरूप वेश्यावृत्ति की विवशता और उनके सुधार का आग्रह पाया जाता है। 'प्रतिज्ञा' में अनमेल विवाह समस्या तथा 'प्रेमाश्रम' में गृह-कलह के साथ ही साथ किसान और जमींदार की समस्या का प्रभावी चित्रण हुआ है। 'निर्मला' यदि अनमेल-विवाह की हानियों को लेकर चलता है, तो 'कर्मभूमि' में घर और बाहर का संघर्ष दिखाया गया है। 'गोदान' में प्रत्येक वर्ग का संघर्ष, अशिक्षा, कर्ज, विवाह की समस्याएँ तथा ग्रामीण और शहरी जीवन की तुलना की गयी है।

—श्री पि. दक्षिणामूर्ति, पाज़ोल

सार्वजनीन सहित्यकार

प्रेमचन्द का पहला नाम था धनपति राय। साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद आपका नाम प्रेमचन्द पड़ा। आरंभ में आप उर्दू में लिखा करते थे। हिन्दी में लिखना आरंभ कर आपने लग-भग दो सौ कहानियाँ लिखीं। आप एक ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार भी थे। आपकी कहनियों में मानव के सम्पूर्ण जीवन की मार्मिक स्थितियाँ प्रस्फुटित होती हैं।

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक दुराचारों का खण्डन किया। सेवासदन आपका प्रशस्त सामाजिक उपन्यास है। इसमें धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों की निंदा की गयी। 'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण समस्याओं का चित्रण किया गया है। इसमें किसानों की दुर्दशा, उनके ऊपर किये गये अत्याचारों का वर्णन भी किया गया। 'रंगभूमि' में लेखक ने खेती-बाडी के आवश्यक परिवर्तनों की सूचना दी। यह भी सूचित किया है कि किसानों के उद्धार के लिए उद्योग-धन्धों की ज़रूरत है। 'गबन' के द्वारा आपने यह बताना चाहा कि मध्यवर्गीय लोगों की स्थिति सुधारने के लिए न्यायालय, पुलिस की सहयता लेकर सरकार विफल होती है। 'गोदान' में ग्रामीण जन-जीवन विधान, किसानों की समस्याएँ, जमींदारों के अत्याचार, पूँजीपतियों की अमानुषता आदि यथार्थ चित्र अंकित किये गये हैं। कर्मभूमि' का मुख्य विषय स्वतंत्रता-आन्दोलन है।

इतना ही नहीं मर्यादा, माधुरी, हँस, जागरण जैसे पत्रिकाओं का सम्पादन कर आपने अपनी असाधारण सृजनशील प्रतिभा का परिचय दिया। खड़ी बोली

[illegible] है। मुहावरों, लोकोक्तियों के द्वारा हिन्दी भाषा-शैली को लोकप्रियता के साथ आगे बढ़ायी। अशिक्षितों के वार्तालाप में व्यावहारिक और शिक्षितों के संवाद में टकसाली भाषा का प्रयोग कर रचनाओं की रोचकता व स्तरीयता बढायी। प्रेमचन्द ने अभिव्यञ्जना-शैली को अपनाया। उनकी शैली में सर्वत्र सजीवता, भावावेश, चुभन-शक्ति प्रकट होते हैं।

—श्री पेंटा लक्ष्मण शर्मा, गुजराती पेटा, श्रीकाकुलम

महान आदर्शवादी साहित्यकार

प्रेमचन्दजी का जन्म पिता मुंशी अजाबराय और माता आनंदी देवी के यहाँ लमही नामक एक गाँव (बनारस के पास) में हुआ था। प्रेमचन्दजी का बचपन का नाम धनपतराय था और उन्हें खेल-कूद में बड़ा शौक था। 16 वर्ष की आयु में स्कूल में भर्ती हुए। बचपन में उर्दू के बडे-बडे उपन्यासकारों के उपन्यास पढ़ लिये थे। इसी शौक ने उनकी कल्पना और लिखाई पर गहरा प्रभाव छोडा।

हिन्दी के कथाकारों और उपन्यासकारों में प्रेमचन्दजी का नाम बहुत श्रेष्ठ माना जाता है। उन्हें इन दोनों भाषाओं पर समान रूप से अधिकार था। उन्होंने लगभग दस उपन्यासों और दो सौ से अधिक कहानियों की रचना की। उनके उपन्यासों में सेवासदन, गबन, गोदान, रंगभूमि, प्रेमाश्रम आदि हिन्दी साहित्य-संसार में मशहूर हैं। प्रेमचन्दजी के उपन्यास के समान कहानियाँ भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। उन्होंने मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन किया है। उनकी कहानियाँ बडी सरल, सरस और महत्वपूर्ण हैं। उनकी कहानियों में बडे घर की बेटी, पंचपरमेश्वर, कफन, शतरंज के खिलाडी, बेटी का धन आदि प्रमुख हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में अश्लीलता का चित्रण कहीं भी नहीं किया हैं। इसलिए उनकी कहानियों में कुछ-न-कुछ नीतिप्राधन सीख आवश्य मिलती है। प्रेमचन्दजी की कृतियों में चरित्र-चित्रण की कला अद्वितीय है।

प्रेमचन्दजी अपने उपन्यासों में दलित, दुखित और शोषित लोगों के जीते-जागते चित्रण किये हैं। ग्रामीण जीवन का सजीव वर्णन करने में आप सिद्धहस्त हैं। साथ-साथ समाज के व्यर्थ व झूठे बन्धनों पर मर-मिटनेवालों का चित्रण भी अपने उपन्यासों में यथावत किया है।

—श्री वेंकटेश जे. कुलकर्णी, हावेरी

अधिकार चिंता

मुंशी प्रेमचंद

टामी यों देखने में तो बहुत तगड़ा था। भूँकता तो सुननेवालों के कानों के परदे फट जाते। डील-डौल भी ऐसा कि अंधेरी रात में उस पर गधे का भ्रम हो जाता। लेकिन उसकी श्वानोचित वीरता किसी संग्रामक्षेत्र में प्रमाणित न होती थी। दो-चार दफ़े जब बाज़ार के लेंडियों ने उसे चुनौती दी तो वह उनका गर्व-मर्दन करने के लिए मैदान में आया; और देखनेवालों का कहना है कि जब तक लड़ा, जीवट से लड़ा, नखों और दांतों से ज़्यादा चोटें उसकी दुम ने की। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मैदान किसके हाथ रहता, किन्तु जब उस दल को कुमक मांगनी पड़ी, तो रण-शास्त्र के नियमों के अनुसार विजय का श्रेय टामी ही को देना उचित और न्यायानुकूल जान पड़ता है। टामी ने उस अवसर पर कौशल से काम लिया और दांत निकाल दिये; जो संधि की याचना थी। किंतु तब से उसने ऐसे सन्नीति-विहीन प्रतिद्वंद्वियों के मुँह लगना उचित, न समझा।

इतना शांति-प्रिय होने पर भी टामी के शत्रुओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती थी। उसके बराबरवाले उससे इसलिये जलते कि वह इतना मोटा-ताजा होकर इतना भीरू क्यों है। बाज़ारी इसलिए जलता कि टामी के मारे घूरों पर की हड्डियाँ भी न बचने पाती थीं। वह घड़ी रात रहे उठता और हलवाइयों की दूकानों के सामने के दोनों ओर पत्तल, कसाईखाने के सामने की हड्डियाँ और छीछड़े चबा डालता। अतएव इतने शत्रुओं के बीच में रहकर टामी का जीवन संकटमय होता जाता था। महीनों बीत जाते और पेट भर भोजन न मिलता। दो-तीन बार उसे मनमाने भोजन करने की ऐसी प्रबल उत्कंठा हुई कि उसने संदिग्ध साधनों द्वारा उसको पूरा करने की चेष्टा की; पर परिणाम आशा के प्रतिकूल हुआ और स्वादिष्ट पदार्थों के बदले अरुचिकर दुर्ग्राह्य वस्तुएँ भर पेट खाने को मिलीं—जिससे पेट के बदले कई दिन तक पीठ में विषम वेदना होती रही—तो उसने विवश होकर फिर सन्मार्ग का आश्रय लिया। पर डंडो से चाहे पेट भर गया हो, वह उत्कंठा शांत न हुई। वह किसी ऐसी जगह चाहता था, जहाँ खूब शिकार मिले; खरगोश, हिरन, भेड़ों के बच्चे मैदानों में विचर रहे हों और उनका कोई मालिक न हो; आराम करने को सघन वृक्षों की छाया हो, पीने को पवित्र नदी का जल। वहाँ मनमाना शिकार करूँ, खाऊँ और मीठी नींद

सोऊँ। वहाँ चारों ओर मेरी धाक बैठ जाय; सब पर ऐसा रोब बैठ जाय कि मुझी को अपना राजा समझने लगें और धीरे-धीरे मेरा ऐसा सिक्का बैठ जाय कि किसी द्वेषी को वहाँ पैर रखने का साहस ही न हो।

संयोगवश एक दिन वह इन्हीं कल्पनाओं के सुख स्वप्न देखता हुआ सिर झुकाये सड़क छोड़कर गलियों से चला जा रहा था कि सहसा एक सज्जन से उसकी मुठभेड़ हो गयी। टामी ने चाहा कि बचकर निकल जाऊँ, पर वह दुष्ट इतना शांतिप्रिय न था। उसने तुरंत झपट कर टामी का टेंटुआ पकड़ लिया।

टामी ने बहुत अनुनय-विनय की, गिड़गिड़ाकर कहा—ईश्वर के लिए मुझे यहाँ से चले जाने दो; कसम ले लो, जो इधर पैर रखूं। मेरी शामत आयी थी कि तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में चला आया। पर उस मदांध और निर्दय प्राणी ने ज़रा भी रिआयत न की। अंत में हारकर टामी ने गर्दभ स्वर में फरियाद करनी शुरू की। यह कोलाहल सुनकर मोहल्ले के दो-चार नेता लोग एकत्र हो गये; पर उन्होंने भी दीन पर दया करने के बदले उल्टे उसी पर दंत प्रहार करना शुरू किया। इस अन्यायपूर्ण व्यवहार ने टामी का दिल तोड़ दिया। वह जान छोड़कर भागा। उन अत्याचारी पशुओं ने बहुत दूर तक उसका पीछा किया, यहाँ तक कि मार्ग में एक नदी पड़ गयी और टामी ने उसमें कूदकर अपनी जान बचायी।

कहते हैं, एक दिन सबके दिन फिरते हैं। टामी के दिन भी नदी में कूदते ही फिर गये। कूदा या जान बचाने के लिए, हाथ लग गये मोती। तैरता हुआ उस पार पहुँचा, तो वहाँ उसकी चिर-संचित अभिलाषाएँ मूर्तिमती हो रही थीं।

यह एक विस्तृत मैदान था। जहाँ तक निगाह जाती थी, हरियाली की छटा दिखायी देती थी। कहीं नालों का मधुर कलरव था, कहीं झरनों का मंद गान; कहीं वृक्षों के सुखद पुंज थे, कहीं रेत के सपाट मैदान। बड़ा सुरम्य मनोहर दृश्य था।

यहाँ बड़े तेज नखों-वाले पशु थे, जिनकी सूरत देखकर टामी का कलेजा दहल उठता था। पर उन्होंने टामी की कुछ परवा न की। वे आपस में नित्य लड़ा करते थे; नित्य खुन की नदी बहा करती थीं। टामी ने देखा, यहाँ इन भयंकर जंतुओं से पेश न पा सकूँगा। उसने कौशल से काम लेना शुरू किया। जब दो लड़नेवाले पशुओं में एक घायल और मुर्दा होकर गिर पड़ता, तो लपक कर माँस का कोई टुकड़ा ले भागता और एकांत में बैठकर खाता। विजयी पशु विजय के उन्माद में उसे तुच्छ समझकर कुछ न बोलता।

अब क्या था, टामी के पौ-बारह हो गये। सदा दीवाली रहने लगी। न गुड़ की कमी थी, न गेहूँ की। नित्य नये पदार्थ उड़ता और वृक्षों के नीचे

आनंद से सोता। उसने ऐसे सुख स्वर्ग की कल्पना भी न की थी। वह मर कर नहीं, जीते जी स्वर्ग पा गया।

थोड़े ही दिनों में पौष्टिक पदार्थों के सेवन से टामी की चेष्टा ही कुछ और हो गयी। अब वह छोटे-मोटे जीवों पर स्वयं हाथ साफ़ करने लगा। जंगल के जंतु अब चौंके और उसे वहाँ से भगा देने का यत्न करने लगे। टामी ने एक नयी चाल चली। वह कभी किसी पशु से कहता, तुम्हारा फलाँ शत्रु तुम्हें मार डालने की तैयारी कर रहा है; किसीसे कहता, फलाँ तुमको गाली देता था। जंगल के जंतु उसके चकमे में आकर आपस में लड़ जाते और टामी की चाँदी हो जाती। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँची कि बड़े-बड़े जंतुओं का नाश हो गया। छोटे-छोटे पशुओं का उससे मुकाबला करने का साहस न होता था।

उसकी उन्नति और शक्ति देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो यह विचित्र जीव आकाश से हमारे ऊपर शासन करने के लिए भेजा गया है। टामी भी अब अपनी शिकायतबाजी के जौहर दिखाकर उनकी इस भ्रांति को पुष्ट किया करता था। बड़े गर्व से कहता—"परमात्मा ने मुझे तुम्हारे ऊपर राज्य करने के लिए भेजा है। यह ईश्वर की इच्छा है। तुम आराम से अपने घर में पड़े रहो। मैं तुमसे कुछ न बोलूँगा, केवल तुम्हारी सेवा करने के पुरस्कार स्वरूप तुममें से एकाध का शिकार कर लिया करूँगा। आखिर मेरा भी तो पेट है; बिना आहार के कैसे जीवित रहूँगा और कैसे तुम्हारी रक्षा करूँगा?" वह अब बड़ी शान से जंगल में चारों ओर गौरवान्वित दृष्टि से ताकता हुआ विचरा करता है।

टामी को अब कोई चिंता थी तो यह इस देश में मेरा कोई मुद्दई न उठ खड़ा हो। वह नित्य सजग और सशस्त्र रहने लगा। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते थे और सुख भोग का चसका बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों उसकी चिंता भी बढ़ती जाती थी। वह अब बहुधा रात को भौंक पड़ता, और किसी अज्ञात शत्रु के पीछे दौड़ता। अक्सर "अंधा कूकुर बतासे भूँके" वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करता। वन के पशुओं से कहता—"ईश्वर न करे कि तुम किसी दूसरे शासक के पंजे में फँस जाओ। वह तुम्हें पीस डालेगा। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ; सदैव तुम्हारी शुभ कामना में मग्न रहता हूँ। किसी दूसरे से यह आशा मत रखो।" पशु एक स्वर में कहते, "जब तक हम जियेंगे, आप ही के अधीन रहेंगे।"

आखिरकार यह हुआ टामी को क्षण भर भी शांति से बैठना दुर्लभ हो गया। वह रात-रात और दिन-दिन भर नदी के किनारे इधर से उधर चक्कर लगाया करता। दौड़ते-दौड़ते हाँफने लगता, बेदम हो जाता; मगर चित्त को शांति न मिलती। कहीं कोई शत्रु घुस न आये।

लेकिन क्वार का महीना आया तो टामी का चित्त एक बार फिर अपने पुराने सहचरों से मिलने के लिए लालायित होने लगा। वह अपने मन को किसी भांति रोक न सका। वह दिन याद आया जब वह दो-चार मित्रों के साथ किसी प्रेमिका के पीछे गली-गली कूचे-कूचे में चक्कर लगाता था। दो-चार दिन तो उसने सब्र किया, पर अंत में आवेग इतना प्रबल हुआ कि वह तकदीर ठोंक कर खड़ा हुआ। उसे अब अपने तेज़ और बल पर अभिमान भी था। दो-चार को तो वहीं मजा चखा सकता था।

किंतु नदी के इस पार आते ही उसका आत्मविश्बास प्रातःकाल के तम के समान फटने लगा। उसकी चाल मंद पड़ गयी आप ही आप सिर झुक गया, दुम सिकुड़ गयी। मगर एक प्रेमिका को आते देखकर वह विह्वल हो उठा; उसके पीछे हो लिया। प्रेमिका को उसकी वह कुचेष्टा अप्रिय लगी। उसने तीव्र स्वर से उसकी अवहेलना की। उसकी आवाज़ सुनते ही उसके कई प्रेमी आ पहुँचे और टामी को वहाँ देखते ही जामे से बाहर हो गये। टामी सिटपिटा गया। अभी निश्चय नहीं कर सका था कि क्या करूँ कि चारों ओर से उसपर दाँतों और नखों की वर्षा होने लगी। भागते ही बन पड़ा। देह लहूलुहान हो गयी। भागा भी, तो शैतानों का एक दल पीछे था।

उस दिन से उसके दिल में शंका-सी समा गयी। हर घड़ी यह भय लगा रहता कि आक्रमणकारियों का दल मेरे सुख और शांति में बाधा डालने के लिए मेरे स्वर्ग को विध्वंस करने के लिए आ रहा है। यह शंका पहले भी कम न थी। अब और बढ़ गयी।

एक दिन उसका चित्त भय से इतना व्याकुल हुआ कि उसे जान पड़ा, शत्रु दल आ पहुँचा। वह बड़े वेग से नदी के किनारे आया और इधर से उधर दौड़ने लगा। दिन बीत गया, रात बीत गयी; पर उसने विश्राम न लिया। दूसरा दिन आया और गया, पर टामी निराहार, निर्जल नदी के किनारे चक्कर लगाता रहा। इस तरह पाँच दिन बीत गये। टामी के पैर लड़खड़ाने लगे, आँखों तले अँधेरा छाने लगा। क्षुधा से व्याकुल होकर गिर-गिर पड़ता, पर वह शंका किसी भांति शांत न हुई। अंत में सातवें दिन अभागा टामी अधिकार चिंता से ग्रस्त, जर्जर और शिथिल होकर परलोक सिधारा। वन का कोई पशु उसके निकट नहीं गया। किसीने उसकी चर्चा तक न की; किसीने उसकी लाश पर आँसू तक न बहाये। कई दिनों तक उसपर गिद्ध और कौए मंडराते रहे; अंत में अस्थिपंजरों के सिवा और कुछ न रह गया।

कमीज

नरेन्द्र मौर्य, गढीपुरा, हरदा (म. प्र.)

पानी लगातार बरस रहा था। सामने मैं जहाँ तक देख सकता था, बस, पानी ही पानी था। अब पानी के साथ अंधड भी चलने लगा था, जो अंदर, हड्डियों तक को कंपा रहा था। मैं स्वयं को रजाई की तहों में छुपाये खिड़की के शीशे से बाहर झांक रहा था। पानी में डूबे हुए खेत, उनमें झांकते हुए झाडियों के सिर, गाँव की ओर लौटते हुए डूबते तैरते मवेशी को यों देखते-देखते ऊब चुका था।

शाम हो चली थी। पीछे कुएँ पर पानी भरनेवाली महिलाएँ भीगे वस्त्रों में बड़ी भली लग रही थीं। मेरा तात्कालिक सोच कुएँ के इर्द-गिर्द ही घूम रहा था। उठकर मैंने खिड़की के शीशे को टावल से साफ किया—और बाद में थोड़ी-सी खिड़की भी खोल ली। वैसे मेरे पास काम था। क्लास में देने के लिए नोट्स तैयार करने थे। कालेज की पत्रिका में छपने के लिए 'समय का सद्उपयोग' शीर्षक से निबंध लिखना था।

इस बार राखी की छुट्टियाँ कम ही थीं। पर मैं चार-पाँच सी.एल. भी जोड़ लिया था। पत्नी पहले ही अपने पिता के घर जा चुकी थी। फिर जमानें भर की कोशिशों के बाद अभी घर के नज़दीक ट्रांसफ़र हुआ था। पहले ही पिताजी की सूचना आ चुकी थी कि माँ कुछ व्रत आदि उजा रही है। यह एक उत्सव जैसा था—ज़िसमें पूजा पाठ, भोज आदि होते थे।

पिछले चार पाँच दिनों से लगातार बारिश हो रही थी। आज दोपहर में तो नदी ने अपनी सीमाएँ तोड़ दी। शाम पाँच बजे गाँव के बाहर की झग्गी झोंपड़ी बहने की ख़बर आ गयी। किन्तु हम आश्वस्त थे। हमारे मकान गाँव में सबसे ऊँचे पर बने हैं। फिर घर में पूजापाठ भी हो रहा था।

मैं अपने कमरे से निकल कर चौपाल में आया। आसपास के इलाके में बाढ़ से संभावित क्षति पर चर्चा हो रही थी। हाली सन कात रहे थे। सामने तक्त पर चौपड़ जमी थी। खिलाड़ी बड़े जोश में बारह छह अठारह की अपेक्षा कर रहे थे। बैंच पर कुछ बुजुर्ग फसलों के सत्यानाश होने का रोना रो रहे थे। यद्यपि पूजा के कमरे से आनेवाली प्रत्येक जय के साथ ही वे अपना हाथ ऊपर आसमान की ओर उठा देते—किसीने कुछ और झुग्गी बह जाने की ख़बर लाया। मेरा छोटा भाई समाचार की सत्यता की जानकारी करने दौड़कर छत पर पहुँचा। उसने बड़े उत्साह से चिल्लाकर बताया कि हाँ, बड़ा मजा आ रहा है।

रामा भैंस ले आया। भाई साहब भी उन्हें दाना चारा करवाने के लिए बाहर निकले। मैं भी चौपाल से गौशाला की ओर आया। रामा भैंसों को बाँध रहा था। भाई साहब ने टार्च से अंदर देखा, क्यों रे, छोटी नहीं आयी?

रामा ने इधर-उधर देखा—छोटी नहीं थी। छोटी एक भैंस थी, जो नदी के उस पार रह गयी थी।

भाई साहब गरजे, "तेरी माँ को उस पार ही छोड़ आया होगा—जा, अभी उस भैंस को लेकर आ—नहीं तो आज तेरा दूध दुहूँगा।"

रामा कांप रहा था। इस जान लेवा झांनटे में भी उसके पास टाट की घुंघटी भर थी। किन्तु भाई साहब का स्वभाव वह जानता था। 'न' का तात्पर्य था अपने हाथ पांव तुड़वाना। वह चुपचाप वापस चल दिया। मैं भी दिन भर कमरे में बैठे-बैठे ऊब गया था। अतः उसके पीछे-पीछे चुपचाप छाता लगाये चल दिया।

मैं किनारे तक आया। अब पानी के साथ आंधी भी तेज हो गयी थी। रामा ने भरपूर निगाह से उस अथाह जलराशि की ओर देखा—दूसरे ही क्षण मेरी ओर। मैं कहना चाहता था कि अब रहने दे भी रामा—पर मेरे मुँह से शब्द नहीं निकले। दर असल मैं संजीदगी से स्थिति पर सोच भी नहीं रहा था।

मैंने सोचा शायद रामा आसानी से उस पार चला जायेगा। वैसे उस पार के नाम पर बड़ी दूर झाड़ियों के सिर दिख रहे थे। कुछ देर पहले रामा भैंस की पूँछ पकड़कर उसके सहारे तैरता हुआ आया था। पर इधर जाने के लिए कोई सहारा नहीं था। उसने आसमान देखा और पानी में छप-छप करता हुआ आगे बढ़ा।

—थोड़ी देर में ही उसकी प्रतिकार क्षमता घटने लगी। फिर भी वह हाथ पैर मारता रहा—किन्तु वह नदी के बहाव की दिशा में नीचे जा रहा था किसी तरह मैं उसके समानान्तर बना रहा। यद्यपि इस प्रयास में लगभग आधा किलोमीटर नीचे तक—नदी के बहाव की दिशा में—किनारे-किनारे दौड़ता हुआ आ चुका था। अब उसके हाथ पैरों का हिलना क्रमशः मंद होता जा रहा था। वह ज़ोर से चिल्लाया—छोटे भैया।

मेरा कलेजा मुँह में आ गया। जान बचाने के लिए फड़फड़ाते आदमी के अंतिम प्रयास मेरे सामने थे। मुझे लगा कि अब रामा को तुरंत सहायता की आवश्यकता है—अन्यथा वह बच नहीं सकेगा। मुझे अपने ऊपर भी चिढ़ आयी कि इतनी गंभीर परिस्थिति में मैं निर्विकार क्यों बना रहा? भैंस नदी उतरने के बाद भी आ सकती थी। मुझे उसे नदी में कूदने से रोकना चाहिए था। किन्तु अब क्या किया जा सकता है?

वह वापस आने के लिए मुड़ा। किन्तु मुझे लगा कि वह इधर आने के बजाया उधर ज़्यादा आसानी से पहुँच सकता है। मैं अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर चिल्लाया—रामा, उधर का किनारा नज़दीक है—पता नहीं उसे मेरी बात समझ में आयी या नहीं। तभी उसकी एक और चींख सुनाई दीं—और मेरी आँखों के सामने धुंध छा गयी।

नदी का शाश्वत शोर यथावत चलता रहा। मैं किसी तरह भागकर घर आया। भाई साहब को हडबडाते हुए बताया कि रामा डूब गया। वे मुझे खींचकर एक ओर ले गये, "पढ़-लिखकर गये, अक्कल ज़रा भी नहीं है। भीतर आरती हो रही है—वह सब आ जायेगा।

दो-तीन दिन बाद नदी अपनी सीमा में लौट गयी। किसी ने रामा की लाश एक कहू के वृक्ष पर लटकी देखी। उसकी बिरादरीवाले लाश लेने जाने लगे। मैं भी उनके साथ हो लिया। रामा की पत्नी भी पीछे-पीछे आयी। हमें बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। हम सब चुप थे। केवल उसकी पत्नी ही सन्नाटे को भेद रही थीं।

दो आदमी ऊपर चढ़े। एक रस्से से बाँधकर उन्होंने लाश नीचे उतारी। मैंने देखा रामा का चेहरा क्षत-विक्षत हो रहा था। जगह-जगह से उसका मांस जलजीवों द्वारा नोंचा जा चुका था। परजीवी परिन्दे भी उस वृक्ष का घेरा डाले बैठे थे। जाहिर था उसकी आँखें बाढ़ उतरने के बाद ही नोची गयी थी। लाश हमारे संरक्षण में आने के बाद भी वे वहीं फड़फड़ाते रहे। उसकी पत्नी लाश से लिपटकर रोना चाहती थी किन्तु लाश इस लायक भी नहीं बची थी। केवल उसके चिथड़ों के सहारे से ही पहचाना जा सकता था। और चिथड़ों की हालत भी यह थी कि बिसाहू को अपना रुमाल उसकी कमर के आसपास लिपटा देना पड़ा।

लाश हमारे चौपाल में लायी गयी। उसकी पत्नी भी हमारे साथ थी। मुझे उनके साथ देखकर पिता क्रुद्ध हो गये। पूरे घर में भड़कम मच गया कि मैं बलइया की लाश लेने गया था। दादी गंगाजल ले आयी। भतीजा पंडितजी को बुलाने पहुँचा। लाश को सब निर्विकार भाव से देख रहे थे। लाश के पास ही एक लकड़ी का लट्ठा पड़ा था। जिसे रामा ने पिछली बाढ़ से पकड़ा था। भाई साहब उस लट्ठे पर गौर कर रहे थे। उनका अंदाजा था कि इससे हल बनाया जा सकता है।

अब तक पंडितजी मुझे पवित्र कर चुके थे। मैं अंदर आ गया। मेरा विचार था महिलाएँ उदार प्रवृत्ति की होती हैं। वे अवश्य रामा के परिवार के साथ सहानुभूति जता रही होंगी। भाभी रसोई में खाना बना रही थी। दो वर्ष

का पप्पू मचल रहा था। उन्होंने उसे मुनिया को पकड़ाते हुए कहा—'देखो तो राजा बाबू बाहर तमाशा आया है।"

घरवालों का निर्विकार बने रहना रामा की पत्नी से छुप नहीं सका। वह और ज़ोर से दहाड़ मारकर रोने लगी—वैसे उसकी आवाज़ बड़ी बेतुकी निकल रही थी। कारण भी था—उसे चीखते हुए काफ़ी समय हो गया था। लाश की स्थिति ने हमें कुछ इस तरह भौंचक्का कर दिया था कि रास्ते भर किसीको उसे सांत्वना देने की भी याद नहीं आया।

आखिर पिताजी बाहर आये, 'देख रज्जो (रामा की पत्नी) जन्म-मरण भगवान के हाथ में है। फिर भी अब तू आयी है तो दस पन्द्रह किलो गेहूँ ले जा" उन्होंने एक मज़दूर को टोकनी भर गेहूँ रज्जो को देने का आदेश दिया। वह एक टोकनी गेहूँ व अपने पति के मुआवजे के रूप में लेकर जाने लगी। भाई साहब ने उसे जाते-जाते टोका, "टोकनी वापस दे जाना—आजकल महँगी हो गयी है"। वे लोग लाश लेकर चले।

दूसरे दिन मैं रज्जो के घर पहुँचा। उसकी तार-तार साड़ी और बच्चों के फटे-सिले कपड़े पिता द्वारा प्रदत्त मुआवजे के संदर्भ में बेहद खले। मैंने घर आकर माँ को उसकी स्थिति बतायी। उनकी पुरानी धोती और मुनिया के कपड़े इकट्ठे कर उसके घर दे आया।

रामा का छोटा भाई आठवें में पढ़ता था। अब वह रामा के स्थान पर हमारी भैंसें चराने लगा। रामा की इच्छा थी कि वह अपने भाई को कम से कम मैट्रिक अवश्य करा दे। इसलिए वह पिछले कुछ वर्षों से असुविधाओं के बावजूद उसे नज़दीक के कस्बे के स्कूल में भेज रहा था। किन्तु यहाँ प्रश्न रामा की इच्छा का नहीं, हमारी भैंसों का था। रामा को दिये गये कर्ज़ का था—रामा के बच्चों की भूख का था।

मैं कुछ दिनों के बाद फिर गाँव आया। मैंने माँ से रामा के बच्चों के विषय में पूछा। उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। मैं स्वयं टहलता हुआ रामा के घर पहुँचा। रज्जो आंगन में बैठी थी। उसके इर्द-गिर्द बच्चे बैठे थे। मुझे देखकर श्यामू (रामा का पुत्र) ने कहा—माँ आज भी नदी में पानी है। यदि काका आज बह जाये तो छोटे भैया मुझे भी कमीज ला देंगे?

मैं अवाक् रह गया। पहले मैंने उसके लिये कमीज़ नहीं भेजी थी। रज्जो की आँखें छलछला आयीं। मैं चुपचाप लौट आया। देर तक बच्चे की बात मेरे कान में गूँजती रही। उसके लिए एक कमीज़ कितनी महंगी है?

"व्यंग्य साहित्य, लेखन और भविष्य"— व्यंग्यकारों की दृष्टि में

श्री चन्द्रकुमार असाटी, दमोह (म. प्र.)

देश विदेश की सामाजिक राजनैतिक आदि महत्वपूर्ण गतिविधियों की संगतियों से जन-सामान्य को सर्वाधिक आर्कषित कर, वस्तु-स्थिति की निष्पक्ष जानकारी देकर सीधा प्रभावित करनेवाली एकमात्र व्यंग्य बिधा ही है।

जन-सामान्य में यह विचार प्रचलित है कि दो सगे भाइयों में भी विचारों और जीवन सिद्धांतों में समानता संभव नहीं है। फिर परिबार, समाज, देश या मानव समूह में वैचारिक या जीवन सिद्धांतों की एकरूपता या समानता कैसे संभव हो सकती है? बस यही वैचारिक और सैद्धांतिक विभेद साहित्य में व्यंग्य को जन्म देता है। कोई भी व्यक्ति अवसर आने पर कटाक्ष करने से नहीं चूकता है। व्यंग्य साहित्य अपने समय की गतिविधियों का मार्मिक, सजीव, सटीक, ऐतिहासिक और प्रामाणिक जानकारी के लिए पूरक दस्तावेज हैं।

व्यंग्य विधा आपातकाल की समाप्ति के बाद, पूर्ण आक्रोश के साथ अभिव्यक्ति के लिए अब स्वतंत्र हैं। व्यंग्यकार अपने लेखकीय दायित्व को सच्चाई और ईमानदारी के साथ निर्वाह के लिए कटिबद्ध हैं। व्यंग्य का अतीत जैसा भी रहा हो, वर्तमान और भविष्य निश्चित ही उज्जवल है। भले ही कुछ आलोचक व्यंग्य को सामयिक साहित्य का लेबल लगा दें, पर व्यंग्य शाश्वत साहित्य की तुलना में कहीं अधिक लोकप्रियता और जन सहानुभूति अर्जित करेगा।

"भावाभिव्यक्ति के लिए साहित्य में अन्य विधाएँ होते हुए भी आपको व्यंग्य ही क्यों प्रिय है?" इस प्रश्न पर श्री हरिशंकर परसाई का कथन है, "एक तो लेखक की विशिष्ट रचनात्मक प्रतिभा होती है। मैंने देखा कि अपने युग के यथार्थ को सार्थक अभिव्यक्ति में व्यंग्य के माध्यम से ही दे सकता हूँ। स्वतंत्रता संग्राम के वर्षों में जो अन्तर्विरोध और विसंगतियाँ एक 'बड़े उद्देश्य' के लिए आन्दोलन के नीचे छिपी थी वे स्वाधीनता के बाद उभर उठीं। जीवन के हर क्षेत्र में विसंगति, भ्रष्टाचार, मिथ्याचार, अन्याय, शोषण आदि खुलकर सामने आये। सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध लेखक को इनका अन्वेषण कर अर्थ देना तथा रचना के द्वारा उन्हें व्यक्त करना जरूरी था। मैंने इसके लिए व्यंग्य को अच्छा माध्यम बनाया।"

श्री रवींद्रनाथ त्यागी कहते हैं कि जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के राग और रागनियाँ अलग-अलग वाद्य यंत्रों पर ही ठीक तरह से उभरती है, उसी प्रकार कुछ ऐसा भी कथ्य है जो व्यंग्य के ही माध्यम से सच्ची तरह कहा जा सकता है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं व्यंग्य के साथ कविता भी लिखता हूँ। कुछ ऐसा है, जो कविता के ही माध्यम से कहा जा सकता है, और कुछ ऐसा है जिसके लिए व्यंग्य के अतिरिक्त मुझे और कोई माध्यम नहीं मिला।"

श्री के. पी. सक्सेना, अन्य विधाओं की अपेक्षा व्यंग्य को अधिक पैना और सशक्त मानते हैं।

जबकि गोविन्द शर्मा कहते हैं कि जो बात एक पूरा उपन्यास या महाकाव्य नहीं कह पाता है, वह व्यंग्य की एक क्षणिका कह देती है।

श्री दिनकर सोनवलकर का कहना है कि अपने प्रारंभिक जीवन में कुछ ऐसे कटु अनुभव हुए। यथार्थ का ऐसा दबाव रहा कि अभिव्यक्ति स्वयं ही व्यंग्य की देशा में मुड़ गये। मुझे लगता है कि पिछले बीस पच्चीस वर्षों में मध्यम वर्ग को ऐसी हालात, ऐसी विशेषताओं, ऐसी कुन्ठाओं, ऐसी मानसिक ग्रंथियों का सामना करना पड़ा कि व्यंग्य के सिवा कोई विकल्प ही नहीं था।

"व्यंग्य बीसवीं सदी की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है।" इस प्रश्न पर ी हरिशंकर परसाईजी कहते हैं, "व्यंग्य अलग विधा नहीं है पर इस युग में व्यंग्य क 'स्पिरिट' के रूप में सर्वोपरि हैं।

रवीन्द्रनाथ त्यागी, व्यंग्य को 'सर्वाधिक लोकप्रिय विधा' बीसवीं शताब्दी की हीं मानते। उपन्यास, कहानी और कविता भी उनकी दृष्टि में कम लोकप्रिय हीं हैं।

श्री कैलाशचंद, व्यंग्य को लोकप्रिय नहीं सशक्त मानते हैं। श्री महेशकुमार ल का मत हैं कि शूद्र समझे जानेवाला व्यंग्य ब्राह्मण वर्ग में शामिल हो गया।

श्री श्रीकान्त चौधरी, "वर्तमान व्यंग्य साहित्य को हास्य, व्यंग्य और फेबाजी का मिक्सचर मानते हैं"। उनका कथन है "व्यंग्य की लोकप्रियता का बड़ा कारण उसकी रोचकता और अपने समय की बुराइयों पर प्रहारक ता है।"

श्री अजातशत्रु का अभिमत है कि हम आंकड़ा देकर यह प्रमाणित नहीं कर । कि औसत व्यंग्य को पढ़नेवाले पाठ एक औसत कहानी के पाठकों की संख्या से क है।

व्यंग्यकारों पर सामान्यतः यह आरोप लगाया जाता है, "वर्तमान से असंतुष्ट तथा महत्वाकांक्षाओं के हनन से क्षुब्ध होकर कुछ साहित्यकार व्यंग्य की चोट से केवल दोषों को उजागर करने में जुटे हुए हैं" इस आरोप पर श्री हरिशंकर परसाई का उत्तर है कि वर्तमान से असंतोष, बेहतर भविष्य की मानसिकता बनाता है। पर यह कहना गलत है कि महत्वाकांक्षा के हनन से व्यंग्य लिखा जाता है। व्यंग्य कुंठा नहीं है। वह नकारात्मक भी नहीं है, एक गंभीर सकारात्मक लेखन है।"

श्री निशिकान्त का कहना है कि सभी व्यंग्यकारों पर यह बात नहीं कहीं जा सकती।

श्री के. पी. सक्सेना का उत्तर और भी तीखा है। वे कहते हैं कि जिन्हें व्यंग्य ने नहीं स्वीकारा, वे ही शायद ऐसा कह रहे हैं।

श्री शंकर पुण्तांबेकर का उत्तर है कि यह आरोप उस वर्ग द्वारा ही लगाया जाता है जो व्यंग्यकार की चोट का लक्ष्य बनता है।

श्री गोविन्द शर्मा, "व्यंग्यकारों की आर्थिक विभीषिका का कारण संपादकों और प्रकाशकों की उपेक्षा मानते हैं।"

श्री श्रीकान्त चौधरी का मत है कि संतुष्ट तो वही हो सकता है जो परम ज्ञानी हो या पागल। यह आरोप तो ऐसा ही कहना है कि सारे अस्पताल और डाक्टर रोगियों से बदला लेने के लिए बने हैं।

श्री अजातशत्रु कहते है कि श्रेष्ठ लेखन भी कुंठा और असंतोष से उपजता है और वह भी समाज के दोष ही ढूंढ़ता है, मगर लेखक की प्रतिभा वहाँ उसे तटस्थ और सार्वभौमिक चित्रण का रूप देती हैं जिससे वह साहित्य बन जाता है।

व्यंग्य लेखन पर एक यह भी आरोप है कि पिछले दो दशकों में राजनैतिक गतिविधियों पर ही अधिक चोट की गई है। श्री हरिशंकर परसाई इस आरोप का उत्तर देते हुए कहते हैं कि व्यंग्य में राजनीति का स्वर प्रधान रहने का कारण है स्वतंत्रता का आन्दोलन एक राजनैतिक आन्दोलन था। हमारी स्वाधीनता भी राजनैतिक स्वाधीनता थी। हमने राजनीति से बड़ी आशायें लगाई थीं, वे पूरी नहीं हुई और हमने पाया कि राजनीति के ढोंग विशेषकर सत्ताधारी किस कदर जन विरोधी, स्वार्थी, पाखंडी और मिथ्याचारी हैं।"

"व्यंग्यकार सभी गतिविधियों पर चोट करने के कारण प्रतिष्ठित लोगों की नजरों में चढ़ा रहता है, इसलिए आर्थिक विभीषिकाओं से त्रस्त रहता है जबकि पाठकवर्ग में यह अत्यंत सम्माननीय व्यक्ति होता है।" इस संबंध में श्री हरिशंकर

परसाई का कहना है कि व्यंग्य से वे तो तिलमिलायेंगे ही जिन पर चोट होती हैं। पर यह खतरा उठाना ही पड़ता है। इसके परिणाम भी भोगना चाहिए। सामान्य पाठक व्यंग्य इसलिए पसंद करता है कि जिस जीवन को वह देखता है वह उसे व्यंग्य में मिल जाता है।

जबकि श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी का अनुभव विपरीत है। उनके शब्दों में "पाठकों की लोकप्रियता तो मिली ही मुझे तो उन लोगों से भी (खासकर व्यूरोक्रेसी से) प्रशंसा प्राप्त हुई जिन पर कि चोट की गई थी।

"श्री निशिकान्त "पाठकों का ख्याल रखते हैं, किसी से क्या लेना देना।" वे अपनी निश्चिंतता बताते हैं।

श्री के. पी. सक्सेना का कहना है कि खरा कहनेवाला हमेशा लंगोटी लगाये रहेगा, मगर जन-जन का प्यारा रहेगा। आम आदमी का नक्शा खींचनेवाला आम आदमी को जरूर प्यारा होगा।

श्री संतोष खरे कहते हैं कि लेखक कोई तोप नहीं होता। वह भी एक साधारण आदमी है। यदि उसका लेखन जीवन के विविध पक्षों को सच्चाई से पेश करेगा तो व्यवस्था उससे अप्रसन्न होगी ही और इसे इसके लिए तैयार भी रहना चाहिए।

श्री श्रीकान्त चौधरी का कहना है कि कुछ ऐसे लोग होते हैं, जिनके हाथों में सब कुछ होता है, इन गलत हाथों का मूलोच्छेदन व्यंग्य की सहज प्रवृत्ति है। व्यंग्यकार की इज्जत, उसकी आभा उसके पाठक हैं।

श्री हरिशंकर परसाई व्यंग्य के लिए प्रतिबद्धता को आवश्यक मानते हैं। उनका मत है कि प्रतिबद्धता हर प्रकार के लेखन की शर्त है। यह समझ और विश्वास जरूरी है कि व्यापक सामाजिक संघर्ष में आप किस पक्ष के साथ खड़े हैं, आपकी सहानुभूति किनके साथ है। प्रतिबद्धता के बिना गलत अर्थ और निष्कर्ष निकलते हैं। जबकि श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी, व्यंग्य के लिए मुक्त व स्वस्थ मन आवश्यक मानते हैं उनका कहना है कि प्रतिबद्धता से मुक्तता पर असर पड़ेगा। श्री के. पी. सक्सेना भी प्रतिबद्धता को जरूरी नहीं मानते। श्री निशिकान्त का परामर्श है कि व्यंग्य के लिए प्रतिबद्धता राजनैतिक नहीं होना चाहिए। प्रतिबद्धता बस समाज के प्रति होना चाहिए।

श्री गोविन्द शर्मा, प्रतिबद्धता को अनावश्यक मानते हुए कहते हैं कि प्रतिबद्ध व्यंग्यकार को ईमानदार नहीं कहा जा सकता। लेकिन धन, पद,

पुरस्कार कई ऐसे तत्व है जो व्यंग्यकार को भी प्रतिबद्ध बना देते हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ कहे जानेवाले व्यंग्यकारों की रचनाओं के स्वर आजकल उनका जयगान कर रहे हैं जिन पर कल तक वे चोट किया करते थे।

श्री कैलाश चन्द का मत है, "लेखकीय ईमानदारी से प्रतिबद्धता व्यंग्यकार की पहली शर्त हैं अन्यथा उसका व्यंग्य तटस्थ तथा निर्वैयक्तिक नहीं रह पायेगा और उस पर पक्षधरता का आरोप लगेगा।

श्री श्रीराम अय्यंगार के शब्दों में, "प्रतिबद्धता का जहाँ तक प्रश्न हैं—मैं यही कहूँगा कि व्यंग्य साहित्य आम जनता के हितों के लिए, सामाजिक और राजनैतिक चेतना लाने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए।"

व्यंग्य लेखन को लेकर एक सवाल अक्सर उठाया जाता है, "क्या हिन्दी साहित्य में भी ऐसा व्यंग्य साहित्य लिखा गया है जिसे विश्व के श्रेष्ठ व्यंग्य साहित्य के समकक्ष रखा जा सकें और पुरस्कृत भी किया जावें?"

इस पर श्री हरिशंकर परसाई का संक्षिप्त उत्तर है कि भारतीय व्यंग्य बहुत सक्षम हो गया है।

श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी का कहना है कि हिन्दी में कुछ व्यंग्य ऐसा जरूर लिखा गया है जो विश्व साहित्य में स्थान पाने का हकदार है। झूठी नम्रता दिखाना अपने व्यंग्यकारों के प्रति अन्याय करना ही होगा।

श्री निशिकान्त के शब्दों में, "पुरस्कारों से व्यंग्य साहित्य का मूल्यांकन न किया जाय तो बेहतर होगा। इसे दरबारी होने से बचा रहने दीजिए। यही व्यंग्य के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार होगा।"

श्री के. पी. सक्सेना का मत है, "नहीं विश्व को जाने दीजिए, हिन्दी में अभी ऐसा व्यंग्य साहित्य नहीं लिखा गया जो पतरस, कृष्ण चन्दर, मन्टो और शौकत थानवी का मुकाबला करके अपना अस्तित्व उजागर कर सकें। रहा पुरस्कृत होने का सवाल, सो क्या आप मानते हैं कि हमेशा श्रेष्ठतम हिन्दी साहित्य ही पुरस्कृत हुआ है, इस देश में जिसने अपनी सींक खड़ी कर ली, वही श्रेष्ठ कहलाया।

श्री संतोष खरे के मत में पुरस्कार श्रेष्ठता का माप दंड नहीं होता और यह प्रश्न आज का नहीं है, साथ ही यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हिन्दी व्यंग्य अन्य देशों के व्यंग्य साहित्य से हीन है।

श्री शंकर पुण्तांबेकर का आरोप है कि हमने व्यंग्य की कथन शैली में जरूर कमाल दिखाया हो, कथ्य की दृष्टि से उसके बहुत सीमित हैं। हम गिनी चुनी विसंगतियों को ही दुहराते हैं। हमारे अनुभवों का विस्तार व्यापक नहीं है। अभी हमारी कोई व्यंग्य कृति विश्व साहित्य तो क्या भारत की कुछ अन्य भाषाओं के भी समकक्ष नहीं कही जा सकती।

श्री कैलाशचन्द्र का मत है, "क्यों नहीं रखा जा सकता हैं" हिन्दी का व्यंग्य किसी भी दृष्टि से हेय नहीं है। पुरस्कृत होने का सवाल जरा टेढा है उसके लिए तो पौवा चाहिए।

श्री श्रीकान्त चौधरी, "व्यंग्य साहित्य के प्रति आश्वतस्त है। उनकी राय में विश्व साहित्य के स्तर का व्यंग्य लिखा गया है और आगे भी लिखा जायेगा। पर यहाँ तो 'घर का जोगी जोगना और आन गाँव का सिद्ध' माना जाता है वर्ना परसाई की 'निठल्ले की डायरी' या श्री लाल शुक्ल की 'राग दरबारी' किसी मायने में कम नहीं। और भी कई कृतियाँ हैं।

श्री अजातशत्रु का आरोप है, "समीक्षकों के व्यंग्य के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण तथा कुछ बाहरी कारणों ने हमारे व्यंग्य साहित्य को विश्व स्तर तक फैलने नहीं दिया है।"

व्यंग्य साहित्य के भविष्य के प्रति सभी व्यंग्यकार पूरी तरह से आश्वस्त हैं। हिन्दी व्यंग्यकारों की अगली पीढ़ियाँ कहीं ज्यादा अच्छा लिखेंगी वर्तमान युवा लेखन से ऐसा ही आभास मिल रहा है। विवेकशील बुद्धि जीवी आज व्यंग्य के कायल हैं।

खेद है कि हिन्दी के कर्मठ प्रचारक **श्री आर. नटराजन,** चिदंबरम (द. आ.) के ता. 30-6-'80 को आकस्मिक निधन हुआ है। इस पर सभा परिवार अपना शोक प्रकट करता है।

श्री नटराजन, संस्कृत, ज्योतिष तथा वेद के अच्छे ज्ञाता थे। आखिरी दम तक तन, मन तथा धन से हिन्दी की सेवा करते रहे। आपके निधन से हिन्दी प्रचार को बड़ी क्षति पहुँची है।

फणीश्वरनाथ रेणु : एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व

डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ

अगस्त 1974 की बात है। एक दुबला-पतला व्यक्ति जिसके लंबे बाल उसके कंधे को छूते थे और जिसकी जलती हुई आँखें चश्मे के ग्लास को चीरकर सामने के व्यक्ति में एक तरह का कंपन उत्पन्न करती थीं—बाढ़ पीड़ितों को सहायता दिलवाने के सम्बन्ध में फरबीसगंज के बी. डी. ओ. से मिलने गया था। वहाँ उसे यह कहकर गिरफ़्तार किया गया कि उसकी सारी गतिविधियाँ कांग्रेस विरोधी हैं। उसके साथ अनेक बूढी महिलाएँ और छोटे-छोटे बच्चे भी थे। वह व्यक्ति विरोधी दल का राजनीतिक नेता नहीं अपितु एक लेखक था। उसका जुर्म यह था कि उसने भूख-प्यास से तड़पते लोगों की पुकार सरकार तक पहुँचाने की कोशिश की थी, उसका जुर्म यह था कि वह दीन-असहाय आत्माओं के करुण क्रंदन को नज़र अंदाज नहीं कर सका और उसका जुर्म यह था कि उसने मानवीयता की रक्षा करना अपना हक समझा था। यह वह लेखक था जो फणीश्वर नाथ रेणु के नाम से हिन्दी संसार में जाना जाता था। हाँ, जाना जाता था क्योंकि अब वह 'है' से 'था' हो चुका है।

हिन्दी कथा-साहित्य के आकाश में धूमकेतु की तरह उदित होनेवाले विद्रोही कलाकार रेणुजी का धरती के एक-एक के साथ रागात्मक आत्मीय सम्बन्ध था। इनका जन्म बिहार के पूर्णिया जिले के औराही-हिंगना में फ़रवरी 1921 को हुआ। वे ग्रामीण वातावरण में ही पलकर बड़े हुए। अत: इस सुशिक्षित युवक के संस्कार पर शहरी जीवन की चकाचौंध का नकली मुलम्मा चढ़ नहीं सका। बचपन से खेत-खलिहानों और मिट्टी के पुतलों के साथ झम उठा तो इनका यौवन क्रांति के तूफ़ानों में बीता। इन्होंने अपने यौवन को प्यार-मोहब्बत के नाजुक मोड़ पर नहीं छोड़ा बल्कि मानव-मुक्ति के संग्राम के खतरनाक बीहड़ रास्तों को अर्पित किया। नेपाल की मुक्ति के लिए इन्होंने सशस्त्र क्रांति में भाग लिया। एकतंत्री राजशाही के कराल शासन के विरोध में कोई हेराली बंधुओं के साथ क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित की। विद्रोही सेना के कदम के साथ अपना कदम मिलाया। वे विद्रोहियों द्वारा परिचालित नेपाल रेडियो के प्रथम डाइरेक्टर-जनरल बने। राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रूप से जुड़े रहने के इस जोखिम के काम में वे शारीरिक रूप से क्षत-विक्षत हो गये। जब यह आहत, विजयी योद्धा 1952-53 में घर वापस लौटा तो कोई आत्मज या मित्र उनको विजयश्री की माला पहनाने नहीं आया। उन्हें हास्पिटल के

पलंग का सहारा लेना पड़ा। सभी ने उन्हें उनकी नियति पर छोड़ दिया था। यही वह स्थल है जहाँ उन्हें साहित्य-सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस स्थिति में रहते उन्होंने जो शारीरिक और मानसिक घोर यंत्रणाएँ सहीं उनसे इनकी जीवनी-शक्ति ने जीवन का एक नया दर्शन पाया ; वह दर्शन जो जिंदगी की पीड़ा को, खुशी को, सब कुछ वस्तुस्थिति के रूप में स्वीकारने के लिए बाध्य करता है। यह स्वीकृति असहाय निरुपाय स्वीकृति नहीं है, अपितु जीवन को पूरी आस्था और निष्ठा के साथ, जी लेने की स्वीकृति है, जिन्दगी की चुनौतियों को ललकारने की स्वीकृति है। इस प्रवृत्ति के कारण रेणुजी एक सचेत कहानीकार बने, एक सजग उपन्यासकार हुए।

फणीश्वर नाथ रेणु भारत के राष्ट्रीय जीवन से अबाध रूप से जुड़े हुए थे। उन्होंने लोकनायक जयप्रकाश नारायण के 'समग्र क्रांति' के आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभायी। रेणुजी हमेशा जनशक्ति के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने उस समय में भी जनशक्ति का सबल समर्थन किया है जब अन्य अधिकांश लेखक अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए शासकों की प्रशंसा करने में अपने को कृत-कृत्य समझते थे या अनासक्त रहकर अपनी नपुंसकता को छिपाने का प्रयत्न करते थे। इमर्जेंसी में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए जिस कर्मठता से वे लड़े, वह किसी भी लेखक के लिए प्रेरणादायिनी है। उन्होंने आंदोलनकारियों पर किये गये अत्याचारों के विरोध में 'पद्मश्री' की उपाधि भी वापस लौटा दी थी। इस प्रकार रेणुजी एक जीवट के सत्याग्रही पहले साहित्यकार बाद में है, एक सक्रिय क्रांतिकारी पहले और कलाकार बाद में है।

हिन्दी में प्रेमचंद के बाद रेणुजी ही एक ऐसे साहित्यकार है जिनकी समस्त रचनाएँ ग्रांम्य-जीवन से अनुप्राणित हैं। वे अपनी रचनाओं में प्रेमचंद की तरह व्यापक परिवेश का निर्माण चाहे नहीं कर सके हों लेकिन उन्होंने ग्रामीण जीवन की अंतर्बाध्य प्रकृति के, परिसर के चित्रण में गहराई और सूक्ष्मता के साथ वस्तुनिष्ठता के अलावा आत्मीयता और सरसता जो दर्शाई है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यदि हम कहें कि इस सम्बन्ध में वे प्रेमचंद से एक कदम आगे हैं तो अत्युक्ति न होगी।

रेणु जी का आग्रह कला के प्रति उतना नहीं हैं जितना धरती की गंध के प्रति है। उनका कलाकार धरती के रूप, रस, गंध और राग के प्रति अत्यंत सचेत हैं। ग्रामीण जनता की आशा-आकांक्षाओं, हास-परिहासों, विश्वास-आदर्शों को उन्होने शाब्दिक अभिव्यक्ति दी है। जीवन की लय को पकड़ने और उसे

सहज अभिव्यक्ति देने में ही उन्होंने साहित्य साधना की उपलब्धि मानी है। अतः उनकी समस्त कहानियाँ और उपन्यास माटी की सोंधी गंध से महक उठे है। और यह महक फैल जाने के लिए हवा के झोंके की प्रतीक्षा में बैठी नहीं रहती बल्कि वह स्वयं हवा को गति देती है। यही उनकी रचना-प्रक्रिया की विशेषता है। रेणुजी अपने परिवेश, प्रकृति और ज़िनके बीच उनका उठना-बैठना होता है उनके क्रिया कलापों तथा मनोदशाओं से इतने परिचित हैं बल्कि इतना तादात्म्य स्थापित कर चुके हैं इन सबके चित्रण में छोटी-सी छोटी बात भी छूट नहीं पाती। उसमें ग्रामीण जीवन का जीता जागता चित्र अपनी समस्त बारीकियों के साथ उपस्थित होता है। इनकी रचनाएँ समाजवादी यथार्थ से उभरी हुई आंचलिकता के धरातल पर अवतरित हुई है। इन सब कारणों से वे आज के आंचलिक कथा-कारों में शीर्षस्थान पा गये हैं। उनके प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' ने हिन्दी के आंचलिक साहित्य को एक नया आयाम दिया, एक नया परिप्रेक्ष्य दिया और एक नवीन संदर्भ दिया। अब तक रेणुजी के चार कहानी-संग्रह निकल चुके हैं— 'ठुमरी', 'आदिम स्त्री की महक', 'अग्निखोर', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' और उल्लेखनीय उपन्यास है—'मैला आंचल', 'परती परीकथा', 'जुलूस', 'दीर्घतपा' और 'कितने चौराहे'। इनकी कहानियों में 'मारे गये गुल्फाम' कहानी 'तीसरी कसम' नाम से अत्यंत लोकप्रिय हुई है। जिस पर एक कलात्मक फ़िल्म भी बन चुकी है और जिसे राष्ट्रपति-पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। 'रसप्रिया', 'तीर्थोदिक', 'लालपान की बेगम', 'ठेस', 'सिरपंची का सगुन', 'पंचलाइट', 'टेबुल', 'तीन बिंदिया' आदि इनकी उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

'मैला आँचल' का विशेष ज़िक्र किये बिना रेणुजी के बारे में कुछ भी कहना अधूरा रह जायेगा। यह उपन्यास बिहार के पूर्णिया ज़िले के एक पिछड़े हुए गांव 'मेरीगंज' की स्वतंत्रता के पूर्व के दो-तीन वर्ष की मैली देहाती ज़िंदगी के संघर्षमय चित्र को उसकी सारी उभरी-गहरी रेखाओं के साथ उपस्थित करता है। "इसमें फूल भी शूल भी, धूल भी है गुलाब भी— कीचड़ भी है चंदन भी, सुंदरता है कुरूपता भी।" लेखक किसी से भी आँख नहीं चुराता। 'मेरीगंज' यह नाम ही अपने में विडंबना लिए हुए है। यह एक अंग्रेज़ अफ़सर का दिया हुआ आधुनिक नाम है जो पश्चिमी रंग से युक्त है। लेकिन इस अंचल को पश्चिम की या आधुनिकता की ही हल्की-सी किरण तक छू नहीं पायी है। गाँव आज भी अस्वस्थ, गंदे वातावरण—उन्हीं हज़ारों साल पुराने विश्वासों-अंधविश्वासों को ढो रहा है। अस्पताल खुलने के प्रसंग से गाँव में एक नयी हलचल पैदा होती है। डाक्टर आता है वैज्ञानिक शोध करने, बीमारियों का निदान ढूंढने, लेकिन इस

अंचल के जीवन में प्रवेश करने के बाद वह निर्लिप्त और तटस्थ रह नहीं पाता। वह आया था गाँव के जीवन में एक नया अध्याय खोलने किंतु एक नया परिच्छेद उसकी ही जिंदगी में शुरू हो जाता है। अब तक उसने प्रेम-स्नेह को—बायालोजी के सिद्धांतों से ही हमेशा नापने की कोशिश की थी' और वह मुस्कुराकर कहा करता "दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर में हमें नहीं मालूम।" अब वह मानने को तैयार है कि "आदमी के दिल होता है—जिसमें दर्द होता हैं, उस दर्द को मिटा दो आदमी जानवर होता है।" अब उसने रोग की जड़ों की रिसर्च कर ली है कि "—गरीबी और जेहालत इस रोग के दो कीटाणु हैं—एनोफ्लिस से भी ज्यादा खतरनाक, सैण्ड फ्लाई से भी ज्यादा जहरीले—"। यह शोध स्वयं लेखक की है जिसके पीछे उसकी गहरी अंतरदृष्टि है, सहज मानवीय दृष्टिकोण है और ऊपरी मोटी परतों को चीरकर देखने की पारदर्शी एवं वस्तुपरक साहसिक दृष्टि है। लेखक ने राजनीति, अर्थव्यवस्था और धार्मिकता के एक-दूसरे को काटनेवाले रेशों से बुनी हुई जिंदगी को चित्रित किया है। मानव संवेदों, मूल्य संघर्षों और वर्ग चेतना को ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। इन सबसे बढ़कर लेखक ने बाहर से ऊबड़-खाबड़ प्रतीत होनेवाले जीवन की तह में कुल-बुलाती जिजीविषा, दबी-पड़ी सौंदर्य-चेतना और निष्कंप मानवीय आस्था की कविता आम जनता की जुबान में गायी है। इनकी शैली में व्यंग्य भी है रंग भी है, महक भी।

जब अन्य कई लेखक, पॉश होटेलों, काफी हॉउसों की जिंदगी को मर्क्यूरी की रोशनी में देखते हुए शराब के प्यालों में डूबते उतरते हुए, शहरी जीवन की यांत्रिकता को न बेध सकने और पश्चिम से प्रभावित जन-समुदाय को मात्र भारत मान लेने के कारण, विघटित मूल्यों और खंडित व्यक्तियों को ईजाद कर मानव के शव संस्कार में या उसके पोस्ट-मार्टम में लगे हुए थे तब रेणुजी जैसे लेखकों ने उसमें जिंदगी की नब्ज पहचान ली थी और आवश्यक इलाज कर नया प्राण संचार किया था। रेणुजी ने अपनी यथार्थ-दृष्टि से रूढ़ि, परंपरा के प्रति विद्रोह किया है और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना की है। लोक जीवन अंतर्व्याप्त कविता को कथा साहित्य में सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। मानव में उसकी आस्था है अतः उसकी शक्ति में असीम विश्वास है। इस प्रकार, रेणुजी ने हिन्दी कथा साहित्य में नयी मान्यताओं की स्थापना ही नहीं की ; नये क्षितिज को भी दर्शाया है और नयी संभावनाओं को उजागर किया है।

(आकाशवाणी, धारवाड़ की कृपा से)

ध्वनि मात्र की समझ

टी. एस. बलरामन, मद्रास

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में अपनी नम्रता प्रकट करते हुए यह कहा है,

"जौं बालक करि तोतरि बाता
सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।"

मतलब है, माता-पिता अपने बच्चे की तुतली बोली सुनकर बहुत खुश होते हैं। बच्चे की बोली में होनेवाली भूल चूक पर ध्यान नहीं देते। वैसे ही पाठक गण मेरी कविता को सुनकर खुश हो जाएँ और उसके दोष पर ध्यान न दें, क्योंकि राम भक्ति ऐसे गंभीर विषय में, मैं उस बच्चे के समान अबोध हूँ।

गोस्वामीजी ने इस सुंदर उक्ति से अपने मन की बात बड़े ही विशद ढंग से व्यक्त की है। बच्चों की बोली जिसने गोस्वामीजी की मदद जो की थी हम हिन्दी शिक्षकों की भी करती है। हम शिक्षण सिद्धांत के कुछ अंशों को समझने में बच्चों की तुतली बोली का लाभ उठा सकते हैं।

समझ लीजिए कि कोई दो बरस का बच्चा अपने पिता को एक भिखमंगे से नाराज़ होते देख रहा है। "अरे, दूर हट जा, बदमाश कहीं का" पिताजी के इस वाक्य को बच्चे ने दो-चार बार सुना है और यह भी देखा है कि यह झिड़क पाकर वह भिखमंगा हट गया था। बाद को जब वह बच्चा अपने खिलौनों से खेलता है, तब वह किसी एक गुडिये को भिखमंगा बना देता है और उससे क्रोध भरी आवाज़ में कहता है, "अले, दूल अट जा" जब माता-पिता इसे देखते हैं, तो बहुत आनंदित होते हैं और बच्चे को चूम लेते हैं।

समझ लीजिए कि उसी बच्चे ने दूसरे अवसरों पर अपने माता-पिता को आपस में झगड़ते हुए भी देखा था। पिताजी नाराज़ होते है और कटुवचन सुनाते हैं और माँ रोती और बोलती है, "इससे मरना अच्छा। मैं मर जाऊँगी।" फिर पिता दूसरे दिन अपने बच्चे से नाराज़ हुआ और कुछ गरम बातें कहने लगा, तब बच्चा रो पड़ा और बोला, "मैं मल जाऊँगी" माता-पिता बच्चे की इस बात पर भी फूले न समाते होंगे, पर हमारा ध्येय कुछ और है।

अब हम इस बच्चे की इन दोनों बोलियाँ पर—"दूल अट जा" और "मल जाऊँगी" पर—विचार करें। पहले वाक्य का अर्थ, बच्चे ने थोडा-बहुत समझ

लिया है। 'हट' से मतलब 'दूर चला जा' यह बात उसके मन में जम गई है। केवल उस शब्द का वह ठीक उच्चारण नहीं कर पाता है। इस हद तक वह भाषा का सफल विद्यार्थी बन गया है।

पर, "मैं मल जाऊँगी" के विषय में हम यह नहीं कह सकते। इस बच्चे ने अभी 'मर' शब्द का अर्थ समझ नहीं पाया है। उसने (हम ऐसा अनुमान करें) किसी मृत्यु को अभी तक नहीं देखा है; लोगों का रोना चिल्लाना न सुना है, न छाती पीटना देखा है। जब माँ ने मर जाने की बात कही थी, तब उसकी मुख-मुद्रा से उसने इतना तो जान लिया था, कि यह एक कटुवचन है जिससे कोई अपनी नाराज़ी प्रकट करता है। अगर इस बच्चे ने 'मर' शब्द का अर्थ कुछ समझ लिया हो, तो वह इतना ही है कि "मैं नाराज़ होऊँगा।" उसे "मर" शब्द का असली अर्थ अभी तक नहीं मालूम है, न ही उसने "मल" शब्द का अर्थ समझ लिया है। अगर इस बच्चे के अनुभव को शिक्षा ग्रहण की दृष्टि से देखें, तो माता-पिता की झगड़ेवाली घटना से उसने भाषा का अध्ययन खूब नहीं कर पाया है। उसने एक शब्द की, याने, 'मर' शब्द की ध्वनि, बिगड़े हुए रूप में, सीख ली है, पर उसका असली अर्थ नहीं सीखा है। इस प्रकार के सीखने को "ध्वनि मात्र की समझ" (Verbalism) कहते हैं। यही बच्चा, आगे चलकर, 'मर' शब्द का असली अर्थ ही नहीं, 'मल' शब्द का भी अर्थ समझ लेता है; और यह भी समझ लेता है कि "उसकी नानी मर गई" जैसे वाक्य में, नानी असल में मरी नहीं है।

जब कोई विद्यार्थी किसी भाषा को प्रथम भाषा के रूप में सीखता है, तब इस 'ध्वनि मात्र की समझ' से बचने का एक मात्र उपाय यह है कि उसे कई ऐसी घटनाओं का अनुभव होना चाहिए जहाँ शब्दों के असली अर्थ में प्रयोग हो। उसे ऐसे अनुभव होते भी हैं क्योंकि वह प्रथम भाषा के वातावरण में रहता है। पर जब कोई विद्यार्थी किसी भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सीख लें, तो वह ऐसे अनुभवों से वंचित रहता है क्योंकि उसका वातावरण तो एक ऐसी भाषा का है जो सीखी हुई भाषा से भिन्न है। इस कमी को दूर करने के लिए, प्रत्यक्ष पद्धति (Direct Method) अपनाई जाती है और कुछ हद तक, वर्ग के अंदर, पढ़ाई जानेवाली भाषा का वातावरण-कृत्रिम ही सही-खड़ा करने की कोशिश की जाती है। लेकिन प्रत्यक्ष पद्धति बिलकुल त्रुटिहीन नहीं है। उस कृत्रिम वातावरण में कभी कभी विद्यार्थियों के मन खपते नहीं है। इस कारण से द्वितीय भाषा को सीखनेवाले विद्यार्थी अकसर कई शब्दों के अर्थ समझ नहीं

पाते हैं और सिर्फ़ ध्वनि ही सीख पाते हैं। इस प्रकार द्वितीय भाषा के शिक्षण में "ध्वनि मात्र की समझ" एक बड़ी समस्या बन गई है। इसको कैसे दूर करें?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले, हम यह देखें कि भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थवाले शब्द कितने प्रकार के होते हैं।

वे हैं:—

(1) नाम बतानेवाले शब्द (**Nominals**) याने संज्ञाएँ।

(2) काम बतानेवाले शब्द (**Actionals**) याने क्रियाएँ।

(3) गुणबोधक शब्द (**Qualifiers**) याने विशेषण तथा क्रिया-विशेषण।

(4) फुटकल (**Miscellaneous**) जैसे संबंध सूचक,
(समुच्चय बोधक तथा सर्वनाम जिनका अर्थ वाक्यों में ही प्रगट होते हैं)

(5) मुहावरेदार (**Idioms**) जैसे "उसकी हिम्मत ने जवाब दिया।
(यहाँ 'जवाब' का शब्दार्थ नहीं लेना है, वाक्य में उसका अर्थ यह कर लेना है कि वह हिम्मत खो बैठा)

(6) प्रतीकात्मक (**Symbolic**) जैसे "उसका जीवन हरा है।
(यहाँ "हरा" शब्द का किसी रंग-विशेष से मतलब नहीं बल्कि 'समृद्ध रहने' से)।

हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़नेवाले विद्यार्थियों की उम्र दस बारह साल से अधिक की होती है। कभी कभी सोलह से बीस पच्चीस या उससे भी अधिक उम्र के विद्यार्थी भी पाये जाते हैं, ऐसे विद्यार्थियों को नाम बतानेवाले शब्दों का अर्थ समझाना उतना मुश्किल नहीं है, क्योंकि ऐसे लोग इन शब्दों के मातृ भाषा के पर्याय से खूब परिचित हैं। इसलिए अनुवाद पद्धति (**Translation Method**) से यह काम आसानी से किया जा सकता है। पर इस में दिक्कत यह होती है कि अभ्यास की कमी के कारण, या ध्वनि साम्यता या और किसी कारणवश विद्यार्थी एक वस्तु के नाम को दूसरी वस्तु के नाम से मिला लेता है। जैसे कमर को कमरा से, गेंद को गेंदा से थाला को ताला से नीम को नींबू से आदि। कभी-कभी मातृभाषा का भी प्रभाव इस पर पड़ता है, जैसे कोई तमिल भाषा भाषी 'नाक' से 'जीभ' और 'मुँह' से 'नाक' समझ बैठता है। केवल शब्दार्थ पढ़ाने से दूसरी कठिनाई यह होती है कि विद्यार्थी वाक्य-रचना के काम में पिछड़ा रहता है। (प्रत्यक्ष पद्धति में वाक्य ही भाषा शिक्षण की इकाई मानी जाती है न कि शब्द, यह इस पद्धति की खूबियों में एक है क्योंकि इससे

अभिव्यंजना शक्ति बढ़ती है) इन दोनों कमियों से बचने के लिए, हम प्रदर्शन पद्धति (Object Method) को अपनाकर, नाम बतानेवाले शब्दों को पढ़ावें, तो विद्यार्थी उनकी ध्वनि तथा अर्थ दोनों समझ लेगा, साथ-साथ वाक्य रचना भी आसानी से सीख पाएगा।

इस पद्धति के मुताबिक, व्यक्तियों या वस्तुओं के नाम वाक्यों में पढ़ाये जाते हैं। इस काम में व्यक्ति, वस्तु या उनके चित्र की सहायता ली जाती है। उदाहरणार्थ-आदमी की ओर संकेत करके यह बताया जाता है, कि यह आदमी है। जब कुछ व्यक्ति या वस्तुओं के नाम से विद्यार्थी परिचित होता है, तब भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यों (Sturctures) के जरिये अभ्यास कराये जाते हैं। जैसे क्या यह आदमी है? हाँ यह आदमी हैं। नहीं यह औरत है आदि।

यद्यपि इस पद्धति से शब्दों के अर्थ समझाने में ज़रा देर लगती है, फिर भी जो ज्ञान विद्यार्थी प्राप्त करता है, वह स्थाई रहता है। इस काम में बीच बीच में अनुवाद पद्धति से काम लिया जाए, तो कोई बड़ी हानी नहीं होगी। खास करके भाव वाचक संज्ञाओं के अर्थ पढ़ाने में, (जैसे कालिया, नीलिमा, बहादुरी आदि) अनुवाद पद्धति को अपनाना अनुचित न होगा।

काम बतानेवाले शब्दों को कार्य-प्रदर्शन पद्धति (Demonstration Method) से पढ़ाना अच्छा होगा याने जो काम सूचित किया जाता है, उसको करके दिखाया जाए। हंसना, रोना, आना, जाना, उठना, बैठना आदि शब्दों को इस प्रकार पढाया जा सकता है। आवश्यक हो, तो चित्रों की भी सहायता ली जा सकती है। पर "सोचना विचारना, दीखना, बनना बिगडना जानना, धिक्कारना आदि काम बतानेवाले शब्दों को पढाने में कार्य प्रदर्शन पद्धति काम नहीं आती। यहाँ अनुवाद पद्धति को (Translation Method) काम में लाना होगा या बोधन (Telling Method) पद्धति को।

गुण बोधक शब्दों को समझाने में कहीं प्रदर्शन पद्धति (Object Method) कहीं प्रासंगिक पद्धति (Contextual Procedure Method) और कहीं बोधन पद्धति (Telling Method) को अपनाना पडेगा। काला, पीला, नीला, बड़ा, छोटा लंबा चौडा आदि शब्द कुछ ऐसी वस्तुओं को दिखाकर पढ़ाये जा सकते हैं जिनमें ये गुण विद्यमान हैं। जल्दी, धीरे से, उनपर, नीचे, आगे, पीछे, दूर नज़दीक थोडा, बहुत शब्दों का आशय चित्र या वस्तुओं की सहायता से कुछ खास प्रसंगों का आयोजन करके पढा सकते हैं, जैसे, 'नज़दीक' 'दूर'

पढ़ाने के लिए कलम को किताब के नजदीक और पेंसिल को किताब से दूर रखकर बता सकते हैं कि कलम किताब के पास है और पेंसिल किताब से दूर है।

पर सुंदर, चुपचाप, देर से, आराम से, शांतिपूर्वक, आदि शब्दों को पढाने में उपरोक्त दोनों पद्धतियाँ याने प्रदर्शन तथा प्रासंगिक पद्धतियाँ उतनी उपयोगी नहीं होंगी। यहाँ बोधन या अनुवाद पद्धति ही काम आएगी।

समुच्चय बोधक, संबंध सूचक तथा सर्वनाम जैसे फुटकल शब्दों की पढ़ाई व्याकरण पद्धति से (Grammar Method) करनी होगी। मातृ भाषा के समवर्ती या विषमवर्ती प्रयोगों की ओर ध्यान आकृष्ट करके हिन्दी वाक्य गठन की समानता या भिन्नता बताने से ये फुटकल शब्द के अर्थ तथा वाक्यों में उनके प्रयोग विद्यार्थियों को मालूम होगा।

असल में, अर्थ के बिना केवल ध्वनि की ही समझ तब अधिकतर होती है जब शब्द के अर्थ मुहावरेदार या प्रतीकात्मक होते हैं।

उदाहरणार्थ, अगर कोई हिन्दी का आरंभकालीन विद्यार्थी किसीको अपने मित्र से यह कहते सुने, "यार, तुम तो ईद के चांद हो गये" तो वह विद्यार्थी इसका अर्थ क्या समझे? अगर वह विद्यार्थी यह समझ ले कि वह यार चांद की तरह संदर बन गया है, तो इसमें उस विद्यार्थी का कोई बड़ा दोष नहीं है क्योंकि वह विद्यार्थी अभी तक यह नहीं जानता कि इसलाम क्या है, रोजा क्या है, ईद क्या है, ईद मनाने के लिए चांद को देखने की आवश्यकता क्यों है और ईद के पहले दिन चांद को देखना कितना मुश्किल हैं आदि आदि। असल में इन सब को समझाये बिना उस विद्यार्थी को 'ईद का चाँद' वाक्यांश का अर्थ मालूम करा नहीं सकते। ऐसे शिक्षण की अनुपस्थिति में 'ईद का चांद' उस विद्यार्थी को ध्वनि मात्र रह जाता है, भले ही वह चांद का अर्थ समझता हो।

जब भाषा का अध्ययन आगे बढता है, तब इस प्रकार के मुहावरेदार तथा प्रतीकात्मक शब्दों के प्रयोग अधिकतर होते हैं। ये प्रतीकात्मक शब्द कैसे बनते हैं?

मनुष्य जिन अनुभवों से गुजरता है, उनसे वह कई बातें सीखता है। उन सब बातों को याद रखना उसके लिए मुश्किल होता है। इसलिए वह आवश्यक अंशों को लेकर अनावश्यक अंशों को छोड देता है। इसे धारणा (Concept) कहते हैं। कई शब्दों के पीछे इस प्रकार की कुछ न कुछ धारणाएँ बनी रहती हैं। कुछ सरल, कुछ जटिल-उदाहरणार्थ, जानवर शब्द की धारणा, चार टांगों, एक पूँछ, तथा कोई भाषा न बोलनेवाले किसी प्राणी से है। सींग और सूंड होने वाले जानवर भी होते हैं। पर मनुष्य ने जानवर शब्द की अपनी धारणा में उन्हें

उतना मुख्य स्थान नहीं दिया। पहले तीन अंशों को ही अपनी धारणा में स्थान दिया क्योंकि वे करीब सभी जानवरों में पाये जाते हैं। जानवर को तो आदमी रोज़-बरोज देखता रहता है, इसलिए इस विषय में उसकी धारणा सरल है।

पर जब मनुष्य इन धारणाओं के आधार पर सोचने तगता है, तो उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। उस ज्ञान का विवेचन करके, वह कुछ तथ्यों पर पहुँचता है जो विज्ञान (विशुद्ध ज्ञान) कहलाता है। इस ज्ञान-विज्ञान की भाषा प्रतीकात्मक होती हैं, तथा कामचलाऊ भाषा से भिन्न होती है। जब विद्यार्थी काम चलाऊ स्तर को छोडकर इस ज्ञान-विज्ञान के स्तर पर आता है, तब भाषा उसके लिए जटिल हो जाती है, वह कई शब्दों की ध्वनि सीख पाता है पर विषय की गहराई तथा भाषा की प्रतीकात्मकता के कारण अर्थ समझ नहीं पाता है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए, पहले विद्यार्थियों को विषय का ज्ञान कराना चाहिए। यह बोधन पद्धति से हो सकता है। अगर विषयज्ञान ही हमारा ध्येय हो, तो बोधन मातृभाषा में कराया जा सकता है। मगर हमारा ध्येय यह है कि जिस भाषा को हम पढ़ाते हैं, उसके प्रतीकात्मक शब्दों का ठीक अर्थ समझावें। इसलिए यह बोधन तथा बोध उसी भाषा में होना चाहिए जिसे हम द्वितीय भाषा के रूप में पढाते हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि इस प्रतीकात्मक भाषा को सिखाने के पहले हमें, सरल, कामचलाऊ भाषा सिखानी चाहिए ताकि उस विद्यार्थी को उस भाषा में समझने तथा समझाने की क्षमता हो जाए।

व्यवहार में हम देखते हैं कि इस काम चलाऊ सरल भाषा ज्ञान न होने से, बहुत से विद्यार्थी प्रतीकात्मक भाषा को समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं। इस कारण वे पाठ्य पुस्तकों को पढना छोड देते हैं और परीक्षा पास करने के लिए "नोट्स" की शरण लेते हैं। अध्यापक गण भी इस जाल में फँस जाते हैं, और सारांश, भावार्थ सप्रसंग व्याख्या आदि लिखा देते हैं जिन्हें विद्यार्थी रट लेते हैं। यह "नोटसबाज़ी" इस प्रकार रटंतता (Cramming) को बढावा देती है। फलत: विद्यार्थी कई शब्दों की ध्वनि को ही सीख पाता है। ऐसा लगता है कि हम किसी भूल भुलैये में चक्कर काटते रहते हैं और उससे बाहर आने का मार्ग दिखाई नहीं पड़ता। क्या हम कभी इससे बाहर आ सकेंगे?

[**नोट** :—ऊपर रटंतता (Cramming) का जिक्र जो हुआ है, वह कंठस्थता (Memorisation) से भिन्न है। भाषा-शिक्षण शास्त्र में रटंतता वर्ज्य है। पर कंठस्थता (Memorisation) से कुछ लाभ उठा सकते हैं।

"सूर-सूर तुलसी ससी"

हिन्दी साहित्य का पूर्व-मध्यकाल साहित्य रचना से ही नहीं, अपितु संपूर्ण सांस्कृतिक चेतना और प्रमुख सामाजिक चेष्टा एवं कलात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी भक्तिकाल कहा जाता है। इसी युग विशेष में हिन्दी साहित्य के दो अमर कवि सूर और तुलसी हुए, जिन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा द्वारा भारतीय समाज को ज्योति दी।

सूर और तुलसी दोनों भी हिन्दी साहित्य काव्याकाश के दो परमोज्ज्वल नक्षत्र एवं घनीभूत प्रकाशपुंज हैं। इनमें किसका प्रकाश अधिक एवं किसका न्यून है, यह बतलाना बड़े से बड़े समीक्षक के लिए भी दुष्कर है। अनेक मनीषियों ने अब तक इन दोनों महात्माओं की तुलना की है। किसीने अपने मतयानुसार सूर को श्रेष्ठ सिद्ध किया है तो किसीने तुलसी को। इस उक्ति के संबंध में बाबू श्यामसुंदरदास का कथन है—

"तुलसी का क्षेत्र सूर की अपेक्षा भिन्न है। व्यवहार की दशाओं की अधिकता तुलसी में तथा प्रेम की अधिक विस्तृत व्यंजना सूर के काव्य में प्राप्त होती है, पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनों का समान अधिकार है।"

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल के अनुसार, "मनुष्य जीवन की जितनी अधिक दशाएँ, जितनी अधिक वृत्तियाँ तुलसी ने दिखायी है, उतनी सूर ने नहीं। तुलसी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है, सूर की एक मुखी।" इस प्रकार शुक्लजी ने तुलसी को ही मूर्द्धन्य स्थान दिया है।

सूर और तुलसी ये दोनों ही कवि हिन्दी कवियों में मुकुटमणि हैं एवं अपने-अपने क्षेत्रों में एक दूसरे से बढ़कर हैं। हिन्दी का तीसरा कोई भी कवि इनकी समता नहीं कर सकता। दोनों ही उच्चकोटि के भक्त कवि हैं। एक मुख्य रूप से कृष्णोपासक थे तो दूसरे रामोपासक। सूर की भक्ति सखा भाव एवं वात्सल्य भाव प्रधान थी, तो तुलसी की भक्ति गुरू एवं सेवक-भाव प्रधान। तुलसी पहले भक्त, फिर समाज-सेवी और तदनन्तर कवि हैं। दोनों का प्रादुर्भाव ऐसे युग में हुआ जबकि एक विशाल जन समूह दलित और अनेक अभावों से ग्रस्त था। दैन्य की करुणा-मूर्ति इस मानव को सूर और तुलसी ने आधार प्रदान किया, जहाँ वह अपने निराश और टूटे हृदय की पुकारों को पहुँचा सके।

पांडित्य की दृष्टि से भी दोनों ही महात्मा पूर्ण पंडित हैं। भारतीय वेदांत व दर्शन शास्त्र के दोनों ही विशेषज्ञ थे। दोनों ही भक्ति का निरूपण करना चाहते थे। वेदांत के तत्व दोनों महाकवियों के काव्य में विद्यमान हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी समन्वयवादी थे। अतः उनके काव्य में सभी वादों एवं मत-मतांतरों का समन्वय है।

काव्य सौंदर्य की दृष्टि से दोनों के काव्य उत्कृष्ट होते हुए भी सूर में काव्य प्रतिभा एवं भाव अधिक व्यापक दिखायी पड़ते हैं। जहाँ तुलसी ने प्रत्येक मानव-स्थिति एवं मानव-व्यापारों को अपने काव्य में सफलतापूर्वक चित्रण किया है, वहाँ सूर का काव्य-क्षेत्र बहुत ही सीमित है। वात्सल्य रस तो सूर के काव्य के इस क्षेत्र में एक अभिनय उद्भावना है। बालहृदय की मनोवृत्तियों का जैसा स्वाभाविक ज्ञान सूर को है वैसा हिन्दी साहित्य के किसी अन्य कवि में अब तक नहीं हुआ।

जैसे—"मैया कबहिं बढैगी चोटी।"

तुलसी के काव्य में जीवन की अनेक दशाओं का उल्लेख है। उन्होंने दानवी सौंदर्य के प्रतीक युगपुरुष राम को अपने काव्य का आधार बनाया। राम पुत्र, भाई पति, भक्तवत्सल, योद्धा एवं मर्यादारक्षक हैं। इस प्रकार तुलसी ने राम के पवित्र मर्यादित जीवन को लेकर मानव के सभी व्यापारों एवं संभव दशाओं की अभिव्यंजना की। किंतु सूर की हृत्तंत्री के तारों में कृष्ण को बालक्रीडाएँ और गोपी विरह के स्थलों के भाव विशेष रूप से ध्वनित हुए।

सूरदास और तुलसीदास दोनों ने भी गीतिकाव्य पर्याप्त लिखा है। अतः इस क्षेत्र में दोनों ही समान हैं। लेकिन सूरदास की गीति के आगे तुलसी की गीति नीरस है। इसी प्रकार वात्सल्य व शृंगार का निरूपण दोनों ही कवियों ने किया है। पर जितनी अधिक सफलता सूर को मिली, उतनी तुलसी को नहीं। जो मनोहारिणी बालक्रीड़ा व विदग्धता सूरदास में है, वह तुलसी में नहीं।

इतना ही नहीं तुलसीदास और सूरदास में कई समानताएँ भी देखने को मिलती हैं।

जैसे—'यशोदा हरि पालने झुलावै।' —सूरदास

'पालने रघुपति हिं झुलावै।' —तुलसीदास

तुलसीदास के काव्य में महान गुण है। पर सूरदास ने जिस सीमित क्षेत्र में ही सहस्रावधि पर रचकर अपना अपूर्व कौशल दिखलाता है। निश्चय ही उसमें तुलसी

उनकी समता नहीं कर सकते। लेकिन दोनों अपने-अपने क्षेत्र में सफल और महान हैं।

निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि किसीने प्रास के मोह में पड़कर 'सूर सूर तुलसी ससी' की यह उक्ति कह डाली हो। न सूर ही तुलसी हो सकते हैं, न तुलसी ही सूर। लेकिन ऐसा कहना उचित लगता है कि दोनों भक्त महाकवि माता भारती के दो नेत्र हैं, जिनपर हिन्दी-भाषी जनता और साहित्य को गर्व है।

—श्री वेदाल अप्पलाचार्युलु, चोडावरम।

सभा के अहाते में विद्यार्थी मेला

(10 अगस्त, 1980)

मद्रास महानगर के हिन्दी परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी भाषण-माला

बड़ी आतुरता से इस कार्यक्रम की प्रतीक्षा बनी रहती है—न केवल प्रचारक-प्रचारिकाओं की तरफ़ से, छात्र-छात्राओं की तरफ़ से भी। वही विद्यार्थी मेला—बड़ा स्पृहणीय हिन्दी मेला।

आगामी 10 अगस्त, 1980 (रविवार) सुबह 10-00 बजे से शाम 4-30 बजे तक। अनुभवी अध्यापक-अध्यापिकाओं से परीक्षोपयोगी भाषण-माला करायी जायेगा।

प्रत्येक विद्यार्थी से 50 पैसे दान के तौर पर लिये जायेंगे।

अनुभवी प्रचारक बन्धुओं से प्रार्थना है कि अपना अध्यापन-सहयोग दें, अपने विद्यार्थियों को यहाँ भेजें और इस हिन्दी मेले को सफल बनावें। यह सभा की सेवा है—मतलब, आपकी सेवा है, हिन्दी की सेवा है।

आवश्यक जानकारी के लिए कृपया नगर कार्यालय से संपर्क करें।

नगर सचिव

कला की विवेचना

इस लेख में लेखक ने कला की विवेचना की है। कला की परिभाषा देते हुए उनके रूपों का वर्णन किया है। कला की विविध उपयोगों का ज़िक्र किया है। इस लेख का लेखक बाबू श्यामसुन्दरदास है।

कला का नाम उसके देते हैं जो गुण या कौशल के कारण किसी वस्तु में उपयोगिता या सुन्दरता आती है। इसके दो प्रकार है। उपयोगी कला और ललित कला। उपयोगी कला में बढ़ई, लुहार, सुनार, कुम्हार, राज आदि व्यवसाय है। ललित कला में वास्तु कला, मूर्तिकला संगीत कला और काव्य कला आती है। उपयोगी कला से मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ती होती है और ललित कला से उसको अलौकिक आनंद की उपलब्धि होती है। मनुष्य तो सौंदर्योपासक है। उपयोगी वस्तुओं में सुन्दरता को देखना चाहता है।

मनुष्य के लिए खाने-पीने, ओढ़ने-रहने आदि के लिए वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। उनकी पूर्ति कला करती है। सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकता बढ़ती है। उसके साथ ही सुन्दरता की ओर उसका ध्यान जाता है। समस्त लोगों का मन अभिरुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार उसका गुण भी अलग-अलग होता है। इस कारण से मनुष्य की आवश्यक वस्तुओं में भी भिन्नता आती है।

ललित कलाएँ दो प्रकार हैं। एक नेत्रेंद्रिय के सन्निकर्ष से मानसिक तृप्ति पाना और दूसरा श्रवणेंद्रिय सन्निकर्ष से तृप्ति पाना। पहले में वास्तु, मूर्ति और चित्रकला तथा दूसरे में संगीत और श्रव्य काव्य आते हैं। ललित कलाओं में काव्य कला का प्रथम स्थान है। इसमें मूर्त आधार का अभाव रहने के कारण श्रेष्ठ माना जाता है। वास्तुकला सबसे नीचा स्थान का माना जाता है। बाद में क्रमश: मूर्तिकला, चित्रकला का स्थान आता है। ललित कला में मूर्त आधार का जितना कम होगा उतना श्रेष्ठ माना जाता है। अब संगीत कला के बारे में देखें। इसमें नाद और स्वरों के आरोह और अवरोह ही आधार होता है। इसमें रसों भावों का समावेश होता है। काव्य कला को इसलिए उच्च स्थान दिया जाता है कि उसमें रमणीयता और मानसिक भावों का मूलाधार होता है। इसमें मूर्त आधार का अस्तित्व नहीं है।

ललित कलाओं में ये सब बातें आती है। 1. सब कलाओं में किसी न किसी प्रकार के आधार की आवश्यकता होती है। इसमें सब प्रकार की वस्तु आती है। 2. उपकरणों के प्रयोग से कान और आंख से आनंद मिलता है। 3. कला के आधार और उपकरण एक प्रकार का माध्यम बन जाते हैं। इनसे आनंद का अनुभव होता है। इस कारण से ललित कलाओं में कुशलता का महत्व मिलता है।

ललित कलाओं में उनका मूर्त आधार, वह साधन जिसके द्वारा यह आधार गोचर होता है और मानसिक दृष्टि में नित्य जो पदार्थ का प्रत्यक्षीकरण होता है, वह कैसा और कितना होता है! इन विषयों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। वास्तुकला का मूर्त आधार निकृष्ट होता है जो ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि होते है। उनके रूपों के आधार पर मन को आनंद की भावना आसानी से मिलती है।

मूर्ति कला में पत्थर, धातु; मिट्टी या लकड़ी आदि को काट-छाट कर रूप देना पड़ता है। रूप, रंग आदि का समावेश किया जाता है। इस प्रकार उसके रूपों का परिचय मिलता है। चित्रकला में कपड़े, कागज़, लकड़ी आदि का प्रयोग होता है। इसमें चित्रित भावनाओं के लिए काफ़ी ज़रूरत पड़ती है। साथ ही कुशलता की आवश्यकता पड़ती है।

संगीत कला तो कानों के द्वारा मन में प्रवेश करके आनंद का स्वाद देता है। उसका आधार नाद होता है। मनुष्य का कंठ ही उसकी वस्तु है। संगीत के सात स्वरों का सिद्धांत होता है। मानसिक भावों को इस नाद के द्वारा प्रकट किया जाता है। जंगली मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी तक इसके आनंद का अनुभव करते हैं। मनोभावों में संगीत का महत्व ज़्यादा है। काव्य कला और संगीत कला दोनों में अटूट संबंध है। ललित कलाओं में काव्य कला का स्थान ऊँचा है। इसके लिये कोई मूर्त पदार्थ नहीं होता। संकेतों के आधार ही इसका मूल होता है। इस प्रकार कला की विवेचना में काव्य कला की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है।

—के. जैविठलराव, मैसूर

'हिन्दी प्रचार समाचार'

श्री प्रचारक बन्धुओं से निवेदन है कि **'हिन्दी प्रचार समाचार'** में प्रकाशनार्थ संस्मरण व परीक्षोपयोगी लेख भेजते समय साफ़ अक्षरों में लिखकर भेजें। सभा समारोह संबन्धी समाचार अविलंब संबन्धित **प्रान्तीय सभा के द्वारा ही** भेजा करें।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली

ता, 3-5-80 को हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली का सत्रांत समारोह श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति, प्रधान सचिव, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। छात्राध्यापिकाओं की प्रार्थना के साथ सभा प्रारंभ हुई। हिन्दी प्रचारक विद्यालय के संस्थापक और व्यवस्थापक श्री बोयपाटि नागेश्वरराव ने सबका स्वागत किया और मुख्य अतिथियों का परिचय दिया। प्रधानाध्यापिका कुमारी के. सीता, M.A., M.Ed., ने अपने प्रतिवेदन में बताया कि 1979-80 के साल में विभिन्न जिलों से आये हुए 9 छात्राध्यापक 46 छात्राध्यापिकाओं ने प्रचारक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

श्री शीर्ल ब्रह्मय्या, उपाध्यक्ष, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र ने अपना संदेश देते हुए यह बतलाया कि तेनाली में श्री बोयपाटि नागेश्वरराव दंपति से स्थापित हिन्दी प्रचारक विद्यालय लगातार विगत 25 सालों से सफलतापूर्वक चल रहा है। यहाँ के गुरुकुलवातावरण में अनुशासनबद्ध होकर विद्यार्थी प्रशिक्षण पा रहे हैं। प्रशिक्षितों को चाहिए कि वे बापूजी के आदर्शों के अनुसार अपने नैतिक जीवन को उन्नत रखकर निष्ठा के साथ हिन्दी प्रचार करें।

श्री चिरावूरि सुब्रह्मण्यम, सचिव, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र ने हिन्दी प्रचार की आवश्यकता बतायी और विद्यार्थियों के भावी जीवन उज्ज्वल होने के लिए शुभकामनाएँ दी हैं।

प्रचारक विद्यार्थी श्री एम. कोंडलराव, श्री सी. हेच. शेखर बाबु, कुमारी जी. कस्तूरी बाई, श्रीमती एस. लावण्यवती ने अपने अनुभवों को सुनाकर अपनी कृतज्ञताएँ प्रकट कीं।

अंत में श्री वे. राधाकृष्णमूर्ति ने अपना अमूल्य संदेश देते हुए कहा कि "प्रचारक" शब्द बापू का दिया हुआ है और उसीमें हिन्दी प्रचार और प्रचारकों के लक्ष्य निहित हैं। इसलिए हिन्दी प्रचारकों को बापू के आदर्शों के अनुसार हिन्दी प्रचार करना चाहिए।

अध्यक्षजी ने प्राथमिक से लेकर प्रचारक तक लेखन व भाषण में प्रथम और द्वितीय आये हुए विद्यार्थियों को स्वर्गीय गुंटूरि राजेश्वरराव स्मारक पुरस्कार वितरित किये।

श्रीमती सी. हेच. बेबी सरोजिनी ने धन्यवाद समर्पित किया।

आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक सम्मेलन, तेनाली

दि. 3-5-1980 शनिवार को तेनाली में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र और आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक मंडली के तत्वावधान में आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में आन्ध्र प्रदेश के विविध जिलों के लगभग 300 हिन्दी प्रचारक बन्धुओं ने भाग लिया। आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा मंत्री माननीय भवनम् वेंकटराम रेड्डी सम्मेलन के मुख्य अतिथि रहे। श्री चेकूरि काशय्या एम.एल.ए. ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के प्रधान सचिव श्री वे. राधाकृष्णमूर्ति ने अध्यक्षासन ग्रहण किया।

सबेरे 8-00 बजे हिन्दी प्रेमी मंडली, हिन्दी महाविद्यालय के अहाते में झंडोत्तोलन के साथ सम्मेलन का कार्यक्रम आरंभ हुआ। स्वतंत्रता सेनानी तथा हिन्दी प्रेमी मंडली, तेनाली के अध्यक्ष श्री वेलुवोलु सीतारामय्याजी ने झंडा फहराया। खादी-वर्दी में हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली के छात्राध्यापक तथा अध्यापिकाओं ने झंडावंदन का कार्यक्रम सुचारू रूप से चलाया। श्री सीतारामय्या जी ने अपने संदेश में स्वतंत्रता आंदोलन के समय के अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए हिन्दी भाषा की प्रधानता तथा उसे सीखने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

हिन्दी प्रचारकों की गोष्ठी

सबेरे 8-30 से 12-30 तक हिन्दी प्रचारकों की गोष्ठी चली। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र के सचिव श्री चिर्रावूरि सुब्रह्मण्यम गोष्ठी के अध्यक्ष रहे। आन्ध्र सभा के उपाध्यक्ष श्री शीर्ल ब्रह्मय्याजी ने गोष्ठी का उद्घाटन किया। श्री ब्रह्मय्याजी ने अपने उद्घाटन भाषण में स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए उन दिनों में हिन्दी भाषा तथा हिन्दी प्रचारकों ने त्यागभाव से जो कार्य किया उसकी प्रशंसा की। अंग्रेज़ी भाषा और नौकरियों के बीच अटूट संबंध के होने के कारण देशी भाषाओं को जो स्थान मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा है। स्वतंत्रता आन्दोलन के एक अंग के रूप में स्वभाषा, स्वदेशी आन्दोलनों का भी प्रचार हुआ। स्वदेशी में खादी को प्रमुख स्थान दिया गया है। उन दिनों में हिन्दी और खादी का अटूट संबंध बना। उन दिनों में सभी हिन्दी प्रचारक खादी पहनते थे। हम लोगों ने अब तक खादी पहनना नहीं छोडा। लेकिन खेद की बात है कि आजादी के बाद खादी के विषय में लोगों की धारणा बदल गई। स्कूलों में हिन्दी अध्यापकों की नियुक्तियों में उनको पद-वृद्धि देने में

अन्याय हो रहा है। हम सबको संगठित होकर इन समस्याओं के विषय में सरकार के साथ बातचीत करनी है। हमें राष्ट्रीय भावना नैतिक आचरण, खादीधारण, इन्हें छोड़ना नहीं चाहिए।

उसके बाद दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के प्रधान सचिव श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति ने हिन्दी में बोलते हुए कहा—हम ऐसे सम्मेलनों का आयोजन करते रहेंगे और अपनी जो समस्याएँ हैं उनपर विचार करेंगे और उन्हें सरकार के ध्यान में ले जाएँगे। जबसे मैं मद्रास गया तब से दूसरे प्रान्तों के प्रचारकों से, वहाँ की समस्याओं से परिचय प्राप्त हो रहा है। दक्षिण के सभी प्रान्तों को मिलाकर करीब दस हज़ार हिन्दी प्रचारक इस क्षेत्र में हैं। उनमें भी 6,000 तक स्त्रियाँ हैं। इन सभी प्रान्तों के लोगों को एक मंच पर लाने की आवश्यकता है। अपनी समस्याओं को सरकार की दृष्टि में ज़रूर ले जाना है।

उसके बाद हिन्दी प्रचारकों की समस्याओं पर गोष्ठी संपन्न हुई। गोष्ठी में सर्वश्री बोयपाटि नागेश्वर राव, टी. वेंकटेश्वर्लु, देवरकोंड सनत्कुमार शर्मा, मंडा रामकृष्णा रेड्डी, वेमूरि सुब्बाराव, जी. सीताराम दास, यस. श्रीरामा रेड्डी, वी. वेंकटेश्वर्लु, सी-हेच. कुसुम हरनाथ शर्मा, बी. जी. सुन्दर मूर्ति, बै. पुल्लय्या, के. वेंकटेश्वर राव, पी. शिवराम कृष्णय्या, यम. वेंकटरत्नम, यस. सुन्दरराव, सी-हेच. वेंकटेश्वर्लु, आर. अमरनाथ, आदि प्रचारकों ने गोष्ठी में भाग लिया और विभिन्न समस्याओं पर चर्चाएँ कीं।

अध्यक्ष श्री सुब्रह्मण्यम ने समापन भाषण में पिछले वर्षों में हिन्दी प्रचारकों की समस्याओं के विषय में आन्ध्र सभा ने जो-जो प्रयत्न किये उनका उल्लेख किया और कहा कि इस सम्मेलन में जो प्रस्ताव पारित होंगे वे सरकार को भेजे जाएँगे और उनके निवारण के लिये सरकार के साथ बराबर संबंध रखा जाएगा। इस प्रकार आन्ध्र सभा हिन्दी तथा हिन्दी प्रचारकों की समस्याओं पर निरन्तर कार्य करती रहेगी।

गोष्ठी की समाप्ति के बाद हिन्दी प्रचारक विद्यालय हॉस्टल भवन में सभी अतिथियों के लिये भोजन आदि का प्रबंध किया गया। भोजन के बाद विषय-निर्णय सभा में मंतव्यों की रचना की गयी। इन मन्तव्यों को शाम के सम्मेलन में मुख्य अतिथि माननीय शिक्षा मंत्री श्री भवनम वेंकटराम रेड्डी को समर्पित किया गया। शाम को चार बजे से 5 बजे तक हिन्दी प्रचारक विद्यालय, तेनाली का सत्रान्त समारोह मनाया गया।

हिन्दी प्रचारक सम्मेलन

इस सम्मेलन में आन्ध्र प्रदेश के शिक्षामंत्री माननीय भवनम् वेंकट राम रेड्डी मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के प्रधान सचिव श्री वे. राधाकृष्ण मूर्ति ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। अलंकृत मंच पर मुख्य अतिथि तथा अध्यक्ष के अलावा सम्मेलन के उद्घाटक श्री चेकूरु काशय्या, एम.एल.ए., आन्ध्र सभा के सचिव श्री चिरावूरि सुब्रह्मण्यम, गुण्टूरु जिले के जिला शिक्षाधिकारी श्री रवि, आन्ध्र सभा के उपाध्यक्ष श्री शीर्ल ब्रह्मय्या, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक मंडली के अध्यक्ष श्री बोयपाटि नागेश्वर राव, सचिव श्री काज वेंकटेश्वर राव, हिन्दी प्रेमी मंडली, तेनाली के अध्यक्ष श्री वेलवोलु सीता रामय्या, आदि आसीन हुए। करीब 300 हिन्दी प्रचारकों, हिन्दी प्रचारक विद्यालय के छात्राध्यापक-अध्यापिकाओं तथा महाविद्यालय के विद्यार्थी विद्यार्थिनियों और नगर के अनेक सज्जनों से सम्मेलन का प्रांगण खचाखच भर गया।

प्रचारक विद्यालय के विद्यार्थियों के मधुर प्रार्थना गीत के साथ कार्यक्रम का आरंभ हुआ। श्री बोयपाटि नागेश्वर रावजी ने आरंभ में सभी अतिथियों तथा प्रदेश के विविध जिलों से आये हुये हिन्दी प्रचारकों तथा अन्य सज्जनों का स्वागत किया और मंच पर पधारे हुए सज्जनों को पुष्पमालाएँ पहनाकर सम्मानित किया। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक मंडली का परिचय दिया और उनके कार्य-कलापों पर विस्तृत प्रकाश डाला।

उसके बाद आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक मंडली के प्रधान सचिव श्री काज वेंकटेश्वरराव जी ने निवेदन प्रस्तुत किया। तदनंतर श्री चेकूरु काशय्या, एम.एल.ए. ने सम्मेलन का उद्घाटन किया।

श्री काशय्याजी ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा दक्षिण में हिन्दी भाषा के प्रचार और विकास के लिये संगठित रूप से जो कार्य कर रही है, उसकी प्रशंसा की। और कहा कि वर्तमान परिस्थितियों में दक्षिण के लोगों को हिन्दी भाषा सीखने की सख्त जरूरत है। खास करके हम राजनीति में काम करनेवाले जब उत्तर में जाते हैं तब जो लोग हिन्दी जानते हैं और जो लोग हिन्दी नहीं जानते हैं उनके बारे में उत्तर भारतीयों का व्यवहार अलग अलग रहता है। उदाहरण के लिये हम तेलंगाणा प्रांत में कार्य करनेवाले लोग दिल्ली जाते हैं तो वहाँ के लोगों के साथ घुलमिल जाते हैं और आपस में भाई-चारे का व्यवहार होता है। अगर हम लोग

अखिल भारतीय स्तर पर नेतृत्व को प्राप्त करना चाहते हैं तो हिन्दी भाषा का गहरा ज्ञान अत्यन्त आवश्यक होता है।

तदनंतर आन्ध्र सभा के सचिव श्री चिर्रावूरि सुब्रह्मण्यम ने विषय-निर्णय सभा में पारित प्रस्तावों को मेमोरांडम के रूप में शिक्षामंत्री को समर्पित किया।

प्रस्तावों के समर्पण के बाद सम्मेलन के अध्यक्ष श्री वे. राधाकृष्ण मूर्ति ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस प्रकार कहा-दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा महात्मा गांधीजी के द्‌वारा स्थापित संस्था है। डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, आदि राष्ट्रीय नेता इस संस्था से संबद्ध रहे। श्रीमति इंदिरा गांधी सभा की वर्तमान अध्यक्षा हैं। विदेशमंत्री श्री पी. वी. नरसिंहाराव इसके प्रथम उपाध्यक्ष हैं। तमिलनाडु के सम्मान्य नेता श्री ए. पी. सी. वीरबाहु इसके द्‌वितीय उपाध्यक्ष है। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक इन चार दक्षिण के प्रान्तों में राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार करना इसका प्रधान लक्ष्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले कई लोग त्याग भावना से इस संस्था में आये और कार्य-कर्ताओं के रूप में काम किया। महात्मा गांधीजी के आशीर्वाद के बल पर तथा कार्यकर्ताओं के सेवाभाव के बल पर यह संस्था इतने दिनों तक बनी रही है। आन्ध्र प्रदेश में देशभक्त कोण्डा वेंकटप्पय्य पंतुलु, आन्ध्रकेसरि टंगुटूरि प्रकाशम पंतुलु, स्वामी सीताराम, बेजवाड गोपाल रेड्डी, स्वामी रामानंद तीर्थ, पट्टाभि सीतारामय्या जैसे महान् नेताओं का सहयोग इस संस्था को प्राप्त हुआ। लगभग दस हज़ार हिन्दी प्रचारक समूचे दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्य कर रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश में लगभग दो हज़ार हिन्दी प्रचारक सभा के कार्यकलापों में भाग ले रहे हैं। इस प्रान्त से हर साल लगभग 70-75 हज़ार विद्‌यार्थी सभा की विभिन्न परीक्षाओं में शामिल होते हैं। आजकल आन्ध्र प्रदेश सरकार हिन्दी को भी अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके त्रिभाषा-सूत्र को अमल कर रही है। लेकिन इस सूत्र को अमल करने में कुछ समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। कई स्कूलों में अध्यापकों का अभाव है। जिन स्कूलों में अध्यापक हैं, उनको महीनों तक वेतन प्राप्त नहीं होते। दूसरी बड़ी समस्या पाठ्य-पुस्तकों की है। पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण त्रुटिपूर्ण है। ऐसी ही अनेक समस्याओं पर विचार-विनिमय करके उनका निवारण करने के उद्‌देश्य से कुछ वर्ष पहले एक हिन्दी समन्वय समिति आन्ध्र प्रदेश सरकार के द्‌वारा घटित की गई थी। न केवल स्वैच्छिक संस्थाओं के बल्कि विश्वविद्‌यालयों के प्रतिनिधियों को भी उस कमेटी में शामिल किया गया। शिक्षा विभाग के निदेशक उसके कन्वीनर रहे। शिक्षामंत्री उसके

अध्यक्ष रहे। दो-तीन बैठकें हुईं। कुछ अच्छे निर्णय किये गये। स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं की परीक्षाओं को चलाने में और उनके पाठ्यक्रम को सुधारने में कई निर्णय किये गये। सबसे बड़ा काम वह हुआ कि हिन्दी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में समानता लाने का प्रयत्न किया गया। सरकारी ट्रेइनिंग कालेजों तथा स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के ट्रेइनिंग कोर्स को एक बनाया गया। इस प्रकार एक आदर्श पाठ्यक्रम तैयार किया गया। फलस्वरूप आजकल आन्ध्र प्रदेश के सभी हिन्दी ट्रेईनिंग कालेजों में उसी पाठ्यक्रम के अनुसार प्रशिक्षण दिया जा रहा है। वह समिति रद्द नहीं हुई। केवल बैठकें नहीं बुलाई जा रही हैं। अगर उस कमेटी की बैठकें बुलाई जाएँ तो हिन्दी से संबंधित कई समस्याओं को दूर करने का मार्ग प्रशस्त होने की आशा है।

उसके बाद श्री शीर्ल ब्रह्मय्याजी ने अपने भाषण में आन्ध्र प्रदेश के बजट में हिन्दी के लिए अलग व्यवस्था करने की बात पर अधिक जोर दिया। केन्द्र सरकार पर आधारित नहीं होकर स्कूलों में हिन्दी अध्यापकों की नियुक्ति तथा उनका वेतन देने पर उन्होंने जोर दिया।

माननीय शिक्षा मंत्री के भाषण के बाद श्री बोयपाटि नागेश्वर रावजी ने धन्यवाद-समर्पण किया। अंत में राष्ट्रगीत के साथ सम्मेलन के कार्यक्रम समाप्त हुए।

रात को 8-30 बजे सम्मेलन में आये हुए सभी लोगों को दावत दी गई। इस प्रकार उल्लासपूर्ण वातावरण में आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचारक सम्मेलन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

मुख्य अतिथि शिक्षामंत्री
माननीय श्री भवनम वेंकटरामरेड्डीजी का भाषण

सम्मेलन के मुख्य अतिथि माननीय भवनम वेंकटरामरेड्डी, शिक्षा मंत्री ने उत्साह तथा कौतूहलपूर्ण वातावरण में अपना भाषण प्रारंभ किया। उन्होंने कहा—

मैं आज तक नहीं जानता कि हिन्दी से संबंधित इतनी समस्याएँ हैं। इन समस्याओं के बारे में आज तक किसी ने मुझे नहीं बताया। न जाने इन दो या ढाई वर्षों से मुझे इन समस्याओं से अनभिज्ञ क्यों रखा गया? मैं हिन्दी भाषा का प्रेमी हूँ। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को देश के हर एक व्यक्ति को सीखना है। यह मेरी व्यक्तिगत भावना है। लेकिन खेद की बात है कि लिंक-भाषा राजभाषा इत्यादि नामों के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी को राजनीति से संबद्ध किया गया जिससे हिन्दी से संबंधित वातावरण बिगड गया।

आजकल हमारी दुस्थिति यह है कि अगर हम किसी विदेश में जाते हैं तो कोई अगर हमसे पूछें कि तुम्हारी भाषा क्या है ? तो हम जवाब नहीं दे सकते हैं। अगर राष्ट्रभाषा के रूप में हम हिन्दी को सीखें तो यह दुस्थिति दूर हो जायेगी। दुर्भाग्य से हिन्दी भाषा को राजनीति से संलग्न किया गया, जिससे देश में हिन्दी प्रचार के कार्य में अवरोध उत्पन्न हो रहा है।

आन्ध्र प्रदेश सरकार त्रिभाषा-सूत्र को ईमानदारी से अमल कर रही है। भविष्य में भी अमल करती रहेगी। लेकिन इस विषय में केन्द्र सरकार का सहयोग भी अत्यन्त आवश्यक है। पिछले वर्ष हिन्दी अध्यापकों की नियुक्ति में कुछ अडचनें उत्पन्न की गयीं। अध्यापकों की नियुक्ति के लिये पहले वह जो आर्थिक सहायता देती थी, उसमें परिवर्तन किया। सहायता को कम किया। ऐन मौके पर इस प्रकार करने से प्रदेश सरकार के सामने बडी कठिनाई उपस्थित हुई। इस कारण से हम अध्यापकों की नियुक्ति नहीं कर सके। अतः हम चाहते हैं कि केन्द्र सरकार अपनी ओर से जितना हो सके अधिक सहायता करे। हम इस विषय में जो प्रयत्न करते हैं, उसमें स्वैच्छिक संस्थाओं को भी चाहिये कि वे हमारी मदद करें। प्रदेश के करीब दो हज़ार स्कूलों में हिन्दी अधयापकों की नियुक्ति करनी है। लेकिन एक दूसरी बात की ओर भी मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। स्कूलों में न केवल हिन्दी पंडितों की बल्कि तेलुगु पंडितों की भी कमी है। प्रदेश में दिन-ब-दिन स्कूलों की संख्या और उसके अनुपात में विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ रही है। इन सबकी वृद्धि के कारण आजकल की स्थिति यह है कि प्रदेश के स्कूलों में 21,000 से अधिक स्थानों को भरना है। इस प्रकार विविध विषयों के स्थानों की भर्ती करना कठिन हो रहा है। हर साल विद्या-क्षेत्र में हम दो सौ करोड रुपये खर्च कर रहे हैं। तो भी स्कूलों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पा रहे हैं।

हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में जो त्रुटियाँ हैं उनको भी दूर करने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन पाठ्य-पुस्तकों के विषय में मेरी एक सूचना है। हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों के सभी विषय उत्तर भारत से संबंधित रहते हैं। कृष्णा, गोदावरी जैसे हमारी नदियों, हमारे इतिहास से संबंधित घटनाओं तथा हमारे नेताओं के जीवन-चरित्रों को उन पुस्तकों में स्थान नहीं दिया जाता है। जब परिस्थिति ऐसी है तो उस भाषा से हम प्रेम कैसे कर सकते हैं? इसलिए अखिल भारतीय वातावरण के साथ-साथ हमारे वातावरण को भी पाठ्य-पुस्तकों में समाविष्ठ करना अत्यन्त आवश्यक है।

हिन्दी प्रचार समाचार